प्रकास गुजराती

जंबूर

श्री तारतम वाणी

प्रकास गुजराती

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०१५, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१९

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी का हृदय ज्ञान का अनन्त सागर है। उसकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि **"नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन"**, अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्त्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मुझसे तारतम वाणी के टीका की सेवा क्यों नहीं करवा

सकते? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरू महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहेर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। श्री प्राणनाथ जी की पहचान के सम्बन्ध में जनमानस में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली रहती हैं। धाम धनी की कृपा से होने वाली इस टीका से उन भ्रान्तियों का समाधान हो सकेगा, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए, मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से

निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य–धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण–रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

सरसावा

अनुक्रमणिका		
1	कांई एणी पेरे कीधूं रास	12
2	संभारो साथ अवसर आव्यो छे हाथ जी (श्री साथनो प्रबोध)	15
3	सकल साथ रखे कोई वचन विसारो जी	25
4	न कांई मनमां न कांई चित (चौपाई प्रगटी)	30
5	जुओ रे बेहेनी हूं हाय हाय (विलाप करया छे)	78
6	मूंजी सैयल रे (भाखा सिंधी जाटी)	117
7	सजण विया मूंजा निकरी (बीजी विलामणी)	125
8	खुई सा परडेहडो	132

9	हवे एक लवो जो सांभरे सही (चौपाई प्रगटाणी)	141
10	हवे विनती एक कहूं मारा वाला (विनती)	152
11	हवे आपणमां बेठा आधार	168
12	हवे गुणने लखूंजी तमतणां (श्री धणीजीना गुण)	175
13	सांभलो साथ मारा सिरदार	206
14	मूंजा अंध अभागी जीव जोर रे (जाटी भाषा में – प्रबोध)	209
15	मूंहजा जीव अभागी रे	215
16	मूंजा जीव सुहागी रे (वी वलामणी)	221
17	मूंजा साथ सुहागी रे	225

18	हूं तां पिउजीने लागूं छूं पाय (विनती)	237
19	अखंड दंडवत करूं परणाम	243
20	हवे करूं ते अस्तुत आधार (हवे प्रकास उपनो छे)	255
21	सांभल जीव कहुं वृतांत (जीवनो प्रबोध)	317
22	हवे दृष्ट उघाडी जो पोतानी	331
23	हवे वारी जाऊं वनराय वल्लभनी	337
24	हवे अस्तुत ऊपर एक विनती कहूं	349
25	खुई सा निद्रडी रे (कत्तण जो द्रष्टांत)	364
26	खुईसो भरम जो घेंण	378
27	हाणे तूं म भूलज रे	390

28	भोरी तूं म भूल इंद्रावती	398
29	हूं जाणूं निध एकली लऊं (श्री लखमीजीनूं द्रष्टांत)	405
30	सुईने सुई सूता सूं करो रे (प्रगटवाणी प्रकासनी)	444
31	बेहदी साथ तमे सांभलो (बेहद वाणी)	474
32	वली वण पूछे कहूं विचार (दूध पाणीनो विछोडो)	549
33	सांभलो साथ कहूं विचार (श्री भागवतनो सार)	564
34	हवे वली कहूं ते सुणो (एक सौ आठ पक्ष का सार)	589

35	हवे कांईक हूं मारी करूं (गुणनी आसंका)	602
36	गुण केटला कहूं मारा वाला	612
37	हवे सैयरने हूं प्रगट कहूं (प्रगट वाणी)	616

श्री कुलजम स्वरूप

निजनाम श्री कृष्ण जी, अनादि अक्षरातीत।
सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहित।।

प्रकाश गुजराती – जंबूर

प्रकाश गुजराती का अवतरण हब्शा में वि.सं. १७१५ में हुआ था। इसका हिन्दुस्तानी भाषा में अवतरण अनूपशहर में वि.सं. १७३६ में हुआ। अब प्रस्तुत है श्री इन्द्रावती जी के स्वरों में अवतरित प्रकाश गुजराती की हिन्दी टीका।

कांई एणी पेरे कीधूं रास, रमीने जागिया।
कांई आपण आ अवतार, फरीने मांगिया।।१।।

कुछ इस प्रकार से रास लीला करने के पश्चात् हम सभी सखियाँ परमधाम गयीं और अपने मूल तनों में जाग्रत हुईं। व्रज–रास में माया का दुःख देखने की हमारी इच्छा पूर्ण न हो सकी थी, इसलिये हमने धाम धनी से पुनः खेल दिखाने (इस संसार में लाने) की माँग की।

कांई तेणी घडी तत्काल, आपण आंही आवियां।
पेहेला फेराना लवलेस, आपण आंही ल्यावियां।।२।।

प्रियतम ने उसी क्षण हमारी माँग को स्वीकार कर लिया और उनके आदेश से हम सभी इस नश्वर जगत् में आ गयीं। पहली बार जब हम सभी व्रज–रास में आयी थीं, तो उस समय हमारी कुछ इच्छायें शेष रह गयी थीं, जिन्होंने हमें यहाँ पर ला दिया (आने के लिये विवश कर दिया)।

वालेजीए तेणी ताल, सुंदरबाई मोकल्यां।

सखी तमे लई चालो आवेस, म मूकूं एकला।।३।।

प्रियतम ने उसी क्षण श्यामा जी को सबके साथ यह कहते हुए भेजा कि मैं आपको अकेले नहीं भेज सकता। सर्वदा ही आपके साथ मेरा आवेश स्वरूप विद्यमान रहेगा।

इन्द्रावती लागे पाय, सुणो तमे साथ जी।

कांई आपणने अवसर, आव्यो छे हाथ जी।।४।।

श्री इन्द्रावती जी सब सुन्दरसाथ जी के चरणों में प्रणाम करके कहती हैं कि हे साथ जी! आप मेरी बात सुनिए। हमें प्रियतम की पहचान करके उन्हें रिझाने का बहुत ही सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है।

प्रकरण ।।१।। चौपाई ।।४।।

श्री साथनो प्रबोध – राग धनाश्री

सुन्दरसाथ को प्रबोधित करना

संभारो साथ, अवसर आव्यो छे हाथ जी।

आप नाख्या जेम पेहेले फेरे, वली नाखजो एम निघात जी।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! आप व्रज की लीला को याद कीजिए। जिस प्रकार आपने व्रज से रास में जाते समय स्वयं को धाम धनी के प्रति न्योछावर कर दिया था, उसी प्रकार निःसंकोच भाव से पुनः इस जागनी लीला में भी समर्पित हो जाइये। आपको यह स्वर्णिम अवसर पुनः प्राप्त हुआ है।

सुंदरबाई आपण माटे, आव्या छे आणी वार जी।

ए आपणने अलगां नव करे, कांई मोकल्या छे प्राण आधार जी।।२।।

इस जागनी लीला में श्यामा जी हमारे लिये ही आयी हैं। ये हमें किसी भी स्थिति में अपने से अलग नहीं कर सकतीं, क्योंकि हमारे प्राणवल्लभ श्री राज जी ने ही इन्हें हमारे साथ भेजा है।

सपनातरमां खिण नव मूके, तो साख्यात अलगां केम थाय जी।
कृपा वालाजीनी केही कहूं, जो जुए जीव रूदया मांहें जी।।३।।

श्यामा जी जब स्वप्न में भी हमें एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ सकती हैं, तो भला साक्षात् कैसे छोड़ सकती हैं? हे साथ जी! यदि आप अपने जीव के हृदय में इस बात का विचार करें, तो यह स्पष्ट होगा कि धाम धनी की कृपा अपार है। उसका वर्णन मैं कैसे कर सकती हूँ।

एवडी वात वालो करे रे आपणसूं, पण नथी कांई साथने सार जी।
भरम उडाडी जो आपण जोइए, तो बेठा छे आपणमां आधार जी।।४।।

प्रियतम हमारे प्रति इस प्रकार का प्रेममयी व्यवहार करते हैं, किन्तु सुन्दरसाथ को उसकी कुछ भी पहचान नहीं है। यदि हम अपने संशय को मिटाकर विचार करें, तो हमें विदित होगा कि धाम धनी हमारे (मेरे हृदय में) मध्य में ही बैठे हैं।

सपनातरमां मनोरथ कीधां, तो तिहां पण वालोजी साथ जी।
सुंदरबाई लई आवेस धणीनो, नव मूके आपणो हाथ जी।।५।।

व्रज में हमने माया की इच्छा की थी, किन्तु वहाँ हमारे साथ धाम धनी (श्री कृष्ण जी के तन में) अपने साथ थे। इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री राज जी का आवेश लेकर श्यामा जी हमारे साथ हैं। वे किसी भी स्थिति में हमारा

हाथ नहीं छोड़ेंगी।

तिलमात्र दुख नव दिए आपणने, जो जोइए वचन विचारी जी।
दुख आपणने तोज थाय छे, जो संसार कीजे छे भारी जी।।६।।

यदि हम तारतम वाणी के वचनों का विचार करके देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि प्रियतम हमें नाम मात्र भी दुःख नहीं दे सकते हैं। हमें दुःख का अनुभव इसलिये होता है क्योंकि हम अपने धाम धनी की अपेक्षा संसार को अधिक महत्वपूर्ण मानने लगते हैं।

अंतरध्यान समे दुख दीधां, ए आसंका मन मांहें जी।
एणे समे संसार भारी नव कीधूं, साथें दुख दीठां एम कांए जी।।७।।

हमारे मन में यह संशय उत्पन्न होता है कि यदि ऐसा है तो रास में अन्तर्धान के समय हमें विरह का दुःख क्यों

दिया? उस समय तो हमने संसार को महत्वपूर्ण नहीं माना था, फिर भी सुन्दरसाथ ने विरह का असह्य दुःख क्यों देखा?

दुखतां केमे न दिए रे वालोजी, ए तां विचारीने जोइए जी।
सांभरे वचन तोज रे सखियो, जो माया मूकतां घणूं रोइए जी।।८।।

हे साथ जी! आप इस विषय पर विचार करके देखिये कि धाम धनी हमें किसी भी प्रकार से दुःख नहीं देते हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस प्रकार की बातें हमें तभी याद आती हैं, जब माया छोड़ते समय मोहवश बहुत रोते हैं (दुःखी होते हैं)।

भावार्थ– जब माया का सुख छोड़ते समय हमें दुःख होता है, तो उसे न छोड़ने का हम बहाना ढूँढते हैं कि राज जी तो किसी भी प्रकार से दुःख देने वाले नहीं हैं,

पुनः माया का सुख छीनकर हमें दुःखी क्यों किया जा रहा है?

वचन संभारवा ने काजे मारे वाले, दुख दीधां अति घणां जी।
आपण मनोरथ एहज कीधां, वाले राख्या मन आपणां जी।।९।।

परमधाम में हमने माया का दुःख देखने की इच्छा की थी, इसलिये मेरे धाम धनी ने हमारे मन की इच्छा पूर्ण की और उसकी (दुःख माँगने की) याद देने के लिये रास में विरह का बहुत अधिक दुःख दिया।

आपण माया नी होंसज कीधी, अने माया तो दुख निधान जी।
ते संभारवाने काजे रे सखियो, वालो पाम्या ते अंतरध्यान जी।।१०।।

हे साथ जी! परमधाम में हमने माया का खेल देखने की इच्छा की थी और माया तो दुःखों का ही भण्डार स्वरूप

है। उस इच्छा की याद दिलाने के लिये ही प्रियतम रास के मध्य ओझल हो गये थे।

नहीं तो अधखिण ए रे आपणों, नव सहे विछोह जी।
ए तां विचारीने जोइए रे सखियो, तो तारतम भाजे संदेह जी।।११।।

अन्यथा, प्रियतम तो आधे क्षण के लिये भी हमारा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं। हे साथ जी! यदि आप इस सम्बन्ध में विचार करके देखें, तो तारतम वाणी से सभी संशय दूर हो जाते हैं।

एणे समे तारतमनी समझण, ते में केम केहेवाय जी।
अनेक विधनूं तारतम इहां, तेणे घर लीला प्रगट थाय जी।।१२।।

इस समय यह कैसे माना जाये कि हमें तारतम ज्ञान से सत्य की पहचान हो गयी है? इस संसार में तारतम ज्ञान

के अनेक स्वरूप हैं, जिनसे परमधाम की लीला प्रकट होती है।

ओलखवाने धणी आपणो, कहूं तारतम विचार जी।
साथ सकल तमे ग्रहजो चितसूं, नही राखूं संदेह लगार जी।।१३।।

अपने प्राणवल्लभ के स्वरूप की पहचान कराने के लिये मैं तारतम वाणी का कथन कहती हूँ। हे साथ जी! आप सभी एकाग्रचित्त से इसे ग्रहण कीजिए। मैं आपके मन में थोड़ा सा भी संशय नहीं रहने दूँगी।

पेहेले फेरे तां ए निध न हुती, अजवालूं तारतम जी।
तो आ फेरो थयो आपणने, साथ जुओ विचारी मन जी।।१४।।

हे साथ जी! यदि आप अपने मन में विचार करके देखें, तो व्रज में तारतम ज्ञान का उजाला न होने से हमें

प्रियतम और घर की पहचान नहीं थी, इसलिये हमें इस जागनी ब्रह्माण्ड में आना पड़ा है।

उत्कंठा नव रहे रे केहेनी, जो कीजे तारतम नो विचार जी।
तारतमतणूं अजवालूं लईने, आव्या आपणमां आधार जी।।१५।।

यदि आप तारतम वाणी का चिन्तन करके प्रियतम की पहचान कर लेते हैं, तो आपमें किसी भी प्रकार की लौकिक इच्छा नहीं रह पायेगी। प्रियतम अक्षरातीत ही तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर हमारे मध्य (मेरे धाम-हृदय में) विराजमान हैं।

एणे अजवाले जो न ओलख्या, तो आपणमां अति मणां जी।
चरणे लागी कहे इंद्रावती, वालो नव मूके गुण आपणां जी।।१६।।

इस तारतम ज्ञान के उजाले में भी यदि हम अपने

अराध्य (अक्षरातीत) को नहीं पहचान पाते हैं, तो यह दोष हमारे विवेक की अत्यधिक कमी को दर्शाता है। अपने प्राणेश्वर के चरणों में प्रणाम करती हुई श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि इतनी भूल होने पर भी धाम धनी हमसे प्रेम करने का अपना गुण नहीं छोड़ सकते हैं।

प्रकरण ।।२।। चौपाई ।।२०।।

सकल साथ, रखे कोई वचन विसारो जी।

धणी मल्या आपणने मायामां, अवसर आज तमारो जी।।१।।

हे साथ जी! आप सभी मेरे द्वारा कहे गये किसी भी वचन को भूलिये नहीं। धाम धनी हमें इस मायावी जगत् में (श्री मिहिरराज जी के तन में) मिले हैं। उन्हें रिझाने के लिये इस समय आपके पास सुनहरा अवसर है।

सुंदरबाई अंतरगत कहावे, प्रकास वचन अति भारी जी।

साथ सकल तमे मली सांभलो, जो जो तारतम विचारी जी।।२।।

मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर श्यामा जी कह रही हैं कि इस प्रकाश ग्रन्थ के वचन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। हे साथ जी! आप सभी मिलकर मेरी बात सुनिये। आप तारतम वाणी के वचनों का विचार करके देखिये (निर्णय कीजिए)।

साथ जी एणे पगले चालजो रे, पगला ते एह प्रमाण जी।
प्रगट तमने पेहेले कह्यूं, वली कहूं छूं निरवाण जी।।३।।

हे साथ जी! आप श्रीमुखवाणी के दर्शाये मार्ग पर चलिये। यही मार्ग श्रेयस्कर है। पहले भी मैंने प्रत्यक्ष रूप से यही बात कही थी। निश्चित रूप से पुनः एक बार वही बात कह रही हूँ।

हवे रखे माया मन धरो, तमे जोई ते अनेक जुगत जी।
कई कई पेरे कह्यूं में तमने, तमे हजी न पाम्या तृपित जी।।४।।

अब आप अपने मन को माया में न लगाइये। आपने अनेक प्रकार से इसे देख लिया है। मैंने आपको माया में फँसने से रोकने के लिये अनेक प्रकार से समझाया, किन्तु आप इसमें इतना डूब चुके हैं कि अभी भी इससे तृप्त नहीं हो पा रहे हैं।

जिहां लगे तमे रहो रे मायामां, रखे खिण मूको रास जी।
पचवीस पख लेजो आपणां, तमने नहीं लोपे मायानों पास जी।।५।।

आप जब तक इस मायावी संसार में हैं, तब तक एक क्षण के लिये भी रास की वाणी के चिन्तन एवं तद्नुसार आचरण को न छोड़िये। परमधाम के पच्चीस पक्षों की शोभा को अपने धाम-हृदय में बसाइये, जिसमें आपके ऊपर माया का कोई भी प्रभाव न पड़े।

अनेक विध में घणुंए कह्यूं, हवे रखे खिण विहिला थाओ जी।
रासतणी रामतडी जो जो, जे भरियां आपण पांउं जी।।६।।

मैंने आपको अनेक प्रकार से समझाकर यह बात कही है कि अब आप एक क्षण के लिये भी अपने प्राणवल्लभ से अलग न होइए। आप उस रास लीला के सम्बन्ध में विचार कीजिए, जिसमें क्रीड़ा करने के लिये आप इस

संसार को छोड़कर बेहद मण्डल में गये थे।

रास रामतडी रखे खिण मूको, जे आपण कीधी परमाण जी।
तमे घणुए नव मूको माया, पण हूं नहीं मूकूं निरवाण जी।।७।।

हमने बेहद में रास की जो रामतें की हैं, उसका चिन्तन एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़िये। भले ही आप माया को बहुत अधिक (पूर्ण रूप से) नहीं छोड़ पा रहे हैं, किन्तु मैं भी आपको निश्चित रूप से नहीं छोडूँगी अर्थात् उसमें लिप्त नहीं होने दूँगी।

कहे इन्द्रावती वचन वालाना, जे सुणया आपण सार जी।
हवे लाख वातो जो करे रे माया, तोहे नहीं मूकूं चरण निरधार जी।।८।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि प्रियतम के जिन वचनों को हमने (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुख से या

तारतम वाणी द्वारा) सुना है, उनका सार तत्व यही है कि माया चाहे कितना भी प्रयास क्यों न करे, किन्तु किसी भी स्थिति में मैं अपने प्रियेश्वर के चरणों को नहीं छोड़ूँ।

प्रकरण ।।३।। चौपाई ।।२८।।

चौपाई प्रगटी

न कांई मनमां न कांई चित, न कांई मारे रदे एवडी मत।
एक वचन समू नव केहेवाय, एतां आव्यो जाणे पूरतणो दरियाय।।१।।

मेरे मन, चित्त, या हृदय में स्थित मेरी बुद्धि में इतना सामर्थ्य नहीं है कि मैं इस तारतम वाणी का एक भी शब्द कह सकूँ, किन्तु धाम धनी की कृपा से यह ब्रह्मवाणी मेरे हृदय से इस प्रकार प्रकट हो रही है जैसे सागर में लहरों के प्रवाह (पूर) बहते हैं।

श्री सुंदरबाई लई आविया, इंद्रावती ऊपर पूरण दया।
रूदे बेसी केहेवराव्युं एह, साथ माटे कीधा सनेह।।२।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे ऊपर श्यामा जी की अपार (पूर्ण) कृपा है। वे परमधाम से इस वाणी को

लेकर आयी हैं तथा मेरे धाम–हृदय में विराजमान होकर व्यक्त करा रही हैं। ऐसा वे सुन्दरसाथ से प्रेम होने के कारण ही कर रही हैं।

वचन एक केहेतां निरधार, अमे घेर जईने लेसूं सार।
अदृष्ट थईने कहे वचन, साथ सकल तमे ग्रहजो मन।।३।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी कहा करते थे कि मैं इन्द्रावती जी के धाम–हृदय में विराजमान होकर सब सुन्दरसाथ की जागनी की सुधि लूँगा। हे साथ जी! आप सभी अपने मन में इस बात को बसा लीजिए कि अदृश्य (धामगमन) होने के पश्चात् वे ही मेरे हृदय में विराजमान होकर इस ब्रह्मवाणी को कह रहे हैं।

आपण पेहेलां पगला भरियां जेह, वली जे कीधां प्रेम सनेह।

ते प्रगट कीधां आपण माट, धोक मारग ए आपणी वाट।।४।।

व्रज–रास में हमने अपने प्रियतम के प्रति स्नेह–प्रेम का जो मार्ग अपनाया था, उसे ही धाम धनी ने तारतम वाणी द्वारा इस समय प्रकट कर दिया है। कर्मकाण्डों से परे का हमारा यह मार्ग प्रेम का विहङ्गम (पक्षी) मार्ग है।

आपणने ए प्रगट करी, साथ सकल लेजो चित धरी।

तमे रखे हलवी करो ए वाण, पूरण दयाए कह्यूं निरवाण।।५।।

हे साथ जी! आप इस बात को अपने चित्त में बसा लीजिए कि धाम धनी ने हमारे लिये ही यह तारतम वाणी प्रकट की है। आप इस ब्रह्मवाणी को हल्के रूप में न लीजिए। निश्चित रूप से प्रियतम की अपार कृपा से ही मैं यह बात कह रही हूँ।

प्रबोध वचन ते सदा केहेवाय, पण आ वचन कांई प्रगट न थाय।
ते माटे तमे सुणजो साथ, आपणमां बेठा प्राणनाथ।।६।।

परब्रह्म की महिमा के वचन तो हमेशा से ही कहे जाते रहे हैं, किन्तु उनके धाम, स्वरूप, और लीला की पहचान कराने वाले तारतम ज्ञान के इन वचनों को आज दिन तक किसी ने भी नहीं कहा है। अतः हे साथ जी! आप सभी मेरी इस बात को सुनिए। प्रियतम हमारे ही मध्य (मेरे धाम–हृदय में) बैठकर लीला कर रहे हैं।

आपणने सिखामण कहे, पण भरम आडे कांई रूदे नव रहे।
ते भरम उडाडो तमे जोई रास, जेम ओलखिए आपणो प्राणनाथ।।७।।

वे तारतम वाणी द्वारा हमें जाग्रत होने की सीख दे रहे हैं, किन्तु संशय हो जाने के कारण किसी के भी हृदय में वह सीख नहीं रह पाती है। हे साथ जी! आप अपने

संशय को हटाकर रास की तरह ही प्रेम का मार्ग अपनाइये, जिससे आपको अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की पहचान हो जाये।

विहिला थयानी नहीं ए वार, तेडवा आपणने आव्या आधार।
प्रगट पुकारी कहे छे सही, आ वचन कहाव्या अंतरगत रही।।८।।

यह समय प्रियतम से दूर होने का नहीं है। हमारे जीवन के आधार श्री राज जी हमें बुलाने के लिये ही आये हैं। वे मेरे हृदय में विराजमान होकर प्रत्यक्ष रूप से पुकार-पुकारकर इन वचनों को कह रहे हैं।

एक वचन न आवे अस्तुत, सोभा दीधी जेम कालबुत।
अस्तुतनी आंहीं केही वात, प्रगट थावा कीधी विख्यात।।९।।

प्रियतम ने मेरे इस नश्वर तन को तारतम वाणी कहने

की शोभा दे दी है, अन्यथा मुझसे तो धनी की महिमा में इस ब्रह्मवाणी का एक शब्द भी नहीं कहा जा सकता। प्रियतम अक्षरातीत की स्तुति कहने की यहाँ कैसी बात है, धाम धनी ने तो मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि तारतम वाणी कहने वाले स्वयं श्री राज जी ही हैं।

फल वस्त जे भारे वचन, जीव पण न कहे आगल मन।
ते प्रगट कीधां अपार, जे कांई हुतो आपणो सार।।१०।।

तारतम वाणी के सार तत्व रूपी आत्म-जाग्रति के वचन इतने गहन हैं कि उन्हें जीव भी अपने मन के आगे यथार्थ रूप से व्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं रखता। अपार महिमा वाले अखण्ड परमधाम का जो सार तत्व (मूल सम्बन्ध की पूर्ण पहचान) था, उसे प्रियतम ने

तारतम वाणी द्वारा प्रकट कर दिया है।

सगाई कीधी प्रगट, आपण घणुंए राखी गुपत।
वचन एक ए छे निरधार, श्री सुंदरबाई केहेतां जे सार।।११।।

धाम धनी ने तारतम वाणी द्वारा परमधाम के अपने मूल सम्बन्ध की पूर्ण पहचान को प्रकट कर दिया है, जिसे उन्होंने अनादि काल से हमसे छिपाकर रखा था। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी द्वारा कहे हुए वचनों का सार तत्व यही है कि निश्चित रूप से मूल सम्बन्ध की पूर्ण पहचान बहुत बड़ी (सर्वोपरि) बात है।

आ लीला थासे विस्तार, सूरज ढांक्यो न रहे लगार।
आ लीला केम छानी रहे, जेहेने रास धणी एम वचन कहे।।१२।।

इस जागनी लीला का बहुत अधिक विस्तार होगा। माया

के बादलों से ज्ञान रूपी सूर्य को नहीं ढका जा सकता। भला यह जागनी लीला कैसे छिपी रह सकती है, जिसकी महिमा में धाम धनी इस प्रकार के गौरवमयी वचन कहते हैं।

ते माटे तमे सुणजो साथ, जे प्रगट लीला कीधी प्राणनाथ।
कोई मनमां म धरजो रोष, रखे काढो मेहेराजनो दोष।।१३।।

इसलिये हे सुन्दरसाथ जी! आप सभी मेरी यह बात सुनिये। स्वयं अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ही प्रत्यक्ष रूप से यह लीला कर रहे हैं। कोई मुझ मिहिरराज को न तो दोषी बनाये और न ही क्रोध करे कि मैंने यह वाणी क्यों कह दी है।

एटलूं तमे जाणो निरधार, आ वचन मेहेराजें प्रगट न थाय।
आपण घरनी नहीं ए वात, जे किव करी मांडिए विख्यात।।१४।।

आप यह बात निश्चित रूप से जान लीजिए कि तारतम वाणी के वचनों को मैंने (मिहिरराज ने) नहीं कहा है। अपने परमधाम की यह रीति नहीं है कि काव्य (ग्रन्थ) रचना करके प्रसिद्धि प्राप्त कर लें और स्वयं को परब्रह्म के रूप में दर्शायें।

हूं मन मांहें एम जाणुं घणुं, जे किव नहीं ए काम आपणुं।
पण आतां नथी कांई किवनी वात, रूदे बेसी केहेवराव्युं प्राणनाथ।।१५।।

मैं अपने मन में इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ कि हम ब्रह्मसृष्टियों का कार्य अन्यों की तरह काव्य की रचना करना नहीं है। इस ब्रह्मवाणी को मात्र काव्य के रूप में ही नहीं देखना चाहिए। मेरे प्राणेश्वर

अक्षरातीत ने मेरे धाम–हृदय में विराजमान होकर मुझसे इस ब्रह्मवाणी को कहलाया है।

ए वचन सर्वे आवेसमां कह्या, उत्तमबाईए जोपे करी ग्रह्या।
एम कह्युं दई आवेस, जे प्रगट लीला कीधी वसेस।।१६।।

तारतम वाणी (रास, प्रकाश, एवं षट्ऋतु) के वचनों को हब्शा में मेरे धाम–हृदय में बैठकर अक्षरातीत ने अपने आवेश से कहा है। उद्धव राय ने उसे सुनकर अच्छी प्रकार से लिपिबद्ध किया। इस प्रकार, धाम धनी ने हब्शा में प्रत्यक्ष लीला की तथा अपने आवेश से इस वाणी को कहा।

में मन मांहें जाण्यूं एम, जे किव थासे त्यारे रमसूं केम।
किव पण थई आ वचन विचार, रमी इंद्रावती अनेक प्रकार।।१७।।

मैं अपने मन में ऐसा सोचा करती थी कि यदि इसी प्रकार काव्यमय वाणी का अवतरण होता रहेगा, तो मैं जागनी लीला का आनन्द कैसे लूँगी? किन्तु प्रियतम अक्षरातीत की ऐसी विशेष कृपा हुई कि गहन विचारों को प्रकट करने वाली काव्यमय तारतम वाणी का अवतरण भी हुआ तथा मैंने अपने प्रकार से जागनी लीला का आनन्द भी लिया।

सघला कारज थया एम सिध, श्रीसुंदरबाईए सिखामण दिध।
रूदे बेसी केहेवराव्युं रास, पेहेलो फेरो कीधो प्रकास।।१८।।

श्यामा जी ने मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर रास की वाणी कही। उन्होंने व्रज और रास की लीलाओं को प्रकाश में लाकर हमें समर्पण तथा प्रेम की स्वर्णिम राह पर चलने की शिक्षा दी। इस प्रकार, हमारे सभी कार्य

सिद्ध हो गये।

ते माटे तमे सुणजो साथ, आपण काजे कीधूं प्राणनाथ।
रखे जाणो मनमां रहे कांई लेस, ते माटे कीधो उपदेस।।१९।।

इसलिये हे सुन्दरसाथ जी! आप मेरी इस बात का श्रवण करें। यह सारी लीला हमारे प्राणवल्लभ ने हमारी आत्म-जाग्रति के लिये ही की है। किसी के मन में नाम मात्र के लिये भी माया का प्रभाव न रह जाये, इसलिये उन्होंने इस तारतम वाणी का अवतरण किया है।

आपण पेहेला पगला भरियां सार, एम चालो म लावो वार।
वली जो जो आ पेहेलां वचन, प्रेम सेवा एम राखो मन।।२०।।

हमने व्रज-रास में समर्पण तथा प्रेम की जो राह अपनायी थी, वह सर्वोपरि थी। हे साथ जी! इस जागनी

ब्रह्माण्ड में आप उसी मार्ग का अवलम्बन कीजिए। इसमें जरा भी देर न करें। पुनः व्रज एवं रास की प्रेममयी लीलाओं के वचनों का विचार कीजिए तथा अपने मन को प्रेम और सेवा के मार्ग पर ले चलिए।

तारतम वचन कहूं वली फरी, तमने कह्यूं छे अनेक विधे करी।
वली तमने कहूं प्रकास, सुणजो एक मने ग्रही स्वांस।।२१।।

हे साथ जी! मैं आपसे बार-बार तारतम के वचनों को कह रही हूँ। मैं इसे पहले भी आपसे अनेक प्रकार से कह चुकी हूँ। मेरे द्वारा कहे जाने वाले तारतम के इस उजाले को आप एकाग्र मन से सुनिये।

पेहेले फेरे श्री बैकुंठनाथ, इछा दरसन करवा साथ।
साथ तणे मन मनोरथ एह, जे माया रामत जोइए तेह।।२२।।

पहली बार हम व्रज–रास में इसलिये आये क्योंकि अक्षर ब्रह्म को हमारे दर्शन की इच्छा थी। सुन्दरसाथ के भी मन में माया का खेल देखने की प्रबल इच्छा थी।

त्यारे भगवानजी मन विमास्या रही, श्री धणीजीए इछा कीधी सही।
लाधूं सपन दीधूं आवेस, माया रामत कीधी प्रवेस।।२३।।

अक्षर ब्रह्म ने अपने मन में परमधाम की लीला देखने का जो विचार किया, उसे धाम धनी ने व्रज–रास में पूर्ण किया। अक्षर ब्रह्म की आत्मा में श्री राज जी के आवेश के साथ हम सबने इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड में माया के खेल में प्रवेश किया।

ए आवेस लईने करी, प्रगट्या गोकुल नंद घरी।
साथ सपन एम लाधूं सही, जे गोकुल रमिया भेला थई।।२४।।

अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने श्री राज जी के आवेश को लेकर नन्द जी के घर में श्री कृष्ण जी के तन में प्रवेश किया। इसी प्रकार, हम सब सखियों ने भी स्वप्न के ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया तथा गोकुल में प्रियतम के साथ मिलकर प्रेम की मधुर लीलायें की।

अग्यारे वरस लगे लीला करी, कालमाया इहांज परहरी।
जोगमाया करी रमियां रास, आनंद मन आणी उलास।।२५।।

व्रज में ११ वर्ष तक लीला करने के पश्चात् कालमाया के इस ब्रह्माण्ड का लय हो गया। सभी सखियाँ योगमाया के ब्रह्माण्ड में अपने प्रियतम के पास गयीं और अपने मन में अत्यधिक उमंग लेकर आनन्दपूर्वक रास की रामतें की।

रास रमी घेर आव्या एह, साथ सकल मन अधिक सनेह।
कांइक उत्कंठा रही मन सार, तो आपण आव्या आणी वार।।२६।।

रास खेलने के पश्चात् अपने मन में प्रियतम के प्रति अत्यधिक प्रेम भाव लेकर हम सभी सुन्दरसाथ परमधाम आये। किन्तु हमारे मन में माया देखने की कुछ इच्छा शेष रह गयी थी, इसलिये हमें पुनः इस ब्रह्माण्ड में आना पड़ा है।

वली एक वचन कहूं सुणजो साथ, दया करी कहे प्राणनाथ।
आ किव करी रखे जाणो मन, भरम टालवा कह्यां वचन।।२७।।

हे साथ जी! मैं पुनः आपसे एक और बात कह रही हूँ, आप उसे सुनें। अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी सब पर कृपा करते हुए मेरे अन्दर से यह बात कह रहे हैं। आप अपने मन में ऐसा मत समझिये कि यह श्रीमुखवाणी कोई काव्य

ग्रन्थ है। आपके संशयों को समाप्त करने के लिये ही धाम धनी ने यह वाणी कही है।

भरम टले ओलखाय धणी, अने सेवा थाय मारा वालाजी तणी।
ओलखाय वल्लभ तो टले माया पास, एटला माटे प्रगट थयो रास।।२८।।

मन के संशयों के मिटने पर प्रियतम की पहचान होती है। पहचान के पश्चात् ही कोई मेरे प्राणेश्वर की सच्चे हृदय से सेवा कर सकता है। प्रियतम की पहचान ही जीव के ऊपर चढ़े हुए माया के रंग (प्रभाव) को हटाती है, इसलिये धाम धनी ने रास ग्रन्थ का अवतरण किया है।

पेहेला फेराना अवतार, ते तारतमे कह्या विचार।
पेहेले फेरेतां खबर न पडी, तो आपण आव्या आंहीं वली।।२९।।

तारतम वाणी का कथन है कि पहली बार जब व्रज में

हम आये थे, तो अपने साथ लीला करने वाले धाम धनी की हमें पहचान नहीं थी। इसलिये विवश होकर हमें पुनः इस मायावी ब्रह्माण्ड में आना पड़ा है।

कांईक मन मांहें रह्यो अंदेस, ते राखे नहीं धणी लवलेस।
हवे आ फेरानो जो जो विचार, अजवालूं लई आव्या आधार।।३०।।

धाम धनी किसी के मन में किसी भी प्रकार का थोड़ा सा भी संशय नहीं रहने देते। अतः इस जागनी ब्रह्माण्ड में प्रियतम अक्षरातीत तारतम ज्ञान का जो उजाला लेकर आये हैं, आप उसका चिन्तन कीजिए।

साथने रखे उत्कंठा रहे, तारतम वचन पाधरा कहे।
लई तारतम आव्या आ वार, मेहता मतू घेर अवतार।।३१।।

तारतम वाणी परमधाम का सीधा मार्ग दर्शाती है,

जिससे सुन्दरसाथ में किसी भी प्रकार की मायावी इच्छा न रह जाये। इस जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान का उजाला लेकर श्री श्यामा जी आयीं, जिन्होंने मत्तू मेहता के घर जन्म लेने वाले श्री देवचन्द्र जी के तन में प्रवेश किया।

कुंअरबाई मातानूं नाम, उत्तम कायथ उमरकोट गाम।
श्री देवचंद जी नगर आविया, आवी वचन भागवतना ग्रह्या।।३२।।

उनकी माता का नाम कुँवरबाई था। उनके पिता उत्तम कायस्थ कुल के थे तथा उमरकोट ग्राम के रहने वाले थे। कुछ समय पश्चात् (लगभग २६ वर्ष की अवस्था में) श्री देवचन्द्र जी नवतनपुरी (जामनगर) आये। यहाँ पर उन्होंने कान्ह जी भट्ट से श्रीमद्भागवत् का श्रवण किया।

चौद वरस लगे नेष्टा बंध, वचन ग्रह्यां सघली सनंध।
एणे समे गांगजी भाई मल्या, धनबाई ऊपर पूरण दया।।३३।।

श्री देवचन्द्र जी ने १४ वर्षों तक निष्ठाबद्ध होकर सम्पूर्ण सार तत्व के साथ भागवत का श्रवण किया। इस समय उनकी भेंट गाँगजी भाई से हुई, जिनके अन्दर धनबाई जी की आत्मा थी। धाम धनी ने गाँगजी भाई के ऊपर पूर्ण कृपा की।

सनंधे सर्वे कह्या वचन, ग्रह्या गांगजी भाइए जोपे मन।
एटला लगे कोंणे नव लह्यां, ते गांगजी भाई घेर प्रगट थया।।३४।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान के प्रकाश में भागवत की सम्पूर्ण वास्तविकता को गाँगजी भाई से कहा। गाँगजी भाई ने पूर्ण विश्वास के साथ उसे ग्रहण किया। आज दिन तक जिस अक्षरातीत को कोई प्राप्त

नहीं कर सका था, वे अब गाँगजी भाई के घर साक्षात् विराजमान हो गये।

पधराव्या पोताने घेर, जुगते सेवा कीधी अनेक पेर।
त्यारे श्रीमुख वचन कह्यां प्राणनाथ, जे खोली काढवो छे आपणो साथ।।३५।।

गाँगजी भाई ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को अपने घर पधराया तथा अनेक प्रकार से उनकी सेवा की। उस समय अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने अपने श्री मुख से यह बात कही कि माया में भटके हुए सुन्दरसाथ को खोजकर निकालना है।

प्रवेस कीधो छे माया मंझार, तेडी आपणने जावूं निरधार।
अमे आव्या छूं एटले काम, तेडवा साथ घरे श्री धाम।।३६।।

सुन्दरसाथ इस मायावी संसार में आये हुए हैं। उन्हें

जाग्रत करके मुझे परमधाम ले जाना है। मैं इसी कार्य के लिये ही आया हूँ कि उन्हें जगाऊँ और अपने साथ निजधाम ले चलूँ।

त्यारे गांगजी भाई पाम्यां अचरज मन, जे किहां छे साथ अने आवसे केम।
आ वचन वेहदना कोण मानसे, केणी पेरे ए साथ आवसे।।३७।।

यह सुनकर गाँगजी भाई ने अपने मन में आश्चर्य करते हुए पूछा कि सुन्दरसाथ कहाँ-कहाँ पर हैं और आपके चरणों में कैसे आयेंगे? इस संसार में भला बेहद के वचनों को कौन मानेगा? सुन्दरसाथ किस प्रकार धनी के चरणों में आयेंगे?

आ माया पूर वहे निताल, नख मूक्यो लई जाय तत्काल।
लेहेर ऊपर आवे छे लेहेर, मांहें दीसे भमरीना फेर।।३८।।

माया रूपी सागर की लहरों का बहाव इतना तीव्र है कि इसे अँगुली से छूने पर नख को तोड़कर बहा ले जा सकता है। एक के बाद एक तृष्णा रूपी लहरें आती जा रही हैं। उसमें गोल भँवरिया भी दिखायी पड़ रही हैं, जिनमें फँस जाने वाला डूब जाता है।

आडा ऊभा वेहेवट घणां, अने विकराल जीव माहें जलतणा।
ऊंचो आडो ऊभो ऊंडो अतांग, पोहोरो कठिण नथी केहेनो लाग।।३९।।

तिरछी तथा खड़ी लहरों का बहाव बहुत ही भयंकर है। उनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के भयंकर जल-जीव भी रहते हैं। ऊँची, तिरछी, और खड़ी लहरों वाले इस भवसागर के जल की गहराई भी अथाह है। ऐसी विषम स्थिति है कि इस भवसागर से बाहर जाने का कोई भी मार्ग दिखायी नहीं दे रहा है।

नव सूझे हाथने हाथ, माया अमले छाक्यो साथ।

नव ओलखे आपने पर, सुध नहीं सरीर न सूझे घर।।४०।।

सुन्दरसाथ मायावी नशे में इतना डूब गया है कि अज्ञानता के अन्धकार में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है, अर्थात् अति पास की भी कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ रही है (अत्यन्त ज्ञानहीन अवस्था है)। न तो अपनी पहचान है और न पराये की। इस शरीर की नश्वरता और अपने अखण्ड घर परमधाम की पहचान का भी विवेक नहीं है।

त्यारे बेहेर दृष्टनो कह्यो विचार, एक मोटो आडीको थासे निरधार।

अंतरगते आवसे धणी, वस्तों आपणने देसे घणी।।४१।।

यह सुनकर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कहा कि ऐसी स्थिति में चमत्कारों से पूर्ण एक बहुत बड़ी आड़िका

लीला होगी, जिसके अन्तर्गत स्वयं धाम धनी प्रकट होंगे तथा सुन्दरसाथ को बहुत सी वस्तुए भेंट में देंगे।

आपण मांहें आंहीं आरोगसे, साथतणी द्रष्टे आवसे।
थासे छेडा ग्रह्या लगण, मानसे मन त्यारे अति घण।।४२।।

वे अपने मध्य में प्रकट होकर सुन्दरसाथ को दर्शन देंगे तथा उनके साथ भोजन करेंगे। सुन्दरसाथ उनका दामन भी पकड़कर बात करेंगे। इस लीला से उनके मन में धनी के प्रति बहुत अधिक विश्वास उत्पन्न होगा।

आवसे साथ उछाह अति घणां, पण तमे वचन मूको रखे तारतम तणां।
बेहेर दृष्टतणो जोई अजवास, आनंद मन उपजसे साथ।।४३।।

सुन्दरसाथ इस लीला को देखने के लिये बहुत अधिक उत्साह से आयेंगे, किन्तु आप तारतम के वचनों को न

छोड़ना। आड़िका लीला के चमत्कारों को देखकर सुन्दरसाथ के मन में बहुत अधिक आनन्द होगा।

त्यारे वचनतणां करसूं विचार, खरी वस्त जोसूं तत्काल।
वासना ओलखी लेसूं सही, माया जीवने वचन भारे केहेसूं नहीं।।४४।।

और वे चर्चा में मेरे द्वारा कहे गये तारतम ज्ञान के वचनों का विचार करेंगे। इस प्रकार, उन्हें उसी क्षण वास्तविक सत्य का बोध हो जायेगा तथा परमधाम की आत्मायें धाम धनी की पहचान कर लेंगी। इस लीला से मायावी जीवों को परमधाम का ज्ञान सुनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी, अर्थात् जीव सृष्टि न तो आड़िका लीला पर विश्वास कर पायेगी और न चर्चा पर। इससे आत्मायें सरलतापूर्वक धनी के चरणों में आ जायेंगी।

ए आडीको कीधो उत्तम, पण घरनी निध ते कही तारतम।
जेथी ओलखिए आधार, वली जीवने टले अंधकार।।४५।।

इसलिये इस आड़िका लीला का प्रदर्शन करना अति उत्तम होगा। परन्तु तारतम ज्ञान तो परमधाम की अखण्ड निधि है। इसी से अपने जीवन के आधार अक्षरातीत की पहचान होती है तथा जीव के ऊपर से मायावी अन्धकार का आवरण हट जाता है।

त्यारे गांगजी भाई पाम्या मन उछरंग, कीधां क्रतब अति घणे रंग।
साख्यात तणी सेवा कीधी सही, अंग पाछूं कोई राख्यूं नहीं।।४६।।

यह सुनकर गाँगजी भाई अपने मन में बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने सुन्दरसाथ को चर्चा के लिये अपने घर बुलाकर बहुत प्रेमपूर्वक सेवा करने का कार्य किया। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को साक्षात् धाम धनी मानकर,

उनकी सेवा करने में उन्होंने कोई कमी नहीं रखी।

हवे साथ खोली काढूं आवार, ते तां तमने में कह्यो प्रकार।
श्री सुंदरबाई तणो अवतार, पूरण आवेस दीधो आधार।।४७।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी! आपने मुझे जिस प्रकार से सुन्दरसाथ को जगाने के लिये कहा है, मैं वही राह अपनाकर अब सुन्दरसाथ को माया से खोज निकालूँगी। श्री देवचन्द्र जी के अन्दर श्यामा जी की आत्मा थी, जिन्हें आपने अपना पूर्ण आवेश दिया था।

आपणने तेडवा आविया, साथ ऊपर छे पूरण दया।
अनेक वचन आपणने कह्या, पण भरम आडे कांई रूदे नव रह्या।।४८।।

श्यामा जी की सुन्दरसाथ के ऊपर पूर्ण कृपा है। वे हमें माया से बुलाने (जगाने) के लिये इस संसार में आयी हैं।

उन्होंने हमें जगाने के लिये बहुत सी बातें कहीं, किन्तु हमारे मन में संशय था, जिसके कारण उनकी अमृतमयी बातें भी हमारे हृदय में न रह सकी।

त्यारे अनेक विधे आपणने कही, पण भरम बेठो चित आडो थई।
अनेक आपणने कह्या द्रष्टांत, तोहे बेठां अमे ग्रही स्वांत।।४९।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अनेक प्रकार से हमें समझाया, किन्तु हमारे हृदय में विद्यमान संशय ने मायावी आवरण (पर्दे) का काम किया। उन्होंने अनेक प्रकार के दृष्टान्त देकर भी हमें प्रबोधित किया, फिर भी हम निष्क्रिय (शान्त) से होकर बैठे रहे।

अनेक आपणसूं कीधां उपाय, तोहे आपणो सुभाव न जाय।
त्यारे अनेक विधे कह्यूं तारतम, तोहे आपणो न गयो भरम।।५०।।

हमें जगाने के लिये श्री देवचन्द्र जी ने अनेक उपाय किये, फिर भी हमारा निष्क्रियता वाला स्वभाव नहीं बदला। तब उन्होंने अनेक प्रकार से तारतम ज्ञान की चर्चा की, किन्तु हमारे संशय नहीं मिटे।

अनेक आपणसूं कीधां विचार, कही कही वांक टाल्यो आधार।
अनेक पखे समझाव्यां सही, आपणने टांकी लागी नहीं।।५१।।

धाम धनी ने हमसे अनेक प्रकार से विचार–विमर्श किया तथा तरह–तरह से समझाकर हमारे अवगुणों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने ज्ञान के अनेक पक्षों से भी हमें समझाया, किन्तु हमारे ऊपर उनके वचनों की चोट नहीं लगी।

त्यारे अनेक आडीका मेल्या आधार, तोहे आपणने न वली सार।
अनेक प्रकार करी करी रह्या, पख पचवीस आपणने कह्या।।५२।।

तब उन्होंने अनेक प्रकार की आड़िका लीलायें की, फिर भी हमें सुधि नहीं हुई। हमें जगाने के लिये आप अनेक प्रकार से प्रयास करते रहे। इसी क्रम में आपने परमधाम के पच्चीस पक्षों की भी शोभा का वर्णन किया।

ते पण आपण रह्या सही, तोहे भरम उडाड्यो नहीं।
तोहे आपण ऊपर अति दया, वृज तणां सुख विगते कह्या।।५३।।

हम आपकी बातों को सुनते तो रहे, किन्तु हमारे संशय समाप्त नहीं हुए। तब भी आपने हमारे ऊपर अपार दया की और व्रज लीला के सुखों का अच्छी प्रकार से वर्णन किया।

वली वसेखे वरणव्यो रास, पेहेला फेरानो कीधो प्रकास।

तोहे आपण हजी तेहना तेह, वली वरणव्या श्री धाम सनेह।।५४।।

व्रज लीला का वर्णन करने के पश्चात् सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने विशेष रूप से रास के सुखों का वर्णन किया। इतना होने पर भी जब हम वैसे के वैसे ही बने रहे, तो धाम धनी ने परमधाम के अनुपम प्रेम का वर्णन किया।

दया आपण ऊपर अति घणी, प्रगट लीला कीधी घरतणी।

सेवा कीधी धनबाइए ओलखी धणी, सोभा साथमां लीधी अति घणी।।५५।।

हमारे ऊपर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की बहुत कृपा रही है। उन्होंने परमधाम की तरह प्रत्यक्ष रूप से प्रेम की लीला की। गाँगजी भाई जी ने श्री देवचन्द्र जी के अन्दर अपने प्राणेश्वर की पहचान की और उसी भाव से सेवा

करके सुन्दरसाथ में बहुत अधिक शोभा ली।

साथसों हेत कीधां अपार, धंन धंन धनबाईनो अवतार।
कांइक लेहेर लागी संसार, त्यारे अडवडती ऊभी राखी आधार।।५६।।

धनबाई जी की आत्मा जिस गाँगजी भाई के तन में अवतरित हुई, वे धन्य धन्य हैं। उन्होंने सुन्दरसाथ की बहुत प्रेम भाव से सेवा की। यद्यपि इस भवसागर में माया की लहरों की चोट उन्हें भी लगी और वे कुछ लड़खड़ाने भी लगे, किन्तु धाम धनी ने उन्हें धर्म पर खड़े किया रखा।

भावार्थ– गाँगजी भाई की पत्नी भानबाई में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और सुन्दरसाथ की सेवा की इच्छा नहीं थी। मूल स्वरूप की प्रेरणा ने गाँगजी भाई की धर्मनिष्ठा को बनाये रखा, जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने पत्नी

का तो परित्याग कर दिया किन्तु सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और सुन्दरसाथ की सेवा नहीं छोड़ी।

बेहेवट पूर खमाए नहीं, त्यारे बांह ग्रहीने काढी सही।
पण न वली सुध आपणने केमे, मोहजल गुण नव मूक्यो अमे।।५७।।

गाँगजी भाई भवसागर की लहरों के तीक्ष्ण बहाव को सहन नहीं कर पा रहे थे, किन्तु धाम धनी ने उनका हाथ पकड़ उससे निकाल लिया, अर्थात् गाँगजी भाई अपनी धर्मपत्नी का मोहवश परित्याग नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि उसे किसी का भी अपने यहाँ आना अच्छा नहीं लगता था। धाम धनी की कृपा से उनका मोह भंग हुआ और उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। किन्तु गाँगजी भाई का यह त्याग देखकर भी हमें सुधि नहीं हुई और हम स्वयं को माया के प्रभाव से मुक्त नहीं कर पाये।

त्यारे वढ्या आपणसूं पोतावट करी, तोहे भरम निद्रा नव मूकी परहरी।
त्यारे अनेक पेरे आसूंवालीने कह्यूं, पण एणे समे अमे कांई नव लह्यूं।।५८।।

तब अपनेपन की भावना से आपने खीजकर भी हमें समझाया, फिर भी हम अपनी संशय की निद्रा को छोड़कर उनकी पहचान नहीं कर पाये। इसके पश्चात् आँसू भरे नेत्रों से भी उन्होंने हमें समझाने का प्रयास किया, किन्तु इस समय भी हमने कुछ भी ग्रहण नहीं किया अर्थात् उन्हें पहचान नहीं सके।

त्यारे वली धणी जीए कीधा विचार, जे साथ घेर तेडी जावुं निरधार।
त्यारे संवत सतरे बारोतरे वरख, भादरवो मास अजवालो पख।।५९।।

तब धाम धनी ने पुनः विचार किया कि सुन्दरसाथ को तो जाग्रत करके परमधाम ले ही जाना है, इसलिये वि.सं. १७१२ में भादो मास के शुक्ल पक्ष में।

चतुरदसी बुधवारी थई, सनंधे सर्वे श्री बिहारीजीने कही।

मध्यरात पछी कीधो परियाण, बिहारीजी ने कांइक खबर थई जाण।।६०।।

चतुर्दशी तिथि बुधवार को उन्होंने अपने देह त्याग की सारी बात बिहारी जी से बतायी और मध्य रात्रि के पश्चात् अपने नश्वर तन का परित्याग कर दिया। इसके पश्चात् बिहारी जी को अपने पिता की अलौकिकता का कुछ पता चला।

हूं तेणे समे थई बेठी अजाण, मूने फजीत गिनाने कीधी निरवाण।

घरथी तेडी मूने दीधी निध, तोहे न मूकी जीवे मोहजल बुध।।६१।।

किन्तु ऐसे समय में भी मैं अनजान सी बनी रही, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। मेरे चतुराई भरे शुष्क ज्ञान ने मुझे भावविहीन सा बना दिया था, जिसके कारण मेरी यह दुर्दशा हुई। यद्यपि प्रियतम ने तो मुझे घर से बुलाकर

तारतम ज्ञान के रूप में परमधाम की अखण्ड निधि दे ही दी थी, फिर भी मेरा जीव अपनी मायावी बुद्धि को नहीं छोड़ सका था।

मूने हती मायानी लेहेर, तो न आव्यो जीवने बेहेर।
त्यारे मारी निध गई मांहेंथी मारे हाथ, श्री धाम घेर पोहोंता प्राणनाथ।।६२।।

मेरे अन्दर माया का प्रभाव था, जिसके कारण मेरा जीव धनी के विरह में नहीं डूब सका। जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरी अखण्ड निधि मेरे हाथ से चली गयी, अर्थात् मुझे अपने प्रियतम से वियोग का कष्ट देखना पड़ा। मेरे प्राणवल्लभ ने अपना पहले वाला तन छोड़ दिया तथा मेरे धाम-हृदय में आकर विराजमान हो गये, किन्तु मैं भी इस तथ्य से अनजान सी रही।

आंही अम मांहेंथी अदृष्ट थया, अमे सारा साजा बेसी रह्या।
जो कांई जीवने आवे भाय, तो आ वचन केम काने संभलाय।।६३।।

इस प्रकार, प्रियतम हमारे मध्य से अदृश्य हो गये और हम जैसे के तैसे बैठे रहे कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं। यदि मेरे जीव में उस समय प्रेम के कुछ भी भाव आ जाते, तो हमारे कान प्रियतम के सम्बन्ध में इस बात को सुनकर सहन करने का सामर्थ्य कैसे करते कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का धामगमन हो गया है।

ते तां में जोयूं मारी दृष्ट, अने जीव थई बेठो कोई दुष्ट।
नहीं तो विछोडो केम खमाए, पण दुष्ट भरम बेठो मन मांहें।।६४।।

मैंने जब अपनी विवेक दृष्टि से देखा (विचार किया), तो यह निष्कर्ष निकला कि मेरा जीव ही माया के प्रभाव से दुष्ट भाव को प्राप्त हो गया था, अन्यथा प्रियतम का

वियोग भला कैसे सहन किया जा सकता था। किन्तु मैं क्या करती? मेरे मन में दुष्ट संशय ने अपना घर बना लिया था, जिसके कारण मैं अपने प्राणेश्वर को ही पहचान नहीं सकी।

एक वचन तणो नव कीधो विचार, न कांई ओलखिया आधार।
सांभलो रतनबाई ए कीहू प्रकार, एवी बुध केम आवी आवार।।६५।।

हे बिहारी जी! जरा मेरी बात सुनिए। मेरी बुद्धि को इस बार (जागनी ब्रह्माण्ड में) क्या हो गया है कि न तो मैंने अपने प्राणप्रियतम की किसी बात का विचार किया और न ही उनकी कुछ पहचान की।

एणे समे अपने सूं थयूं, सगाईतणों सुख कांई नव लह्यूं।
जुओ रे बेहेनी अमे एम कां थया, एवडा दुख अमे खमीने रह्या।।६६।।

हे बिहारी जी (बहन रतन बाई)! जरा देखिये तो, इस विकट समय में मुझे क्या हो गया था कि मैं अपने धाम धनी की पहचान का कोई भी सुख नहीं ले सकी। मुझसे इस प्रकार का दुर्व्यवहार कैसे हो गया कि उनके वियोग के भयंकर दुःख को भी मैंने इतनी सरलता से सहन कर लिया?

ए दुखनी वातो छे अति घणी, पण ए अग्या मारा वालाजी तणी।
एणे समे जो निध नव जाय, तो आवेस सरूप केम मुकाय।।६७।।

यद्यपि ये बहुत ही दुःख भरी बातें हैं, किन्तु ऐसा श्री राज जी के आदेश से ही हुआ। यदि ऐसे समय में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ओझल नहीं होते, तो आवेश स्वरूप श्री राज जी से मेरा वियोग कैसे होता?

आवेसे धणी ओलखाय, ओलखे खिण जुआ न रेहेवाय।
ते माटे जो एम न थाय, तो आ वाणी केम केहेवाय।।६८।।

आवेश से ही प्रियतम के स्वरूप की पहचान होती है, अर्थात् जिस तन में श्री राज जी का आवेश लीला करता है, वह उनका ही स्वरूप होता है। पहचान होने के पश्चात् एक क्षण के लिये भी अलग नहीं रहा जा सकता। इसलिये यदि ऐसा नहीं होता (अन्तर्धान नहीं होता), तो विरह के भावों वाली इस वाणी का अवतरण कैसे होता?

हवे फिट फिट रे भूंडी तूं बुध, तें नव दीधी जीवने सुध।
महादुष्ट अभागणी तूं, जांण जीवने कां नव करयूं।।६९।।

रे मूर्खा बुद्धि! तू तो महादुष्टा है, अभागिनी है। तुझे धिक्कार, धिक्कार है। तूने जीव को प्रियतम की पहचान क्यों नहीं दी? तूने मेरे जीव को यह बोध क्यों नहीं

कराया कि श्री देवचन्द्र जी के धाम–हृदय में मेरे प्राणेश्वर ही लीला कर रहे हैं?

एवडी वात तें केम करी सही, के तूं घर मूकीने गई।
के तूं विकल थई पापनी, बिना खबर निध गई आपनी।।७०।।

रे पापिनी बुद्धि! तूने प्रियतम के अन्तर्धान होने की बात को कैसे सहन कर लिया? क्या तू उस समय इस शरीर को छोड़कर कहीं और चली गयी थी? तू इतनी शक्तिहीन कैसे हो गयी थी कि तूने मुझे अन्तर्धान की जानकारी भी नहीं दी और वे चले गये?

हवे तूंने सी दऊं रे गाल, ते नव लाध्यो अवसर आणी वार।
हवे फिट फिट रे भूंडा तूं मन, तें कां कीधो एवडो अधरम।।७१।।

रे पापी मन! तुझे बारम्बार धिक्कार है। तुझे अब मैं कौन

सी गाली दूँ? इस बार इस जागनी लीला में तूने धाम धनी को रिझाने के स्वर्णिम अवसर का लाभ नहीं लिया। तूने ऐसा अधर्म क्यों किया?

जीव समो तूं बेठो थई, तुझ देखतां ए निध गई।
एवडी उपमा बेठो लई, अने बेठो छे काया धणी थई।।७२।।

तू जीव के समान इतनी बड़ी शोभा लेकर शरीर में केवल बैठा ही रहा। तुम्हारे देखते–देखते प्रियतम अपने तन को छोड़कर चले गये और तू मात्र दिखाने के लिये ही शरीर का स्वामी कहलाता रहा। तूने अपने प्रियतम के लिये कोई भी त्याग नहीं किया।

तें नव कीधूं जीवने जांण, नेठ खोटो ते खोटो निरवाण।
आ क्रोध हतो सबलो समरथ, पण नव सरयूं तूं मांहेंथी अरथ।।७३।।

रे मन! तू निश्चित रूप से नीच से भी नीच है। तूने तो प्रियतम के धामगमन की बात का मुझे पता ही नहीं चलने दिया। रे क्रोध! तू तो बहुत अधिक बलवान और सामर्थ्यवान है, किन्तु तूने भी मेरा कोई भी अभिप्राय (प्रयोजन) सिद्ध नहीं किया।

गुण सघले घारण आवियो, अने जीव कायामां बेसी रह्यो।
सघला गुण काया मंझार, कोणे नव लाध्यो अवसर आणी वार।।७४।।

मेरे सभी गुणों को नींद आ गयी और मेरा जीव भी इस शरीर में निरर्थक ही बैठा रह गया। यद्यपि मेरे सभी गुण शरीर के अन्दर ही थे, किन्तु इस बार (जागनी लीला में) किसी भी गुण ने अवसर का लाभ नहीं लिया।

फिट फिट रे भूंडा जीव अजाण, तारी सगाई हती निरवाण।
रे मूरख तूंने सूं थयूं, ए निध जातां कांई पाछूं नव रह्यूं।।७५।।

रे पापी अज्ञानी जीव! तुझे तो बार–बार धिक्कार है। निश्चित रूप से तेरा सम्बन्ध तो प्रियतम अक्षरातीत के साथ था। रे मूर्ख! तुझे क्या हो गया था? उनके अन्तर्धान होने पर तूने उनका पीछा क्यों नहीं किया, अर्थात् तूने भी अपना शरीर क्यों नहीं छोड़ दिया?

ऐटला दुख तें केम करी सह्या, अनेक विध तूंने धणीए कह्या।
निर्बल जीव नीच तूं थयो निरधार, तें नव कीधी धणीनी सार।।७६।।

तूने इतना भयंकर दुःख कैसे सह लिया? तुझे तो धाम धनी ने अनेक प्रकार से समझाया था, किन्तु तूने उनकी जरा भी सुधि नहीं ली। रे जीव! निश्चित रूप से तू बहुत ही नीच और निर्बल हो गया है।

एवो अबूझ अकरमी थयो तूं कांए, कांई न विमास्यूं रूदया मांहें।
बुध मन सारूं बेठो थई, निध जातां तोहे घारण न गई।।७७।।

तू इस प्रकार नासमझ एवं निष्क्रिय कैसे हो गया? तूने अपने हृदय में जरा भी विचार नहीं किया। तू बुद्धि एवं मन के समान निठल्ला होकर बैठा ही रहा। प्रियतम के अन्तर्धान होने के समय भी तू अपनी निद्रा का परित्याग नहीं कर सका।

एवो कठण कोरडू तूं कां थयो, आवडी अगने हजी नव चड्यो।
पांच वरसनो होय जे बाल, ते पण कांइक करे संभाल।।७८।।

तू खांगडू (कठोर दाल के दाने) के समान इतने कठोर हृदय वाला कैसे हो गया? ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि की इतनी तपन मिलने के पश्चात् भी तू गला क्यों नहीं? पाँच वर्ष का जो बालक होता है, वह भी कुछ समझदारी रखता

है, किन्तु तू तो उससे भी गया–गुजरा (हीन) है।

हवे तूंने हूं केटलूं कहूं, अवसर आवयो तें कांई नव लह्यूं।
तारी दोरी कां न टूटी तत्काल, फिट फिट भूंडा किहां हतो काल।।७९।।

अब मैं तुझे कितना कहूँ? तुझे प्रियतम को रिझाने का इतना सुन्दर अवसर मिला था, किन्तु तूने उसका लाभ नहीं उठाया। प्रियतम के अन्तर्धान होने के समय ही तेरी जीवन डोर क्यों नहीं टूट गयी? रे पापी काल! तूझे धिक्कार है! धिक्कार है! तू उस समय कहाँ चला गया था?

आ तां केहेर मोटो जुलम थयो, अणे जाणिए तो केम जाय सह्यो।
ते तां में मारी मीटे जोयूं, धरम अमारूं कांई नव रह्यूं।।८०।।

यह तो बहुत ही भयंकर अनर्थ हो गया। इसकी जानकारी मिलने पर तो किसी भी प्रकार से यह सहा

नहीं जा सकता। जब मैंने अपनी विवेक दृष्टि से देखा, तो मुझे ऐसा लगा मेरा तो पतिव्रता धर्म कुछ भी नहीं रह गया। मेरे प्रियतम चले गये और मैं संसार में किस प्रकार रह रही हूँ?

प्रकरण ।।४।। चौपाई ।।१०८।।

विलाप करया छे – राग रामश्री

इस प्रकरण में प्रियतम के धाम चले जाने पर श्री इन्द्रावती जी की विरह–व्यथा का मनोरम वर्णन किया गया है।

जुओ रे बेहेनी हूं हाय हाय, करती हींडूं त्राहे त्राहे।
वालोजी रे विछड़तां, कां जीव कडका न थाए।।१।।

हे बिहारी जी! देखिये, प्रियतम के वियोग में मैं अब हाय–हाय और त्राहि–त्राहि (बचाओ–बचाओ) कहती हुई घूम रही हूँ। प्रियतम से वियोग हो जाने के पश्चात् मेरे जीव के टुकड़े–टुकड़े क्यों नहीं हो जा रहे हैं?

फिट फिट रे भूंडा तूं सब्द, केम आवी मुख वाण।
वाए न आव्यो ते दिसनो, धणी भेला चालतां मारा प्राण।।२।।

मेरे मुख से इस प्रकार का उच्चारण कैसे हो गया कि मेरे प्रियतम धाम चले गये हैं? ऐसी अशोभनीय बात को प्रकट करने वाले पापी शब्दों, तुम्हें धिक्कार है। मेरे प्राणों! तुम इस शरीर को छोड़कर क्यों नहीं चले गये? तुम्हें तो प्रियतम के धाम चलने की जरा भी भनक नहीं लग सकी।

केम वली जिभ्या मारी, ए केहेतां वचन।

समूली न चुटाणी, जिहां थकी उतपन।।३।।

इन वचनों को कहने में मेरी जिह्वा कैसे सफल हो गयी? जिस कण्ठ मूल से तू निकली है, वहाँ से ही उखड़ क्यों न गई?

श्री धणीजी सिधावतां, केम रही वाचा रे अंग।

उखडी न पड्या दंतडा, घण घाय मुख भंग।।४।।

प्रियतम के धामगमन के पश्चात् भी यह नादान जिह्वा अभी भी मेरे शरीर का अंग क्यों बनी हुई है? शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला वियोग रूपी दुःख का भयंकर हथौड़ा मेरे मुख पर पड़ा, किन्तु आश्चर्य है कि मेरे दाँत मेरे मुख से निकले क्यों नहीं?

केम न सुणियां रे, ए वचन तें श्रवणा।

तें सूं न हता सुणया, वचन धणी तणां।।५।।

हे कानों! क्या तुमने यह बात नहीं सुनी कि धनी अन्तर्धान हो गये हैं? उसके पहले भी क्या तूने प्रियतम के मुख से तारतम ज्ञान के वचनों को सुना नहीं था?

ए रे लवो सुणतां, तूंने दाझ न आवी।

एणे रे लवे अगिन नी, झालमां कां न झंपावी।।६।।

कानों! प्रियतम के धामगमन की जरा सी सूचना पाकर तुम्हारे सम्पूर्ण अंगों में आग क्यों नहीं लग गयी? तुम्हें तो यह दुःखद समाचार सुनते ही अग्नि की लपटों में दौड़ते हुए कूद जाना चाहिए था।

निबल नेंणां रे भूंडा, तमे दृष्टें नव जोयूं।

वालोजी रे विछड़तां, तमें लोही नव रोयूं।।७।।

मेरे निर्लज्ज पापी नेत्रों! क्या तुम्हें यह दिखायी नहीं दिया कि मेरे प्राणेश्वर ओझल हो गये हैं? प्रियतम के बिछुड़ते समय तुम्हारी आँखों से खून के आँसू क्यों नहीं निकले?

सूं रे थयूं तमने, तमे लोही नव रडिया।

एवो विरह देखी ततखिण, निकली न पडिया।।८।।

नेत्रों! तुम्हें क्या हो गया है? तुम खून के आँसू बहाते हुए क्यों नहीं रोए? प्रियतम का इस प्रकार का असह्य विरह देखकर भी तुम शरीर से निकलकर बाहर क्यों नहीं हो गये?

ए वचन तणी तूंने नासिका, न आवी प्रेमल।

वालैयो रे विछडतां, तें नव दाख्यू बल।।९।।

मेरी नासिका! तुझे प्राणवल्लभ के बिछुड़ने की सुगन्धि का अनुभव क्यों नहीं हुआ? उनके अन्तर्धान होने के समय तूने अपनी शक्ति क्यों नहीं दर्शायी?

फिट फिट रे प्रेमल, नासिका केम रही।

ए निध जातां अंगथी, विछडी नव गई।।१०।।

सुगन्धि का अनुभव करने वाली मेरी नासिका! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। धाम धनी के अन्तर्धान होते समय तू मुख (अंग) से निकल क्यों नहीं गयी?

प्रेमतणी रे धणी, गोली बांधतां काम।

तेहेमां सूं न हता रे गुण, तमे चतुर सुजांण।।११।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी अपनी अमृतमयी चर्चा के द्वारा सब सुन्दरसाथ को प्रेम के रस में डुबो दिया करते थे (प्रेम की गोली बाँधते थे)। मेरे तीनों गुणों (सत्व, रज, तम)! तुम तो चतुर और प्रवीण कहलाते हो। क्या तुम उस समय नहीं थे?

फिट फिट रे गुण तमने, ए अंग ना प्रेम काम।

नव लाध्यो विरह रे, विछड़तां धणी श्री धाम।।१२।।

मेरे तीनों गुणों! तुम्हें बार–बार धिक्कार है क्योंकि मेरे हृदय में इस समय प्रियतम के प्रेम की चाहत ही नहीं है। प्राणेश्वर अक्षरातीत के अन्तर्धान होते समय तुमने उनके विरह में मुझे क्यों नहीं डुबो दिया?

एवड़ी वात तें केम सही, अंग ऊभो केम रह्यो।

रोम रोम हेठे कां, गली नव पड़ियो।।१३।।

तीनों गुणों! इस बात को तुमने सहन भी कैसे कर लिया? मेरा यह कठोर हृदय अभी भी इस संसार में कैसे रह रहा है? मेरे इस शरीर का रोम–रोम गलकर नीचे क्यों नहीं गिर गया?

अगिनडी न उठी रे, कालजडे रे झाल।

ए विरह लई अंग कां, ऊभो रह्यो रे चंडाल।।१४।।

मेरे चाण्डाल हृदय! तुम अग्नि की लपटों में जलकर राख क्यों नहीं हो गये? प्रियतम का वियोग देखकर भी तुम अभी अपने अस्तित्व को कैसे बनाये हुए हो?

हाथ पग सहु अंग ना, सर्वे रे संधाण।

जुजवा कां नव थया रे, आथमते ए भाण।।१५।।

तारतम ज्ञान के सूर्य के अस्त होने अर्थात् प्रियतम के ओझल हो जाने पर मेरे इस शरीर के सभी अंग तथा हाथ-पैर अपनी-अपनी सन्धियों (जोड़ों) से अलग क्यों नहीं हो गये?

भाण वचन रे कांई, ए वालाने न केहेवाय।

धणीतणी रे जोत, कोट ब्रह्मांडे न समाय।।१६।।

मेरे प्राणेश्वर की उपमा इस नश्वर सूर्य से नहीं दी जा सकती क्योंकि प्रियतम के तारतम ज्ञान की ज्योति इतनी असीम है कि वह करोड़ों ब्रह्माण्डों में भी नहीं समाती है।

जोत ने प्रगट थई, नव झाली रहे विना ठाम।

ब्रह्मांड अखंडोंमां निसरी, जई पोहोंती घर श्री धाम।।१७।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के हृदय से प्रकट होने वाले तारतम ज्ञान की ज्योति अपने मूल स्थान परमधाम पहुँचे बिना नहीं रुक सकती। वह व्रज–रास के अखण्ड ब्रह्माण्डों से होती हुई परमधाम के रंगमहल में जा पहुँची।

ए जोत जोसे रे सखी, सकल मलीने साथ।

वचन ए प्रगट थासे, रास ने प्रकास।।१८।।

हे बिहारी जी! सब सुन्दरसाथ मिलकर इस तारतम ज्ञान की ज्योति को देखेंगे। अब जो रास एवं प्रकाश की वाणी प्रकट हुई है, उसके वचन सर्वत्र प्रकाशित (उजागर) हो जायेंगे।

नसो न त्रूटी रे, तूं केम रही तन तुचा।

रूप रंग लई कां न थई, तिल तिल जेवडा पुरजा।।१९।।

मेरे शरीर की नसें (रक्त वाहिनियाँ) टूट क्यों नहीं गयीं। शरीर पर लिपटी हुई त्वचा! तू अब तक कैसे दिखायी दे रही है? तू अपने रूप-रंग (सौन्दर्य) के साथ बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में परिवर्तित क्यों नहीं हो गयी?

हाड मांस रे तमे, केम रहया रे भेला।

कांय न सूकयुं रे मारूं, लोही तेणी वेला।।२०।।

मेरे शरीर में स्थित अस्थि और माँस अब तक एकसाथ कैसे जुड़े रह गये? प्रियतम के धामगमन के समय, मेरे शरीर का सम्पूर्ण रक्त ही क्यों नहीं सूख गया।

फिट फिट रे तुंबड़ी, भूंडी केम रही रे साजी।

साखला न थई रे, एहरण घण वचे लागी।।२१।।

लगभग गोलाकृत लौकी की तरह दिखने वाली मेरी खोपड़ी (शिर)! तू पापिनी है। तू अब तक बची कैसे रह गयी? एहरन और घन के बीच लगने वाली चोट, अर्थात् धामगमन के कारण होने वाले विरह के कष्ट, से तू चूर-चूर क्यों नहीं हो गयी?

अंग मारा रे अभागी, तमे कां भूको नव थयो।

ए धणी रे चालतां, अधरमी कां ऊभो रह्यो।।२२।।

मेरे शरीर के अधर्मी अंगों! तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गये? प्रियतम धाम चले गये और तुम किसलिये अभी तक शरीर में सुरक्षित दिखायी दे रहे हो?

केम ने रह्यूं रे मारा, अंग माहें रे बल।

तें जीवने नव काढ्यूं रे, निध जातां नेहेचल।।२३।।

मेरे प्राणधन अक्षरातीत के अन्तर्धान होने के पश्चात् भी मेरे अंगों में अभी शक्ति कैसे बनी हुई है? तूने मेरे जीव को इस शरीर से बाहर क्यों नहीं निकाल दिया?

नेहेचल निध रे जातां, तूं किहां हती रे बुध।

धिक धिक रे चंडालनी, तू कां थई रे असुध।।२४।।

रे चण्डालिनी बुद्धि! तुझे बारम्बर धिक्कार है। प्रियतम के अन्तर्धान होने के समय तू कहाँ चली गयी थी? तू इतनी बेसुध (लापरवाह, प्रमादी) कैसे हो गयी थी?

गिनान भूंडा रे एणे समे, नव कीधो अजवास।

एवी सी मूने भोलवी रे, में कीधो तारो विस्वास।।२५।।

रे पापी ज्ञान! ऐसे समय में तूने मेरे हृदय में विवेक का उजाला क्यों नहीं किया? मैंने तो तुम्हारे ऊपर विश्वास किया था, किन्तु तूने मुझे इस प्रकार क्यों भुलाये रखा?

गुण ने सघला मली रे, तमे मोसूं थया अवला।

मारो धणी रे चालतां, तमे कां नव थया सबला।।२६।।

मेरे सभी गुणों! धाम धनी के ओझल होने के समय तुम सभी मिलकर मेरी राह से विपरीत क्यों चलने लगे थे? तुमने उस समय प्रियतम के प्रति समर्पित होने के सच्चे मार्ग का अनुसरण क्यों नहीं किया?

ए वालो रे चालतां, गुण हता अंग मांहें।

काम न आव्या रे तमे, मारे अवसर क्यांहें।।२७।।

मेरे प्राणवल्लभ के धामगमन के समय मेरे अंगों में सभी गुण तो विद्यमान अवश्य थे, किन्तु इस दुःखद अवसर पर उनमें कोई भी किसी काम में न आ सके।

धिक धिक पड़ो रे तमने, सूं न हती ओलखाण।

जीवनू धन रे जाता, तमे कां नव काढ्या रे प्राण।।२८।।

मेरे गुणों! तुम्हें धिक्कार है। क्या तुम्हें भी प्रियतम की पहचान नहीं थी? जीवन के आधार प्रियतम के ओझल होते समय तुमने मेरे प्राणों को इस शरीर से क्यों नहीं निकाल दिया?

कांए न निसरियो रे, भूंडा जीव एणी वार।

फिट फिट रे कालिया अवसर, चूक्यो रे चंडाल।।२९।।

हे पापी जीव! तू इस बार इस शरीर को छोड़कर निकल क्यों नहीं गया? रे चाण्डाल काल! तुझे धिक्कार है, जो तूने मेरे शरीर को अपने अधीन करने का अवसर खो दिया।

नीच अधरमी जीव रे, एवो अधरम कोई करे।

श्री धणी धाम चाल्या पछी, आकार कोण धरे।।३०।।

मेरे अधर्मी नीच जीव! क्या अन्य कोई भी ऐसा अधर्म कर सकता है, जैसा तूने किया है? धाम धनी के अन्तर्धान होने के बाद भला ऐसा कौन है, जो अपने मिथ्या तन को रखना चाहेगा?

केही पेर करूं जीव तूंने, तूं चूक्यो रे चंडाल।

जो तूंने अगिन न उठी रे, कां न झंपाव्यो झाल।।३१।।

रे चाण्डाल जीव! अब तू ही बता, तेरे साथ मैं कैसा व्यवहार करूँ? तूने प्रियतम के प्रति अपने प्रेम एवं समर्पण को व्यक्त करने का अवसर ही खो दिया। तुम्हारे अन्दर विरह की अग्नि क्यों नहीं जली? तूने विरहाग्नि की लपटों में स्वयं को भस्मीभूत क्यों नहीं कर दिया?

भैरव न झंपाव्यो रे जीव, एवो थयो कां कायर।
तरवारे न ताछ्यो रे अंग, धणी जातां सुख सायर।।३२।।

रे जीव! तू इतना बड़ा कायर कैसे हो गया? प्रियतम के अन्तर्धान होने की पीड़ा में तूने पहाड़ी से छलांग क्यों नहीं लगा ली? सुख के सागर धाम धनी के ओझल होते ही तुमने तलवार से अपने अंग-अंग को काट क्यों नहीं डाला?

गुण धणी जातां रे जीव, ताहरो किहां हतो रे काल।
करम कोढियो ढेड तूं, थयो रे चंडाल।।३३।।

रे जीव! गुणों के सागर प्रियतम के धामगमन के समय तुम्हारा काल कहाँ था? तू तो अपने नीच कर्मों से कोढ़ी और चाण्डाल के समान घृणा का पात्र हो चुका है।

हवे केटलूं कहूं रे दुष्ट, तें नव ग्रह्यो वांसो।

अवसर भूल्यो रे घणों, पडियो रे वरासों।।३४।।

रे दुष्ट जीव! मैं तुम्हें कितना कहूँ? तूने प्रियतम की राह नहीं पकड़ी अर्थात् उनके धामगमन के समय तुझे भी अपना तन छोड़ देना चाहिये था। समर्पण के इस सुनहरे अवसर पर तूने अपना शरीर रखकर बहुत बड़ी भूल की है। अब तुझे पड़े-पड़े पछताना पड़ेगा।

खरी रे वस्तनों, तूंने हतो रे तेज।

तें कां नव राख्यो रे, धाम धणीसूं हेज।।३५।।

जीव! तुम्हारे पास तो सत्य ज्ञान का तेज था, किन्तु तूने अपने प्राणवल्लभ के साथ प्रेम का सम्बन्ध क्यों नहीं रखा?

ए धणी रे विछडतां, केम रह्यो रे अंग पास।

कांय न समाणो रे तूं, तेज जोत प्रकास।।३६।।

ऐसे सर्वसमर्थ प्रियतम के बिछुड़ने के समय, तू अपने शरीर में ही क्यों बना रहा? तू परमधाम के उस तेज, ज्योति, और प्रकाश के मूल अक्षरातीत के स्वरूप में क्यों नहीं प्रवेश कर गया?

हवे हूं केम करूं रे, वचन वाणी धणी किहां।

वालैयो वोलावी करी, हूं पाछी रही इहां।।३७।।

रे जीव! अब तू ही बता कि मैं क्या करूँ? प्रियतम की अमृतमयी वाणी के शब्द अब मुझे कहाँ मिलेंगे? प्रियतम के धाम चले जाने पर मैं व्यर्थ ही इस मिथ्या संसार में रह रही हूँ।

हवे किहांने सुणीस रे, ए वचन वल्लभ।

श्रीमुख वाणी रे मूने, थई छे दुर्लभ।।३८।।

अक्षरातीत के श्रीमुख से निकलने वाली अमृतमयी वाणी अब मेरे लिये दुर्लभ हो गयी है। प्रियतम के उन वचनों को अब मैं कहाँ सुन पाऊँगी?

तारतम तणा विचार, कोण करी देसे हेत।

केमने सांभलसूं रे, वृज रास अखंडना विवेक।।३९।।

अब उतने प्रेम से मुझे तारतम ज्ञान के वचनों को कौन समझायेगा? अखण्ड व्रज एवं रास की लीलाओं के गुह्य भेदों को अब मैं किससे सुनूँगी?

उत्तम आडीका नें, वली उत्तम दृष्टांत।

कोणनें विचारसे, धणी विना करी खांत।।४०।।

अब प्रियतम की अनुपस्थिति में ऐसा कौन है, जो उत्तम आड़िका लीला का दर्शन कराने के साथ ही उत्तम दृष्टान्तों द्वारा मुझे तरह-तरह से समझायेगा?

चौद वरस लगे नेष्टाबंध, भागवत कोण लेसे।

एहेनो सार काढी अमने, ततखिण कोण देसे।।४१।।

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अतिरिक्त भला और कौन है, जो निष्ठाबद्ध होकर १४ वर्षों तक भागवत का श्रवण करेगा तथा उसके सार तत्व को तारतम ज्ञान के प्रकाश में निकालकर हमें क्षण भर में ही दे देगा।

दूध–पाणी ना विछोडा, कोण करीने देसे।

हवे आ बेहेवट मांहेथी, बांहें ग्रहीने कोण लेसे।।४२।।

अब कौन है, जो तारतम ज्ञान के प्रकाश में ब्रह्म तथा माया के स्वरूप को अलग–अलग करके बतायेगा? माया के भयंकर बहाव में से हमारा हाथ पकड़कर अब कौन निकालेगा?

एक सो ने आठ रे, कहिए जे पख।

ते जुजवा वरणवी, अमने कोण देसे रे सुख।।४३।।

क्षर जगत् से लेकर परमधाम तक के १०८ पक्षों का अलग–अलग वर्णन करके उसका सुख देने वाला अब कौन है?

नरसैयां कबीर ने जाटी, वचन कोण लेसे।

एहेना अर्थ अमने, कोण करी देसे।।४४।।

नरसैंया, कबीर जी, तथा जाटी भाषा के मर्म को अब कौन ग्रहण करेगा, तथा हमें भी सरलतापूर्वक उसका रसपान कौन करायेगा?

महा ने प्रले लगे, कोई करे रे अभ्यास।

सर्वे विद्या सास्त्रनी, लिए करी विस्वास।।४५।।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाप्रलय होने तक के समयान्तराल में भी यदि कोई दृढ़ विश्वास के साथ सभी विद्याओं तथा शास्त्रों का अभ्यास करे।

तोहे केमे न आवे रे, विद्या एवी रे वाण।

ते खिण मांहें दई करी, वालो करतां चतुर सुजांण।।४६।।

तो भी किसी भी प्रकार से उस ब्रह्मविद्या का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, जो धाम धनी तारतम ज्ञान के प्रकाश में एक क्षण में ही देकर हमें चतुर और विलक्षण ब्रह्मज्ञानी बना देते रहे हैं।

अबूझ टालीने हवे, कोण करसे वचिखिण।

नेहेचल निध निज धामनी, कोण देसे ततखिण।।४७।।

अब ऐसा कौन है, जो हमारी अज्ञानता को दूर करके उसी क्षण तारतम ज्ञान के रूप में परमधाम की अखण्ड निधि देगा तथा आध्यात्मिक ज्ञान में हमें प्रवीण कर देगा?

खीजी वढीने ए निध, बीजो कोण देसे।

जीव ना सगा जांणी, आंसुवाली कोण केहेसे।।४८।।

अब हमें डाँट–फटकारकर तारतम ज्ञान के प्रकाश में कौन समझायेगा? हमारे जीव से भी अपना सम्बन्ध जानकर भाव–विह्वल अवस्था में आँसुओं के साथ हमें जाग्रत होने के लिये कौन प्रेरित करेगा?

अनेक पेरे अमने, एम कोण रे प्रीछवसे।

देखाडवा आ रामत, एणी पेरे देह कोण धरसे।।४९।।

अब कौन है, जो हमें इस प्रकार तरह–तरह से समझाकर जगायेगा? हमें माया का यह खेल दिखाने के लिये इस प्रकार शरीर भी कौन धारण करेगा?

आ ब्रह्मांडने रामत, बीजो कोण केहेसे।

ए रामत देखाडी ए थकी, अलगां राखी कोण लेसे।।५०।।

इस मायावी ब्रह्माण्ड की वास्तविकता को अब हमें कौन बतायेगा? माया का यह खेल दिखाकर हमें इससे अलग करके परमधाम की राह कौन दिखायेगा?

विध विधनी रे चरचा, हवे किहां रे सांभलसूं।

एह रे वाणी विना, हवे आपण केम गलसूं।।५१।।

अध्यात्म के अलग-अलग पक्षों की चर्चा अब हम कहाँ सुनेंगे? प्रियतम के मुखारविन्द की अमृतमयी चर्चा सुने बिना हम निर्मल कैसे होंगे?

गल्या पखे बीजो घाट, केम करी थासे।

बीजो घाट विना मोहजल, केम रे मुकासे।।५२।।

विकारों से परे हुए बिना हमारे जीव योगमाया के ब्रह्माण्ड में कैसे पहुँचेंगे? बेहद की प्राप्ति के बिना मोहजल का बन्धन भी कैसे छूटेगा?

पांच पचीस तेहने, बीजो कोण ओलखावसे।

वचन धणीना पखे, ए सवलो केम थासे।।५३।।

अब हमें कौन पाँच तत्वों तथा २५ प्रकृतियों [महत्तत्व, अहंकार, चित्त, मन, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तत्व, एवं जीव] की अलग-अलग पहचान करायेगा? प्रियतम के वचनों के बिना अब हमें माया से हटाकर कौन सीधे मार्ग पर लगायेगा?

जीवता गुण ते हवे, केणी पेरे मरसे।

दुखी टालीने सुखी, बीजो कोण करसे।।५४।।

अब तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) को मारकर हमें कौन जीवित करेगा, अर्थात् त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँचायेगा? मायावी दुःखों के बन्धनों से मुक्त करके हमें अखण्ड सुख का अनुभव कौन करायेगा?

श्रवणा ने अंग इंद्री, टालसे कोण अवला।

ए धणी बिना बीजो कोण, करी देसे सवला।।५५।।

धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कौन है, जो हमारे अन्तःकरण तथा कान आदि इन्द्रियों को विषय-भोगों (टेढ़े मार्ग) से हटाकर परमधाम के सीधे मार्ग पर ले चलेगा?

आतम ने परआतमा, भेला कोण करसे।

आ भवसागर मांहेथी, बीजो कोण लई तरसे।।५६।।

प्रियतम के अतिरिक्त और दूसरा कौन है, जो हमारी आत्मिक दृष्टि को इस भवसागर से पार ले जाये और परमधाम में हमारी परात्म के सम्मुख कर दे?

नखत्रोड पूर तणातां, बांहें ग्रहीने कोण वालसे।

एवा रे लाड अमारा, हवे बीजो कोण पालसे।।५७।।

छूने मात्र से नख को भी तोड़कर बहा ले जाने वाले माया के तीव्र बहाव में से, हमारा हाथ पकड़कर अब हमें कौन निकालेगा? प्रियतम के अतिरिक्त अब दूसरा कौन है, जो हमसे इतना प्रेम करेगा?

सागर जीव खोली करी, वासना कोण परखसे।

खोलतां लाधे वासना, एम कोण रे हरखसे।।५८।।

इस भवसागर में जीवों के मध्य छिपी हुई ब्रह्मात्माओं की पहचान कौन करेगा? उनसे मिलन होने पर धनी के अतिरिक्त अन्य कौन है, जो इतना अधिक प्रफुल्लित होगा?

हवे कोणने वरणवसे, वृज रास ने श्री धाम।

ए सुख दई भाजसे, कोण मारा जीवनी हाम।।५९।।

अब अखण्ड व्रज, रास, तथा परमधाम की चर्चा कौन करेगा? ज्ञान चर्चा का सुख देकर हमारे जीव की चाहना को अब कौन पूरा करेगा?

जीवने जगावी ए निध, बीजो कोण देसे।

श्रवणा उघाडी जीवना, एम वचन कोण केहेसे।।६०।।

हमारे जीव को जाग्रत करके प्रियतम की पहचान रूपी अखण्ड निधि को अब हमें कौन देगा? जीव के अन्तःश्रवणों को खोलकर परमधाम के अमृतमयी वचनों को अब कौन सुनायेगा?

नेहेचल निध दई करी, सूतो जीव कोण रे जगाडसे।

ब्रह्मांड फोडीने श्री धाम, ऊपरवाडे एम कोण पोहोंचाडसे।।६१।।

परमधाम की अखण्ड निधि रूप तारतम ज्ञान को देकर हमारे सोये हुए जीव को कौन जगायेगा? हमारी अन्तर्दृष्टि को इस ब्रह्माण्ड से परे परमधाम के मार्ग पर कौन ले चलेगा?

ऊपरवाडे वाट खिण मांहें, ए घर केम रे लेवासे।

ए भोइया बिना रे आ भोम, केम रे मेलासे।।६२।।

ब्रह्माण्ड से परे निजधाम का मार्ग बताकर क्षण भर में ही हमारी अन्तर्दृष्टि (सुरता) को वहाँ कौन ले जायेगा? उन जैसे मार्गदर्शक के बिना इस मायावी जगत् से छुटकारा कैसे मिल सकता है?

अचेत अबूझ साथने, कोण सुधारी लेसे।

जीवना सगां जाणी करी, ए निध बीजो कोण देसे।।६३।।

माया में बेसुधि और अज्ञानता के शिकार सुन्दरसाथ को कौन सुधारेगा, अर्थात् ज्ञान और प्रेम की राह पर ले चलेगा? जीव को समर्पण भाव से अपने चरणों में आया हुआ जानकर, तारतम ज्ञान की अनमोल निधि को भला आपके अतिरिक्त देने वाला और कौन हो सकता है?

सुतेज सत सागर मांहेथी, धन आवतूं अविचल।

वही गयूं ते पूर, लेहेर आवतियूं छोल।।६४।।

परम ज्ञान के अनादि सागर से ज्ञान का धन अखण्ड रूप से (निरन्तर) सुन्दरसाथ को प्राप्त हो रहा था। प्रियतम के अन्तर्धान होने से ज्ञान की लहरों का प्रवाह आना अब बन्द हो गया है।

ए निध बेहेनी रे हूं, बेठी रे खोई।

भरम मूने गेहेन हुतो, तेणे हूं रही रे जोई।।६५।।

हे बिहारी जी की आत्मा रतन बाई! प्रियतम के अन्तर्धान के रूप में मैं अपनी अखण्ड निधि खो चुकी हूँ। मेरे हृदय में प्रियतम के प्रति बहुत अधिक संशय था, जिसका परिणाम अब मैं वियोग के रूप में देख रही हूँ।

एवडूं अंधारूं थातां, तूं केम रही रे जोई।

फिट फिट रे तूं पापनी, ए निध केम रही खोई।।६६।।

स्वयं को सम्बोधित करती हुई (परोक्ष में सबको सीख देती हुई) श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि तुम्हारे हृदय में माया का इतना अन्धकार छाया हुआ था, फिर भी तू ऐसा अनर्थ होता हुआ क्यों देखती रही? रे पापिनी! तुझे धिक्कार है। तूने परमधाम की अखण्ड निधि (प्रियतम के स्वरूप) को कैसे खो दिया?

धिक धिक रे जीवडा, तें खोई निध हाथे।

श्री धणी धाम चालतां, तूं न चाल्यो रे साथे।।६७।।

मेरे जीव! तुझे बार-बार धिक्कार है। तूने हाथ में आयी हुई अखण्ड निधि को खो दिया है। जब धाम धनी का अन्तर्धान हो गया, तो तूने भी उनके साथ ही अपने

शरीर का परित्याग क्यों नहीं कर दिया?

खूंटी न आवी रे भूंडी, तूं वल्लभ विछडतां।
हजी न जाय रे जीव, ए वचन रे सांभरतां।।६८।।

रे पापिनी! प्रियतम से वियोग होने के समय तेरी भी मृत्यु क्यों नहीं हो गयी? रे जीव! इन वचनों को सुनकर भी तू अभी इस तन का त्याग क्यों नहीं कर दे रहा है?

फिट फिट रे भूंडा जीव, ए तें कीधूं रे सूं।
ए विरह देखी रे अंगथी, उडी न पडियो रे तूं।।६९।।

रे मूर्ख जीव! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। तूने यह क्या कर दिया? अपने हृदय में प्रियतम के विरह का अनुभव करने पर भी तूने इस शरीर को छोड़ क्यों नहीं दिया (उड़ क्यों नहीं गया)?

हाय हाय करूं रे बेहेनी, वाले दीधो मूने छेह।

भसम न थयो रे, मारा जीवसुं देह।।७०।।

हाय-हाय बिहारी जी! मेरे प्राणवल्लभ ने मुझे वियोग दे दिया है। फिर भी न जाने क्यों, मेरा यह शरीर जीव से अलग होकर भस्म (जलकर राख में परिवर्तित) नहीं हो जा रहा है?

घणुए कह्यूं रे बेहेनी, मूने मूल सनेह।

पण हूं निगमी बेठी रे, निध हाथ आवी जेह।।७१।।

हे बिहारी जी! परमधाम के मूल सम्बन्ध से प्रेम के कारण धाम धनी ने मुझसे ज्ञान की बहुत सी बातें कही थीं, किन्तु मैं तो ऐसी मन्दभाग्या हूँ कि हाथ में आये हुए धन को खोकर बैठी हूँ, अर्थात् मेरे साथ-साथ सर्वदा रहने वाले प्रियतम का मुझसे अब वियोग हो गया है।

मूने घणुए जणावियूं, निध दई चालता एकांत।

पण में खोई निध पापनी रे, ग्रही बेठी हूं स्वांत।।७२।।

धामगमन से पूर्व प्रियतम ने एकान्त में मुझे ज्ञान की बहुत गम्भीर बातें बतायीं। किन्तु मैं ऐसी पापिनी हूँ कि अपने प्राणेश्वर को ही खो बैठी और अब चुपचाप शान्त पड़ी हुई हूँ।

हवे सब्दातीत निध, कोण देसे रे वांण।

वर्तमाण तणी रे, कोण केहेसे रे जांण।।७३।।

वर्तमान समय में अब शब्दातीत परमधाम की वाणी कौन बतायेगा? इसके अतिरिक्त वहाँ की अखण्ड लीला का सुख भी कौन कहेगा?

उठतां बेसतां रमतां, खबर कोण देसे।

वन पधारया रे सखी, सिणगार कोण वरणवसे।।७४।।

हे सखी! परमधाम में प्रियतम के साथ उठने, बैठने, तथा खेलने की लीलाओं का ज्ञान कौन देगा? वनों में जाकर झीलना (स्नान करने) के बाद किये गये श्रृंगार का वर्णन कौन सुनायेगा?

वस्तर भूखण तणी रे, विगत कोण लेसे।

ए धणी विना रे ए सुख, हवे बीजो कोण देसे।।७५।।

धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कौन है, जो मूल स्वरूप के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा की वास्तविकता को जानता हो? उनके अन्तर्धान के पश्चात् अब हमें उनके वर्णन का सुख देने वाला कौन है?

मूल तारतम तणी, कोण प्रीछवसे रे बडाई।

धाम धणीसूं मूने, कोण करी देसे रे सगाई।।७६।।

अब भला कौन है, जो तारतम ज्ञान के प्रकाश में हमें मूल स्वरूप श्री राज जी की अनन्त महिमा को बतायेगा तथा उनसे हमारी आत्मा का अनादि सम्बन्ध दर्शायेगा।

मूल तारतम तणा, कोण करसे रे विचार।

आसामुखी हुती इंद्रावती, मारा प्राणना आधार।।७७।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणों के आधार श्री राज जी! अब तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम के मूल सुखों का ज्ञान कौन समझायेगा? मुझे हमेशा वहाँ के सुखों की ही चाहत रहती थी। मेरी इच्छा को अब कौन पूर्ण करेगा?

प्रकरण ।।५।। चौपाई ।।१८५।।

भाखा सिंधी जाटी

मूंजी सैयल रे, सजण हुअडा मूं गरें।

मूं न सुजातां सिपरी, हल्या कारयूं घणूं करे।।१।।

शब्दार्थ– मूंजी–मेरे, सैयल–सखी, हुअडा–आये, सुजाता–पहचान हुई, सिपरी–प्रियतम, हल्या–चले गये।

अर्थ– हे मेरी सखी! मेरे प्राणेश्वर मेरे घर आये थे, किन्तु मैं उनकी पहचान नहीं कर सकी। अन्त में वे मुझे जगाने के लिये पुकार–पुकारकर चले गये।

सजण आया मूं गरे, मूं न सुजातां सेंण।

गाल्यूं केयाऊं हेतमें, घणी भती भती जा वेण।।२।।

शब्दार्थ– गरे–घर, सेंण–सन्देश, गाल्यूं केयाऊं–बातें

की, भती भती–तरह तरह से।

अर्थ– प्रियतम मेरे घर आये थे। उन्होंने तरह–तरह के वचनों से प्रेमपूर्वक मुझसे बहुत अधिक बातें की, किन्तु मैंने उनके सन्देशों को नहीं समझा।

मूंके जा घारण आवई, जे अंई पसो साथ।
त खरे बपोरे सेज सोझरे, मूंके थेई रात।।३।।

शब्दार्थ– मूंके–मुझे, घारण–नींद, अंई–तुम, पसो–देखती हो, सेज–सूर्य, सोझरे–प्रकाश में।

अर्थ– मुझे नींद आ गयी थी। तुम सामने देख सकती हो कि दोपहर के समय, तपते सूर्य के उजाले में भी मेरे लिये रात्रि जैसा दृश्य उपस्थित हो गया है।

सजण आया मूं न सुजातम, मूंके चेयाऊं घणा वेण।

कंन अखियुं फूटियुं, व्या फूट्या हिए जा नेंण।।४।।

शब्दार्थ– चेयाऊं–कही, व्या–और।

अर्थ– प्रियतम तो आये, किन्तु मैंने नहीं पहचाना। उन्होंने मुझसे बहुत सी बातें की, किन्तु मेरे बाह्य कान और आँखें तो फूटे ही थे, हृदय के आन्तरिक नेत्र भी फूटे थे।

सजण विया निकरी, हांणे आंऊं करियां की।

अवसर व्यो मूंजे हथ मंझां, हांणें रूअण रातो डीं।।५।।

शब्दार्थ– विया–मध्य से, निकरी–चले गये, हांणे–अब, व्यो–चला गया।

अर्थ– प्रियतम हमारे मध्य से चले गये। अब मैं क्या करूँ? अब मेरे हाथ से सुनहरा अवसर निकल गया। अब

तो रात–दिन रोने के अतिरिक्त और किया क्या जा सकता है?

पिरी हल्या प्रभात में, आंऊं उथिस अवेरी।

की वंजाइयां वलहो, जे हुंद जागां सवेरी।।६।।

शब्दार्थ– उथिस–उठी, अवेरी–देर से, वंजाइयां वलहो–छोड़ देती, जे–यदि, हुंद–मैं।

अर्थ– प्रियतम तड़के प्रातःकाल ही चले गये। मैं देर से उठी थी। यदि मैं तड़के प्रातःकाल ही उठ जाती, तो सम्भवतः प्रियतम को नहीं खो पाती।

जीव मूहीजो जे तडे जागे, त अवसर वंजाइयां की।

हुंद साथ न छडियां सजणे, आडी लेहेर माया थेई नी।।७।।

शब्दार्थ– मूहीजो–मेरा, थेईनी–न आयी होती।

अर्थ– यदि उसी समय मेरा जीव जाग जाता, तो मैं यह सुन्दर अवसर क्यों खोती। यदि मेरे सामने माया की लहर नहीं आयी होती, तो भला मैं प्रियतम का साथ क्यों छोड़ती?

हांणे डिसूनी डोहे निहारियां, तां जर भरया अतांग।
महें लेहेरयूं मेर जेडियुं, व्या मछे पेरां न्हाय मांग।।८।।

शब्दार्थ– डिसूनी–दशों, डोहे–दिशाओं में, जर–जल, अतांग–अथाह, पेरां–पहले, मांग–मार्ग।

अर्थ– अब मैं दशों दिशाओं में देखती हूँ, तो चारों ओर अथाह भवसागर दिखायी दे रहा है। इसमें सुमेरु पर्वत जैसी ऊँची–ऊँची मायावी लहर उठ रही हैं। एक तो इसमें पहले से बड़े–बड़े मगरमच्छ (काम, क्रोधादि) हैं,

दूसरा इसमें से बाहर निकलने का कोई मार्ग भी दिखायी नहीं पड़ रहा है।

महें घूमरियूं जर जुजवा, व्या परी परी जा पूर।
हिक वेर न वेहेजे सुख करे, हेतां डिसे डुखे संदा मूर।।९।।

शब्दार्थ– महें–अन्दर, हिक वेर–एक पल, वेहेजे–बैठ पाती हूँ, हेतां–यह, मूर–घर।

अर्थ– इस भवसागर में अलग–अलग प्रकार की भँवरें (पानी के गोल चक्कर) दिखायी देती हैं। मायावी लहरों के प्रवाह तरह–तरह से आते रहते हैं। एक पल भी सुख से बैठा नहीं जाता। यह संसार तो सर्वदा दुःख के घर के समान ही दिखायी देता है।

हिक घोर अंधारो व्यो अंखे न सुझे, त्रेओ हियडो न्हायम हंद।

पिरी आया मूंके पार उतारण, एहेडी धारा मंझ।।१०।।

शब्दार्थ– त्रेओ–तीसरे, न्हायम–नहीं है, हंद–ठिकाना।

अर्थ– एक तो इस भवसागर में चारों ओर घोर अन्धेरा है। दूसरी बात यह है कि आँखों से स्पष्ट दिखायी नहीं देता, और तीसरी बात यह है कि मेरे हृदय का कोई ठिकाना नहीं है अर्थात् मेरे हृदय में उठने वाले विचारों में स्थिरता नहीं है। इस प्रकार की विषम परिस्थतियों में मेरे प्रियतम मुझे इस भवसागर से पार करने आये थे।

मूं कारण सैयल मूंहजी, हिनमें विधाऊं पांण।

कूकड्यिूं करे करे, नेठ उथी वियां निरवांण।।११।।

शब्दार्थ– विधाऊं–बन्ध गये, पांण–स्वयं, कूकडियूं–पुकार पुकार कर, नेठ–हारकर या थककर।

अर्थ– हे सखी! मुझे जगाने के लिये प्रियतम इस भवसागर में स्वयं आये। तारतम ज्ञान से पुकार करते–करते थक–हारकर चले गये।

हांणे की करियां केडा वंजां, केहेडो मूंजो हांणे हंद।
पिरी न पसां अंखिऐ, जे मूं कारण आया माया मंझ।।१२।।

शब्दार्थ– केडा–कहाँ, वंजां–जाऊँ।

अर्थ– अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरा ठिकाना कहाँ है? मेरे प्राणवल्लभ मुझे जगाने के लिये इस संसार में आये थे, किन्तु अब मैं उन्हें ही इन आँखों से देख नहीं पा रही हूँ।

प्रकरण ।।६।। चौपाई ।।१९७।।

बीजी विलामणी

दूसरा विलाप

विलामणी का शुद्ध रूप विलखामणी है, जिसका अर्थ होता है– विरह।

सजण विया मूंजा निकरी, मूं तां सुजातां न सारे रे।
मूंके चेयाऊं घणवे पुकारे रे, न की न्हारयो मूं दिल विचारे रे।।
से सजण हांणे कित न्हारियां।।१।।

मेरे प्राणेश्वर यहाँ (श्री देवचन्द्र जी के तन) से चले गये, किन्तु मैं उनकी कुछ भी पहचान नहीं कर सकी। मुझे जगाने के लिये उन्होंने बहुत पुकार–पुकार कर कहा, किन्तु मैंने अपने हृदय में इस बात का कुछ भी विचार कर नहीं देखा। अब ऐसे धनी को मैं कहाँ देखूँ?

अदी रे पिरिए पांणसे जा केई, आऊंसे जे संभारियां साथ।

पांणजे काजे हिन मायामें, कीय विधाऊं आप।।२।।

शब्दार्थ– अदी–बहन,सखी, आऊं–मैं, पांणजे–हमारे।

अर्थ– हे सखी! धाम धनी ने हमारे प्रति जो प्रेम व्यवहार किया है, उसकी मैं सुन्दरसाथ को पहचान कराती हूँ कि हमारे लिये उन्होंने स्वयं को किस प्रकार माया में डाला।

हिक अधगुण संभारजे, अदी रे त पण लभे साह।

गुण संभारीदे सजणें, अजां को न उडे अरवाह।।३।।

हे सखी! यदि प्रियतम के किसी एक गुण के आधे की भी पहचान हो जाती, तो वे मिल जाते। अब तारतम वाणी से उनके गुणों की पहचान करके मेरी आत्मा इस संसार को क्यों नहीं छोड़ देती?

अदी रे सजण सांणें हलया, घणूं धायडियूं पाए।

खुई मुंहजो जिंदुओ जे, अजां अंख न उघाडे रे।।४।।

शब्दार्थ– सांणें–सामने, धायडियूं–शोर या पुकार करना, खुई–आग लग जाये, जिंदुओ–जीव।

भावार्थ– हे सखी! मेरे प्रियतम ने मुझे जगाने के लिये बहुत पुकारा और मेरे सामने ही चले गये। मेरे इस जीव को आग लग जाये, जो अभी भी अपनी आँखें (विवेक दृष्टि) नहीं खोलता।

द्रष्टव्य– "आग लगना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है– नष्ट हो जाना। इसका प्रयोग फटकारने के भाव में किया जाता है।

परी परी मूंके चेयाऊं, मूंके सल्लेथा से वेंण।

अंखडियूं पाणी भराऊं, आंऊं तोहे न खणां मथा नेण।।५।।

शब्दार्थ– परी परी–तरह तरह से, सल्लेथा–खटकती है, खणां– ऊँचा उठाकर।

अर्थ– मुझे जगाने के लिये मेरे प्राणेश ने जो बातें कही हैं, अब वे चुभा करती हैं। मेरी आँखों में विरह के आँसू भरे रहते हैं। अब मुझसे ऊँची आँखें करके नहीं देखा जाता।

अंखडियूं भरे असांसे, बांह झल्ले केयाऊं गाल।
फिट फिट रे मूंजा जिंदुआ, अजां जेहेजो उही हाल।।६।।

प्रियतम ने आँखों में आँसू भरकर मेरी बाँह पकड़कर बातें की (जाग्रत होने के लिये सावचेत किया)। मेरे इस जीव को बारम्बार धिक्कार है, जिसका अभी भी वही हाल है।

हाणेंनी आऊं की करियां, मूंजानी केहा हवाल।

केहे मोंह गिनीने रे अदियूं, आंऊं करियां आंसे गाल।।७।।

हे सखी! अब मैं क्या करूँ? परमधाम में मेरी क्या स्थिति होगी? वहाँ पर मैं कौन सा मुँह लेकर तुमसे बातें करूँगी?

अदीबाईनी सुणो गालडी, मूंके रूअण रातो डींह रे।

पाणीनी पिरी गिंनी बेयां, हाणें फडकां मछी जींह रे।।८।।

हे सखी! मेरी बात सुनो। अब तो मुझे रात–दिन रोना ही है। प्रियतम जल लेकर चले गये हैं और अब तो मुझे मछली की तरह मात्र तड़पना ही है।

भावार्थ– प्रियतम का दर्शन, सान्निध्यता, एवं उनसे मिलने वाला ज्ञान तथा प्रेम ही वह जल है, जिसके बिना श्री इन्द्रावती रूपी मछली इस संसार में नहीं रह सकती

हैं। उनकी इच्छा रूपी जल की पूर्ति हब्शा में ही हो सकी।

वेण चई चई वलहो मूंहजो, बरया घर मणे रे।
हलया मूंजे डिसंदे, अदी कारयूं घणूं करे रे।।९।।

शब्दार्थ– वेण–वचन, बरया–लौट गये, मणे रे–तरफ, हलया–चले गये।

अर्थ– हे सखी! धाम धनी मुझे तारतम ज्ञान के वचनों से समझा–समझाकर परमधाम चले गये। मेरी आँखों के सामने मेरे देखते–देखते ही वे मुझे समझाते–समझाते ओझल हो गये।

भावार्थ– श्री इन्द्रावती जी का हृदय ही वह धाम है, जिसमें श्री देवचन्द्र जी का तन छोड़कर युगल स्वरूप विराजमान हो गये थे, किन्तु माया के प्रभाव से श्री

इन्द्रावती जी को इसका पता नहीं था। यह आवरण हब्शा में ही हटा।

पिरी मूंजानी हलया, आऊं की चुआं जिभ्याय रे।
सजण वेर न बिसरे, मूंके लगा तरारी जा घाय रे।।१०।।

मैं इस बात को किस जिह्वा से कहूँ कि मेरे प्राणेश्वर का अन्तर्धान हो गया है। प्रियतम के कहे हुए प्रेम–भरे शब्दों को मैं भूल नहीं पा रही हूँ। उन शब्दों की चोट मुझे तलवार के प्रहार के समान घाव (पीड़ा) कर रही है।

प्रकरण ।।७।। चौपाई ।।२०७।।

खुई सा परडेहडो, जित सांगाए न्हाए सिपरी।

पिरी पुकारेनी हलया, मूंजी माया मत बेई फिरी।।१।।

इस परदेश (माया के ब्रह्माण्ड) में आग लग जाये, जहाँ धाम धनी की पहचान नहीं है। प्रियतम मुझे जगाने के लिये पुकार–पुकार कर चले गये, किन्तु मेरी बुद्धि माया में ही लगी रही।

मूंजो जीव वढे कोरा करे, महें मिठो पाताऊं।

सजण संदो सूर ईं मारे, मंझा जीव करे रे धाऊं।।२।।

शब्दार्थ– वढ़े–काटकर, कोरा करे–टुकड़े टुकड़े करूँ, पाताऊं–लगाऊँ, संदो–का, सूर–दर्द, धाऊं–पुकारे।

अर्थ– मैं अपने जीव को काटकर टुकड़े–टुकड़े कर दूँ तथा उनमें नमक भर दूँ। ऐसी अवस्था में मेरा जीव प्रियतम के विरह में तड़पेगा और पुकारेगा।

जेरोनी लगो जर उथई, जीव कर करे मंझ।

वलहे संदोनी विरह ईं मारे, मूंके डिंनाऊं डूरण डंझ।।३।।

शब्दार्थ– जेरोनी–आग, जर–लपट, ईं मारे–इस प्रकार तड़पावे, डूरण–भयानक, डंझ–दुःख।

अर्थ– जिस प्रकार आग से लपटें निकलती हैं, उसी प्रकार मेरे जीव से भी विरह की अग्नि की लपटें निकलनी चाहियें। इसे प्रियतम के विरह में इसी प्रकार तड़पना चाहिये क्योंकि इसी की भूल ने मुझे इतना दुःखी होने के लिये विवश किया है।

मूं पिरियन से जा केई, अदी एडी न करे व्यो कोए।

सजण आया मूं कारण, आऊं अंख न खणियां तोए।।४।।

शब्दार्थ– केई–किया, एडी–ऐसा, खणियां–उठाकर।

अर्थ– हे सखी! मैंने अपने प्रियतम से जिस प्रकार का

रूखा व्यवहार किया है, वैसा कोई भी दूसरा नहीं कर सकता। धाम धनी तो मुझे जगाने आये थे, किन्तु मैंने तो आँखें उठाकर उनकी ओर देखा भी नहीं।

की करियां आऊं गालडी, मथां उखणियां की मोंह।

मूं हथां एहेडी थेई, खल लाहियां चोटी नोंह।।५।।

शब्दार्थ– खल–त्वचा, लाहियां–उतार दूँ, चोटी–शिर से पाँव तक, नोंह–नाखून।

अर्थ– अब मैं किस प्रकार बातें करूँ? उनके सामने मैं अपना मुख किस प्रकार उठाऊँगी? मेरे हाथ से इतना बुरा काम हो गया। मेरे मन में यही इच्छा होती है कि मैं अपने पैरों से लेकर शिर तक त्वचा को उधेड़ दूँ (उतार दूँ)।

तरारे गिंनी तन ताछियां, हडे करियां भोर।

पेहेले नी खल उबती लाहियां, जीव कढां ई जोर।।६।।

शब्दार्थ– गिंनी–लेकर, ताछियां–छील डालना, भोर–चूरा, उबती–उल्टी (नीचे से ऊपर की ओर), कढां–निकालूँ।

अर्थ– तलवार लेकर सम्पूर्ण शरीर की त्वचा को छील डालूँ और हड्डियों को बारीक पीसकर चूरा बना दूँ। मैं शरीर की त्वचा उल्टी दिशा में अर्थात् नीचे से ऊपर उतार दूँ। इस प्रकार, प्रायश्चित के लिये जीव को तड़पा–तड़पाकर इस शरीर से बाहर निकालूँ।

भाले तरारी कटारिएँ, मूंके वढे बिधाऊं झूक।

मूं अंग मूंहीं डुझण थेयां, जीव करे रे मंझ कूक।।७।।

शब्दार्थ– वढे–काटकर, बिधाऊं–डालूँ, झूक–झोंक

देना, डुझण–शत्रु।

अर्थ– मैं भाले, तलवार, तथा कटारी से अपने शरीर को काटकर टुकड़े–टुकड़े कर देना चाहती हूँ। मेरे शरीर के ये अंग ही तो मेरे शत्रु हो गये हैं। इस शरीर में विद्यमान जीव अपने अपराध–बोध से चिल्ला (शोर कर) रहा है।

सजण सुजाणी करे, कडे समी सई न कीयम गाल रे।
ए डुख आंऊं की झलींदी, मूंजा केहा हांणे हवाल रे।।८।।

शब्दार्थ– सुजाणी करे–पहचान करने पर, कीयम–किया, झलींदी–सहन करूँगी।

अर्थ– हे सखी! प्रियतम की पहचान करने पर भी मैंने कभी उनके सम्मुख होकर बातें नहीं की। मैं इस अपराध से होने वाले दुःख को कैसे सहन करूँगी? अब मेरी क्या

स्थिति होगी?

सूर तोहेजा घणूंज सुहामणां, जे तो डिंना रे डंझ।

सूरेनी घणूं सुखाईस, पेई पचारे हाणें मंझ।।९।।

शब्दार्थ– सूरेनी–दुःख, पेई–पड़ी हूँ, घुल गयी हूँ, पचारे–मिल जाना।

अर्थ– हे प्रियतम! आपने इस संसार में मुझे जिस दुःख का अनुभव कराया है, वह मुझे बहुत अच्छा लगता है। आपका यह दुःख बहुत ही सुख देने वाला है। अब मैं इसमें घुलकर मिल (ओत–प्रोत हो) गयी हूँ।

सूर तोहेजा हेडा सुखाला, त तो सुखें हूंदो केहेडो सुख।

पण मूं न सुजातां मूजा सिपरी, आऊं झूरां तेहेजे डुख।।१०।।

शब्दार्थ– हेडा–इतना, सुखाला–सुखदायी, झूरां–कलपती हूँ, दुःखी होती हूँ।

अर्थ– प्राणेश्वर! जब आपका दुःख भी इतना सुख देने वाला है, तो आपके अखण्ड सुख में कितना सुख होगा? किन्तु मैंने आपकी पहचान नहीं की, इसी व्यथा (पीड़ा) में मैं दुःखी होती हूँ।

अंग मूहीं जे अडाए तरारी, झूक करे करियां झोरो।
घोरे बंजां आंजी डिस मथां, त को लाईम सजणे थोरो।।११।।

शब्दार्थ– मूहीं जे–मेरे अपने, अडाए–छुआकर, झूक–अग्नि में होम कर देना, करियां–करूँ, झोरो–टुकड़े, घोरे–समर्पण, बंजां–गँवाना, आंजी–तुम्हारे, डिस मथां–ऊपर, त को–तो भी, लाईम–उतरा हुआ।

अर्थ– यदि मैं अपने शरीर के एक–एक अंग को तलवार

से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँ तथा उन्हें अग्नि में डाल दूँ या आपके प्रति समर्पित कर दूँ, तो भी हे प्राणेश्वर! वह थोड़ा ही है।

हडेनी करियां अंगीठडी, मूजो माहनी होमियां मंझ।

नारियर हंदे ल्हाय रखां मथां, मूंके तोहे न भजेरे डंझ।।१२।।

यदि मैं अपनी हड्डियों को अँगीठी बना लूँ तथा विरहाग्नि में अपने माँस की आहुति डाल दूँ, नारियल के स्थान पर अपने शिर की बलि दे दूँ, तो भी मैं अपने अपराध-बोध से उत्पन्न होने वाले कष्ट को नहीं मिटा सकती।

जरो जरो मूंजे जीव संदो, मूंके विरह पाताऊं वढ।

इंद्रावती चोए चेताय, मूंके माया मंझानी कढ।।१३।।

शब्दार्थ- संदो-का, पाताऊं-डालूँ, वढ-काटकर।

अर्थ– श्री इन्द्रावती जी सब सुन्दरसाथ को माया से सावधान करते हुए अपने धाम धनी से कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! मेरे जीव के इस शरीर का रोम–रोम आपके विरह की अग्नि में स्वयं को समर्पित कर रहा है। आप मुझे इस भवसागर से निकालिये।

प्रकरण ।।८।। चौपाई ।।२२०।।

चौपाई प्रगटाणी

चौपाई प्रकटी है

हवे एक लवो जो सांभरे सही, तो जीव रहे केम काया ग्रही।

सांभलो साथ कहूं विचार, चूक्या अवसर आपण आणी वार।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मैं अपना एक विचार कहती हूँ, उसे सुनिए। हमने इस बार (जागनी ब्रह्माण्ड में) प्रियतम को रिझाने का सुनहरा अवसर खो दिया है। यदि हम धाम धनी द्वारा कहे गये एक शब्द की भी वास्तविकता को समझ लें, तो हमारा जीव प्रियतम के बिना इस झूठे शरीर में रहना नहीं चाहेगा।

ए आपण खमीने रहया, त्यारे वली धणीजीए कीधी दया।
बाई रतनबाईनी वासना, श्री लीलबाईने उदर उपना।।२।।

प्रियतम के वियोग के कष्ट को हमने सहन किया, इसलिये उन्होंने पुनः हमारे ऊपर कृपा की है। श्री देवचन्द्र जी की अर्धांगिनी लीलबाई से बिहारी जी का जन्म हुआ, जिनके अन्दर रतनबाई की आत्मा थी।

श्री देवचंदजी पिता प्रमाण, निरखी आवेस दीधों निरवांण।
नहीं तो ए आवेस छे अपार, पण धणीतणां वचन निरधार।।३।।

श्री देवचन्द्र जी उनके पिता हैं। मेरे अन्दर परमधाम की इन्द्रावती की आत्मा पहचान करके उन्होंने मुझे अपना आवेश दिया, अर्थात् मेरे धाम–हृदय में विराजमान हुए। धाम धनी के कहे हुए वचनों के अनुसार आवेश स्वरूप की शक्ति अपार है।

मारी वाणीए ब्रह्मांडज गले, तो वासना केम वचनथी टले।
वासनाओ माटे बांध्या बंध, कई भांते अनेक सनंध।।४।।

जब प्रियतम द्वारा मुझसे कहलायी गयी इस तारतम वाणी से सारा ब्रह्माण्ड अक्षरातीत पर गलितगात (भाव–विह्वल) हो सकता है, तो परमधाम की आत्मायें धनी के वचनों को अस्वीकार कैसे कर सकती हैं? परमधाम की आत्माओं की महिमा को उजागर करने के लिये ही तो धाम धनी ने अपने आदेश से सभी धर्मग्रन्थों के भेदों को अनेक रूपों में कई प्रकार से छिपाकर रखा था, जिन्हें जीवसृष्टि कभी भी स्पष्ट नहीं कर सकती थी।

ए वचनों माहें छे निध घणी, आगल प्रगट थासे धणी।
हरखे साथ जागसे एह, रेहेसे नहीं कोई संदेह।।५।।

तारतम वाणी के वचनों में परमधाम का अनन्त ज्ञान

विद्यमान है, जिसके प्रकाश में आने पर (फैलने पर) धाम धनी का स्वरूप भी उजागर हो जायेगा। सभी सुन्दरसाथ प्रसन्नतापूर्वक धनी के चरणों में आयेंगे तथा उनके मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रहेगा।

साथ सकलने तेडूं सही, माया मांहें मूकूं नहीं।
वली वाणी श्री देवचंदजी तणी, साथ सकलने ताणे घर भणी।।६।।

अब मैं सुन्दरसाथ को माया में किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ूँगी तथा इस वाणी द्वारा बुलाऊँगी। मेरे मुख से निकलने वाली श्री राज जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) की यह तारतम वाणी सब सुन्दरसाथ को परमधाम की ओर खींचने वाली है।

वली तेह चरचा ने तेहज वाण, वचन केहेतां जे प्रमाण।
वृज रास ने वली श्री धाम, सुख साथने दिए निधान।।७।।

प्रेम के निधान (अनन्त भण्डार) श्री राज जी जिस प्रकार श्री देवचन्द्र जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर साक्षियाँ देते हुए अखण्ड व्रज-रास एवं परमधाम की वाणी-चर्चा सुनाकर सुन्दरसाथ को सुख देते थे, वैसी ही चर्चा अब वे मेरे तन से करवा रहे हैं।

पचवीस पख वरणवनी जेह, वल्लभ वली सुख आपे तेह।
अंतरध्यान समे जेम थया, वली वालो ततखिण आवया।।८।।

जो अक्षरातीत धाम धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से परमधाम के २५ पक्षों की शोभा का वर्णन किया करते थे, वही धाम धनी श्री मिहिरराज जी के तन से श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में पुनः चर्चा का वैसा ही सुख दे

रहे हैं। जिस प्रकार रास में अन्तर्धान के समय अक्षरातीत पुनः प्रकट हो गये थे, उसी प्रकार श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान के पश्चात् धाम धनी मेरे (श्री इन्द्रावती जी के) धाम-हृदय में उसी क्षण विराजमान हो गये थे।

पेहेले फेरे थयूं छे जेम, आंहीं पण वालेजीए कीधूं तेम।
आ ते वालो ने तेहज दिन, विचार करी जुओ तारतम।।९।।

हे साथ जी! यदि आप तारतम वाणी के ज्ञान के प्रकाश में विचार करके देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि जिस प्रकार रास में धाम धनी ने जैसी लीला की थी अर्थात् अन्तर्धान के पश्चात् पुनः प्रकट हो गये थे, उसी प्रकार की लीला उन्होंने इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी की है। इस समय वही (रास के आवेश स्वरूप वाले) धाम धनी लीला कर रहे हैं तथा वैसा ही समय है।

आ तेह घडी ने तेहज ताल, माया दुष्ट पडी विचाल।
आपणने नव अलगां करे, विना आपण नव डगलूं भरे।।१०।।

अब भी वही घड़ी और वही समय है, किन्तु हमें विचलित करने के लिये हमारे तथा धनी के बीच में यह दुष्टा माया आ गयी है। प्रियतम तो हमें किसी भी स्थिति में अपने से अलग नहीं कर सकते, यहाँ तक कि हमारे बिना वे एक कदम भी कहीं नहीं जा सकते हैं।

अधखिण एक नथी थईवार, मायाए विछोडो पाड्यो आधार।
मारकंड माया दृष्टांत, धणी कने मांगी करी खांत।।११।।

माया ने हमारे और धनी के बीच में जो वियोग किया है, उसमें परमधाम की दृष्टि से एक या आधे क्षण का भी समय नहीं बीता है। इसे मार्कण्डेय ऋषि द्वारा माया देखने के दृष्टान्त से समझा जा सकता है। इसमें

मार्कण्डेय ने अपने आराध्य नारायण से माया देखने की चाहत की थी।

जोजो मायानो वृतांत, ए अलगी थाय तो उपजे स्वांत।
ततखिण कंपमाण ते थयो, अने माया मांहें भलीने गयो।।१२।।

हे साथ जी! माया की यह अवस्था देखिए। इससे अलग होने पर ही मन में शान्ति मिल सकती है। माया देखने की इच्छा करते ही मार्कण्डेय ऋषि काँपने लगे और माया के खेल में संलग्न हो गये।

कल्पांत सात ने छियासी जुग, माया आडी आवी बुध।
नव पडी खबर लगार, रिखीश्वर दुख पाम्यो निरधार।।१३।।

सात कल्पान्त और ८६ युग तक माया ने उनकी बुद्धि के ऊपर अपना आवरण डाले रखा। इस समय तक

मार्कण्डेय जी को अपने या नारायण जी के विषय में कोई भी ज्ञान नहीं रहा। इस अवधि में ऋषिराज ने बहुत अधिक दुःख देखा।

त्यारे नारायण जी कीधो प्रवेस, देखाडी माया लवलेस।
जुए जागीतां तेहज ताल, दया करी काढ्यो तत्काल।।१४।।

तब नारायण जी का इस नश्वर संसार में आगमन हुआ और उन्होंने दया करके उसी क्षण मार्कण्डेय जी को माया से निकाला। मार्कण्डेय ऋषि ने जाग्रत होते ही स्वयं को उसी ताल के किनारे पाया। इस प्रकार, नारायण जी ने मार्कण्डेय ऋषि को माया की हल्की सी झलक ही दिखायी।

मायानी तां एह सनंध, निरमल नेत्रे थैए अंध।

ते माटे कीधो प्रकास, तारतम तणो अजवास।।१५।।

माया की यही वास्तविकता है, जिसे देखने पर स्वच्छ नेत्रों वाला भी अन्धा हो जाता है, अर्थात् मायावी भोगों में लिप्त होने पर बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा भी इसके स्वरूप को नहीं जाना जा सकता है। इसलिये इसके बन्धन से छुड़ाने के लिये ही धाम धनी ने तारतम ज्ञान का उजाला किया है।

ते लईने आव्या धणी, दया आपण ऊपर छे घणी।

जाणे जोसे माया अलगां थई, तारतमने अजवाले रही।।१६।।

हमारे ऊपर धाम धनी की अपार कृपा है, इसलिये प्रियतम तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर आये हैं। इस तारतम के उज्ज्वल प्रकाश में देखने पर हम स्वयं को

माया से अलग देखते हैं।

भले तारतम कीधो प्रकास, सकल मनोरथ सिध्यां साथ।
वचने सर्व अजवालो करयो, अने बीजो देह माया मांहें धरयो।।१७।।

यह बहुत ही अच्छा हुआ कि तारतम ज्ञान के उजाले में सुन्दरसाथ की सभी आध्यात्मिक इच्छायें पूर्ण हो गयीं। तारतम वाणी के वचनों ने ज्ञान के क्षेत्र में सर्वत्र ही उजाला कर दिया है। इस कार्य को सम्पादित करने के लिये ही धाम धनी ने माया में दूसरा तन (मिहिरराज जी का) धारण किया है।

प्रकरण ।।९।। चौपाई ।।२३७।।

विनती – राग धनाश्री

इस प्रकरण में सुन्दरसाथ की ओर से धाम धनी से विनती की गई है।

हवे विनती एक कहूं मारा वाला, सुणो पिउजी वात।
प्रगट तमे पधारिया, आकार फेरो छो नाथ।।१।।

मेरे प्राणवल्लभ! अब मैं आपसे विनती करते हुए एक प्रार्थना कर रही हूँ। उसे आप सुनिये। आपने श्री देवचन्द्र जी का तन छोड़कर दूसरा तन धारण किया है और सबको जगाने के लिये प्रत्यक्ष पधारे हैं।

श्री देवचंदजी अम कारणे, रूदे तमारे आवया।
वचन पालवा आपणा, साथ सकल पर कीधी दया।।२।।

सुन्दरसाथ का कथन है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने हमें वचन दिया था कि मैं अपने तन को छोड़कर मिहिरराज जी के तन में लीला करूँगा। उसे पूर्ण करने के लिये ही वे आपके (इन्द्रावती जी के) धाम-हृदय में आकर विराजमान हो गये हैं। इस प्रकार, उन्होंने सब सुन्दरसाथ पर अपार कृपा की है।

जनम अंध अमे जे हतां, ते तां तमे देखीतां करया।
वांसो वछूटो हाथथी, जमपुरी जातां वली कर ग्रहया।।३।।

हे धाम धनी! हम जन्म से ही अन्धे थे, अर्थात् जब से हम इस खेल में आये थे तब से हमें आपकी कुछ भी (धाम, स्वरूप, एवं लीला की) पहचान नहीं थी। आपने तारतम ज्ञान की दृष्टि देकर हमें अपनी पहचान दी थी। फिर भी आपके अन्तर्धान होने के पश्चात् हम आपके

दर्शाये हुए मार्ग पर नहीं चल सके और यमपुरी (बिहारी जी की गादी को ही सर्वोपरि मानकर पूजने) के मार्ग पर चल पड़े थे, किन्तु आपने श्री मिहिरराज जी के तन में पुनः विराजमान होकर हमारा हाथ पकड़ लिया।

हवे अम मांहें अमपणूं, जो कांई होसे लगार।
तो निद्रा उडाडी तमे निध दीधी, हवे नहीं मूकूं निरधार।।४।।

प्राणेश्वर! अब हमारे अन्दर यदि आपके प्रति थोड़ा भी अपनापन होगा, अर्थात् हमारे अन्दर परमधाम का कुछ भी अँकुर होगा, तो हमारी अज्ञानता को नष्ट करके आपने हमें जो अखण्ड ज्ञान दिया है, उसे हम अब कभी भी नहीं छोड़ेंगे।

आगे तो अमे नव ओलख्या, ते साले छे मन।

चरचा ते करी करी प्रीछव्या, अने कहया ते विविध वचन।।५।।

हमें इस प्रकार की मानसिक पीड़ा रहती है कि पहले हम आपकी पहचान नहीं कर सके। आपने हमें जगाने के लिये अनेक प्रकार के वचनों से चर्चा करके बार-बार समझाया।

।। चाल ।।

एहेवा अनेक वचन कहया अमने, जेणे एक वचने ओलखूं तमने।

पेरे पेरे करीने प्रीछव्या सही, अमे निरोध तोहे उडाड्यो नहीं।।६।।

इस प्रकार, आपने हमें अनेक प्रकार के ऐसे वचनों से समझाया कि उनमें से यदि हम एक वचन को भी आत्मसात् कर लेते तो हमें आपकी पहचान हो जाती। आपने हमें तरह-तरह से समझाया, किन्तु हमारे मन का संशय नहीं जा सका।

त्यारे हंसी वढी आंसूवाली ने कहयूं, पण एणे समे अमे कांई नव लहयूं।
त्यारे तारतम कही घर देखाड्या सही, पण अमे तोहे ओलख्या नहीं।।७।।

तब आपने हँसी में, क्रोध में, तथा आँसू भरे नेत्रों (भरे गले) से हमें समझाया, किन्तु हमने आपकी किसी भी बात को ग्रहण नहीं किया। इसके पश्चात् आपने तारतम ज्ञान से परमधाम की भी पहचान करायी, किन्तु आश्चर्य कि हम तब भी आपकी पहचान नहीं कर सके।

त्यारे अम मांहेंथी अदृष्ट थया, मूल वचन रूदयामां रहया।
एणे समे जो खबर न लेवाय, तो दुस्तर अमने घणूं दोहेलूं थाय।।८।।

तब आप हमारे मध्य से अन्तर्धान हो गये, किन्तु आपके द्वारा कहे गये मूल वचन हमारे हृदय में चुभते रहे। इस समय यदि आप हमारी सुधि नहीं लेते, तो यह कठिन माया हमारे लिये बहुत ही दुःखदायी हो जाती।

एम जाणी ने आव्या अम मांहें, आवी बेठा प्रगट्या तम जांहें।
आपण जेम पेहेलां वृजमां हतां, नित प्रते वालाजीसूं रंगे रमतां।।९।।

यह जानकर ही आप हमारे मध्य (श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में) आकर विराजमान हो गये हैं। यह लीला वैसे ही हुई है, जैसे कि हम व्रज मण्डल में थे और प्रियतम के साथ नित्य-प्रतिदिन ही प्रेममयी क्रीड़ा किया करते थे।

अनेक रामत कीधी आपणे, पूरण मनोरथ कीधां समे तेणे।
अग्यारे वरसनी लीला करी, कालमाया तिहांज परहरी।।१०।।

व्रज में हमने अनेक प्रकार की लीलायें की और आपने उस समय हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण किया। हमने व्रज में ११ वर्ष तक प्रेममयी लीला की और उसके पश्चात् कालमाया के इस ब्रह्माण्ड को छोड़ दिया।

जोगमायामां आपण रासज रम्या, तेतां साथ सकलने घणूं घणूं गम्या।
वचन संभारवाने अदृष्ट थया, त्यारे अमे विरह कीधां जुजवा।।११।।

योगमाया के नित्य वृन्दावन में हमने रास लीला की, जो सब सुन्दरसाथ को बहुत अच्छी लगी। परमधाम में हमने धनी से जो दुःख का खेल माँगा था, उसकी याद दिलाने प्रियतम अदृश्य हो गये, तब हमने भिन्न प्रकार की दुःखमयी अवस्था में विरह किया।

ते देखीने आव्या जेम, वली आंहीं प्रगट थया छो तेम।
धणी ज्यारे धणवट करे, त्यारे मन चितव्या कारज सरे।।१२।।

हमारे विरह की पीड़ा को देखकर उस समय आप जिस प्रकार प्रकट हो गये थे, उसी प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी पुनः (श्री इन्द्रावती जी के धाम–हृदय में) प्रकट हो गये हैं। जब आप अपने पतिपने का प्रेम दर्शाते हैं, तो

हमारे मन की सभी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं।

तेणे समे धाख रहीती जेह, हमणां पूरण कीधी तेह।
हवे वालाजी कहूं ते सुणो, अने अति घणो दोष छे अमतणो।।१३।।

उस समय हमारे मन में जो भी इच्छा शेष रह गयी थी, उसे आपने इस समय (जागनी लीला में) पूर्ण कर दिया है। अब हे प्रियतम! मैं जो कुछ भी कहने जा रही हूँ, उसे अवश्य सुनिये। यह तो निश्चित है कि हम सभी सुन्दरसाथ का बहुत अधिक दोष (अपराध) है।

तमारा मनमां न आवे लेस, पण साख पूरे मारूं मनडूं वसेख।
वारी फरी नाखूं मारी देह, तमे कीधां मोसूं अधिक सनेह।।१४।।

यद्यपि आप अपने मन में इस प्रकार की नाम मात्र भी भावना नहीं रखते हैं, किन्तु विशेषकर मेरा मन इस बात

की पूर्ण रूप से साक्षी देता है कि हम दोषी हैं। मैं आपके ऊपर बारम्बार अपने तन को समर्पित करती हूँ, क्योंकि आपने मुझसे बहुत अधिक (अपार) प्रेम किया है।

वार वार हूं घोली घोली जाऊं, एक वचन तणां नव ओसीकल थाऊं।
ओसीकल वचन तो ते केहेवाए, जो अमे बेठा मोहजल मांहें।।१५।।

मैं आपके द्वारा कहे गये प्रेम के एक वचन का भी ऋण पूरा नहीं कर सकती, इसलिये मैं बारम्बार आपके ऊपर न्योछावर होती हूँ। उऋण होने की बात तो इसलिये कहनी पड़ती है कि हम इस मायावी संसार में बैठे हैं। यहाँ परमधाम का एकत्व (वहदत) नहीं है।

अनेक वार जाऊं वारणे, तमे जे कीधूं ते आपोपणे।
भामणा उपर लऊं भामणा, पण दोष साले जे में कीधां घणा।।१६।।

आपने मेरे प्रति जो परमधाम के अपनेपन से प्रेम किया है, उसके लिये मैं आपके ऊपर अनेक बार न्योछावर होती हूँ। भले मैं कितनी ही बार आपके ऊपर समर्पित क्यों न हो जाऊँ, किन्तु मैंने आपके प्रति जो बहुत अधिक अपराध किया है, वह मुझे पीड़ा देता रहता है।

हवे ए दोष केम छूटीस हो नाथ, सांचूं कहूं मारा धामना साथ।
तमे साथ मांहें देओ छो उपमां, पण हूं केम छूटीस ए वज्रलेपणा।।१७।।

मेरे धाम के सुन्दरसाथ जी! मैं आपसे सत्य कह रही हूँ। मैं हमेशा यही सोचती हूँ कि अपने प्राणनाथ (श्री राज जी) के प्रति किये गये अपराध से मैं कैसे मुक्त होऊँगी? हे धाम धनी! भले ही आप सुन्दरसाथ में इतनी शोभा दे रहे हैं, किन्तु मेरे सामने प्रश्न यह है कि मैं आपके प्रति किये गये अपने अमिट अपराधों से कैसे छूट सकूँगी?

तमे गुण कीधां मोसूं घणां घणां, पण अलेखे अवगुण अमतणा।
तमे गुण करो छो ते ओलखी करी, पण मोहजल लेहेर मूने फरी वली।।१८।।

मेरे प्राणवल्लभ! आपने मेरे ऊपर अपार कृपा की है, किन्तु मेरे अवगुण तो अनन्त हैं। आप मुझे परमधाम की इन्द्रावती आत्मा के रूप में पहचान कर कृपा ही करते हैं, किन्तु माया की लहरों ने मुझे चारों ओर से घेर रखा है। वे मुझे आप पर समर्पित नहीं होने देती हैं।

हवे हूं बलिहारी जाऊं मारा धणी, मारा मनमां एक हाम छे घणी।
अछतां मंडल मांहें लाभ छे घणो, अने आंझो छे मारा धणीजी तम तणो।।१९।।

मेरे प्रियतम! मैं आप पर पूर्ण रूपेण न्योछावर होती हूँ। मेरे मन में एक बहुत बड़ी चाहना है। इस नश्वर जगत में आपको पा लेना सबसे बड़ी उपलब्धि है।

जे मनोरथ कीधां श्री धाम मांहें, ते दृढ सघला आहीं थाए।
जे पेर सघली कही छे तमे, ते दृढ कीधी सर्वे जोईए अमे।।२०।।

परमधाम में हमने जो भी इच्छा की थी, वे सभी यहाँ पूर्ण होनी चाहिए। आपने तारतम ज्ञान द्वारा जो भी बातें हमें समझायी हैं, उनमें दृढ़ता रखकर हमें उनका चिन्तन करना चाहिए।

श्री धामना सुख जे दीसे आहें, ते जीव जाणे मनज मांहें।
आ देहनी जिभ्या केणी पेरे कहे, वचन कहूं ते ओरूं रहे।।२१।।

परमधाम के जो भी सुख यहाँ आत्मिक दृष्टि से दिखायी देते हैं, उनका अनुभव मेरा जीव अपने मन से करता है। मेरे इस नश्वर शरीर की जिह्वा (वाणी) भला उसका वर्णन कैसे कर सकती है। जो कुछ भी कहती हूँ, वह इधर ही रह जाता है।

ए सोभा सब्दातीत छे घणी, अने सब्द मांहें जिभ्या आपणी।
ए सुख विलसी निरदोष थाऊं, तम दयाए फेरो सुफल करी जाऊं।।२२।।

परमधाम की शोभा अपार है और शब्दों से परे है। मेरी जिह्वा शब्दों से बँधी हुई है। मेरी यही इच्छा है कि मैं निर्मल (सभी दोषों से मुक्त) होकर वहाँ के सुख का यहाँ पर आनन्द लूँ और आपकी कृपा से इस संसार में आना सार्थक कर लूँ।

एटले मनोरथ पूरण थया, जे थाय ते वालाजीनी दया।
दयानो तो कहूं छूं घणूं, जे करी न सकी वस आपोपणूं।।२३।।

यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो जाती है, तो मैं यही मानूँगी कि यह सब आपकी ही कृपा से हुआ है। आपकी दया (कृपा) के विषय में मैं केवल इतना ही कह सकती हूँ कि वह अनन्त है। कमी केवल मेरे अन्दर है कि मैं स्वयं को

वश में नहीं कर सकी हूँ।

द्रष्टव्य– उपरोक्त कथन द्वारा सुन्दरसाथ को यह शिक्षा दी गयी है कि उन्हें धाम धनी से माया की नहीं, अपितु केवल आत्मिक सुख की ही इच्छा करनी चाहिए।

हवे मनसा वाचा करमणां करी, हूं नहीं मूकूं निध परहरी।
नैणे निरखूं निरमल चित करी, हूं रूदे राखीस वालो प्रेम धरी।।२४।।

अब मैं मन, वाणी, और कर्म से किसी भी स्थिति में परमधाम की अपनी अखण्ड निधि को नहीं छोड़ूँगी। मैं अपने चित्त को निर्मल करके अपने आत्मिक नेत्रों से आपको देखूँगी (दर्शन करूँगी) तथा प्रेमपूर्वक अपने हृदय के सिंहासन पर आपको विराजमान करूँगी।

करी परणाम लागूं चरणे, सेवा करीस हूं वालपण घणे।
दंडवत करूं जीव ने मन, दऊं प्रदखिणा रात ने दिन।।२५।।

आपके चरणों में प्रणाम करते हुए मैं यह दृढ़ निश्चय करती हूँ कि मैं बहुत अधिक प्रेम से आपकी सेवा करूँगी। मैं अपने जीव के मन द्वारा (सांकल्पिक रूप से) दिन–रात आपकी परिक्रमा करते हुए सदा ही दण्डवत प्रणाम किया करूँगी।

कृपा करो छो सहु साथज तणी, वली कृपा साथने करजो घणी घणी।
इंद्रावती चरणे लागे आधार, धणी लिए तेम लीधी सार।।२६।।

श्री इन्द्रावती जी अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणों में प्रणाम करते हुए कहती हैं कि हे धाम धनी! यद्यपि आप तो सब सुन्दरसाथ पर बहुत अधिक कृपा करते ही हैं, किन्तु मेरी प्रार्थना है कि और अधिक कीजिए। आपने

परमधाम के मूल सम्बन्ध से इस मायावी जगत में भी हमारी अच्छी सुधि वैसे ही ली है, जैसे एक प्रियतम अपनी प्रियतमा की लेता है।

प्रकरण ।।१०।। चौपाई ।।२६३।।

हवे आपणमां बेठा आधार, रामत देखाडी उघाडी बार।

हवे माया कोटान कोट करे प्रकार, पण आपणने नव मूके निरधार।।१।।

अब प्रियतम हमारे मध्य (श्री इन्द्रावती जी के धाम– हृदय में) आकर विराजमान हो गये हैं। वे तारतम ज्ञान के प्रकाश में परमधाम का दरवाजा खोलकर माया का खेल दिखा रहे हैं। अब भले ही माया करोड़ों उपाय क्यों न कर ले, किन्तु धाम धनी हमें निश्चित रूप से नहीं छोड़ेंगे।

तेडी आपणने जाय घरे, वचन कहया केम पाछां फरे।

मनना मनोरथ पूरण करे, नेहेचे धणी तेडी जाय घरे।।२।।

वे हमें साथ लेकर ही परमधाम जायेंगे। उन्होंने हमें परमधाम ले जाने का जो वचन दिया है, उससे वे विमुख कैसे हो सकते हैं? निश्चय ही प्रियतम हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण भी करेंगे तथा हमें साथ लेकर

निजधाम जायेंगे।

जो हवे आपण ओलखिए आवार, तो जीव घणूं पामे करार।
साथ ऊपर दया अति करी, वली जोगवाई आवी छे फरी।।३।।

यदि इस समय हम अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की पहचान कर लेते हैं, तो हमारे जीव को बहुत अधिक आनन्द होगा। धाम धनी की हमारे ऊपर बहुत कृपा है और उन्होंने हमें आत्म-जाग्रति के सभी साधन पुनः दे दिये हैं।

वली अवसर आव्यो छे घणो, अने वखत उघड्यो साथज तणो।
आपणे नव मूकवा हीडूं संसार, धणी आपणो विछोडो नव सहे लगार।।४।।

पुनः प्रियतम को पाने का बहुत ही सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया है। इस प्रकार, सुन्दरसाथ के सौभाग्य का द्वार

भी खुल गया है। भले ही हम संसार को नहीं छोड़ना चाहते हैं, किन्तु प्रियतम तो हमारा नाम मात्र भी वियोग सहन नहीं कर सकते हैं।

तारतम पखे विछोडो नहीं, सुपनमां माया जोइए सही।
सुपन विछोडो पण धणी नव सहे, तारतम वचन पाधरा कहे।।५।।

यदि हम तारतम ज्ञान के प्रकाश में देखें, तो प्रियतम से हमारा वियोग हो ही नहीं सकता। हम मूल तन से मूल मिलावा में बैठे हैं तथा स्वप्न जैसी स्थिति में सुरता द्वारा इस मायावी जगत को देख रहे हैं। किन्तु तारतम वाणी स्पष्ट रूप से कहती है कि धाम धनी तो सपने में भी हमारा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं।

लई तारतम अजवालूं सार, वली श्री जी आव्या आवार।
जाणे रखे केहेने उत्कंठा रहे, साथ ऊपर एटलूं नव सहे।।६।।

तारतम ज्ञान का महान प्रकाश लेकर अक्षरातीत जी पुनः मेरे (इन्द्रावती जी के) तन में आ गये हैं। धाम धनी को इतना भी सहन नहीं हो सकता कि किसी सुन्दरसाथ में कुछ जानने की इच्छा शेष (अधूरी) रह जाये।

द्रष्टव्य– उपरोक्त चौपाई इस तथ्य पर विशेष प्रकाश डाल रही है कि अक्षरातीत को ही श्री जी कहते हैं, मिहिरराज जी को नहीं।

श्री धणीतणा गुण केटला कहूं, हूं अबूझ कांई घणूं नव लहूं।
पण पाधरा गुण दीसे अपार, धणिए जे कीधां आवार।।७।।

अपने प्राणपति के अनुपम गुणों का मैं कितना वर्णन करूँ। मैं नादान हूँ, इसलिये अधिक नहीं जान पाती।

धाम धनी ने इस बार जो कृपा की है, उससे तो यही स्पष्ट होता है कि उनके गुण अनन्त हैं।

आपणी मीटे दीठां सही, पण आणी जिभ्याए केहेवाय नहीं।
भोम कणका जो गणाए, सायर लेहेरे उठे जल मांहें।।८।।

मेरी आत्मिक दृष्टि में धनी के गुण दिखायी तो देते हैं, किन्तु इस जिह्वा से उनका वर्णन नहीं हो सकता। सम्भवतः पृथ्वी पर स्थित धूल के कणों को गिना जा सकता है, समुद्र के अगाध जल में उठने वाली लहरों की भी गणना हो सकती है।

मेघ पण गाजे वली पडे, वनस्पति पत्र कोई नव गणे।
जदिपे तेहेनो निरमाण थाय, पण धणीतणा गुण कोणे न गणाय।।९।।

गर्जना करके बरसते हुए बादलों की बूँदों को भी गिना

जा सकता है, किन्तु वनस्पतियों के पत्तों को नहीं गिना जा सकता। यदि कल्पना के रूप में इनकी गणना हो भी जाये, तो भी प्रियतम के गुणों को गिनने में कोई भी समर्थ नहीं है।

न गणाय आ फेरा तणां, अने गुण आपणसूं कीधां अति घणां।
पेहेला फेरानी केही कहूं वात, गुण जे कीधां धणी प्राणनाथ।।१०।।

प्रियतम ने इस जागनी लीला में हमारे ऊपर अपार कृपा की है। इस लीला में उनके गुणों को गिना ही नहीं जा सकता। व्रज-रास में धाम धनी ने हमारे प्रति जो गुण (कृपा) किये हैं, उनकी गणना के विषय में क्या कहूँ, वे तो असीम हैं।

ते आणी जोगवाईए केम गणू आधार, पण कांईक तोहे गणवा निरधार।

इंद्रावती कहे हूं गुण गणूं, कांईक दाखूं आपोपणूं।।११।।

मैं अपने प्राणेश्वर के अनन्त गुणों को इस मायावी शरीर की इन्द्रियों, तथा मन, बुद्धि आदि साधनों से कैसे गिनूँ? फिर भी मुझे कुछ न कुछ तो गिनना ही पड़ेगा। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि परमधाम के अपनेपन से मुझे कुछ न कुछ गुणों को तो गिनना ही है।

प्रकरण ।।११।। चौपाई ।।२७४।।

श्री धणीजीना गुण

हवे गुणने लखूंजी तमतणां, जे तमे कीधां अमसूं अति घणां।
जोजन पचास कोट पृथ्वी केहेवाए, आडी ऊभी सर्वे ते मांहें।।१।।

हे धाम धनी! आपने हमारे प्रति अपने अनन्त (बहुत अधिक) गुण किये हैं। मैं अब उन गुणों को लिखती हूँ। श्रीमद्भागवत् के अनुसार आड़ी-खड़ी यह सम्पूर्ण पृथ्वी ५० करोड़ योजन वाली कही जाती है।

चौद लोक वैकुण्ठ सुन्य जेह, भोम समी हूं करूं वली तेह।
पाधरा पाथरी करूं एक ठामे, वांक चूक टालूं ए मांहें।।२।।

वैकुण्ठ से युक्त इन चौदह लोकों तथा शून्य तक के क्षेत्र को मैं धरती के समान मान लूँ। सबको समान करके तथा इनके अन्दर का टेढ़ापन दूर करके बिस्तर (शय्या)

के समान बिछा दूँ।

कागल परठ्यूं में एहनूं नाम, गुण लखवा मारा धणी श्री धाम।
चौद भवननी लऊं वनराय, तेहेनी लेखणो मारे हाथों घडाय।।३।।

इनको मैंने कागज कहा। अपने प्राणवल्लभ के गुणों को लिखने के लिये चौदह लोकों की वनस्पतियों को लेकर मैंने अपने हाथों से उनकी लेखनी (कलम) बना ली।

घडतां कोसर करूं अतिघणी, जाणूं रखे मोटी छोही पडे तेहतणी।
झीणियों टांको मारे हाथो थाय, अणियों मांहें नहीं मूकूं मणाय।।४।।

लेखनी बनाते समय मैं बहुत अधिक कृपणता (कन्जूसी) कर रही हूँ, जिससे कि मोटा छिलका न उतर जाए। कलमों की नोंक को मैं स्वयं अपने हाथों से बनाती हूँ। नोंक बनाने में मैं किसी भी प्रकार की कमी

नहीं रखती हूँ।

तोहे कोसर करूं घडतां अति घणी, जाणू जेमने झीणियों थाय अति अणी।
हवे धरती उपला लऊं सर्व जल, बीजापण भरया सात पातालना तल।।५।।

लेखनी की नोक बनाते समय मैं बहुत अधिक कृपणता कर रही हूँ, जिससे नोंक और अधिक बारीक बन जाये। अब मैं सातों पातालों सहित पृथ्वी के ऊपर के सम्पूर्ण जल को ले लेती हूँ।

बीजा रे छ लोक तेहेना लऊं जल, नहीं मूकूं किहांए टीपूं अवल।
सर्व जल मेलवीने लऊं मारे हाथ, गुण लखवा मारे श्री प्राणनाथ।।६।।

पृथ्वी लोक के अतिरिक्त ऊपर के छः अन्य लोकों के जल को भी ग्रहण करती हूँ। इनमें कहीं भी एक बूँद भी जल को नहीं छोड़ती हूँ। इस प्रकार, अपने प्रियतम

प्राणनाथ के गुणों की संख्या गिनने के लिये १४ लोकों के सम्पूर्ण जल को मैं एकत्रित करती हूँ।

स्याही करूं अति जुगते करी, रखें कांई मांहेंथी जाय परी।
ए लेखणो स्याही आ कागल करी, माहें झीणां आंक लखूं चित धरी।।७।।

इस जल को बहुत युक्तिपूर्वक मैं इस प्रकार से स्याही बनाऊँ कि उसमें से कुछ भी गिर न जाये। इस प्रकार लेखनी, स्याही, तथा कागज की व्यवस्था करके बहुत बारीक अंकों में सावधानी से लिखूँ।

गुण जे कीधां मोसूं मारा वालैया, ते आंणी जिभ्याए नव जाय कह्या।
देह सारूं हूं लखूं प्रमाण, एक अर्ध अणूमात्रनुं काढूं निरमाण।।८।।

मेरे प्राणेश्वर ने मेरे प्रति जो गुण किये हैं, उनका वर्णन मेरी इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है। इस नश्वर

शरीर के सामर्थ्य के अनुसार तो प्रियतम के अनन्त गुणों में से मात्र एक अणु की आधा मात्रा के बराबर ही मैं गुणों की गणना कर सकती हूँ।

हवे लखूं छूं तमे जो जो साथ, हूं गजा सारूं करूं प्रकास।
घणूं चीफूं आंक लखतां एह, रखे जाणूं कांई मींडा मोटा थाय तेह।।९।।

हे सुन्दरसाथ जी! अब आप देखिए कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार प्रियतम के गुणों को लिखने जा रही हूँ। अंकों को लिखने में मैं बहुत अधिक डरती हूँ कि कोई भी शून्य बड़ा न हो जाये।

हवे प्रथम एकडो काढूं एक चित, अडतूं मींडूं धरूं भिलत।
मारे हाथे अखर पोहोलो नव थाय, अने बीहुं जाणूं रखे घेलाय।।१०।।

अब सबसे पहले मैं सावधानी से एक का अंक लिखती

हूँ। उसके पास मैं एक शून्य बनाती हूँ। मैं इस बात का ध्यान रखती हूँ कि लिखते समय मेरे हाथ से अक्षर चौड़ा न होने पाए और अंक भी फैलने न पाए।

एम करता ए दसज थया, मींडूं मूकीने एक सो गणया।
वली एक मूकूं नव करूं वार, जेम गुण गणूं मारा धणीना हजार।।११।।

इस प्रकार, धाम धनी के गुणों की संख्या दस हो जाती है। पुनः एक शून्य रखकर १०० की संख्या कर लेती हूँ। पुनः एक शून्य रखने में जरा भी देर नहीं करती, इससे मैं प्रियतम के गुणों को एक हजार तक कर लेती हूँ।

हवे मींडूं मूकूं अडतूं एक, जेम गुण गणूं दस हजार वसेक।
वली एक मूकतां लाख गणाय, हवे मूकूं जेम दस लाख थाय।।१२।।

अब मैं उससे लगता हुआ एक शून्य रखती हूँ, जिससे

धाम धनी के गुणों की गणना दस हजार तक पहुँचा देती हूँ। पुनः एक शून्य रखकर लाख कर देती हूँ। तत्पश्चात् एक और शून्य रखने से प्राणवल्लभ के गुण दस लाख तक हो जाते हैं।

कोट थाय मींडूं मूके सातमूं, दस कोट करूं वली मूकी आठमूं।
नव मूकीने करूं अबज, गुण गणती जाऊं करती कवज।।१३।।

जब मैं सातवाँ शून्य रखती हूँ, धनी के गुण एक करोड़ हो जाते हैं। आठवाँ शून्य रखकर मैं धनी के गुणों को दस करोड़ तक कर लेती हूँ। नवा शून्य रखकर एक अरब तक की गणना कर लेती हूँ। इस प्रकार, श्री राज जी के गुणों को गिनते हुए उन्हें अपने हृदय में भी बसाती जाती हूँ।

दस मूकीने करूं अबज दस, ए गुण गणतां मूने आवे घणों रस।

अग्यार मूकीने करूं खरबज एक, लखतां गुण धणी ग्रहूं वसेक।।१४।।

दसवें शून्य के रखते ही गुणों की संख्या दस अरब हो जाती है। इस प्रकार, प्रियतम के गुणों को गिनने में मुझे बहुत अधिक आनन्द आ रहा है। ग्यारहवाँ शून्य रखकर एक खरब कर लेती हूँ। धाम धनी के गुणों को गिनते हुए उन्हें अपने हृदय में आत्मसात् भी करती हूँ।

बार करीने दस करूं खरब, आगे कोणे नव गणया गुण एव।

तारतम जोतां बीजो कोण गणसे, अम टाली कोई थयो न थासे।।१५।।

बारहवाँ शून्य रखकर गुणों की गणना दस खरब तक कर लेती हूँ। आज दिन तक किसी ने भी प्रियतम के गुणों को इस प्रकार नहीं गिना है। तारतम ज्ञान के बिना अक्षरातीत के गुणों को भला कौन गिन सकता है? हमारे

अतिरिक्त धाम धनी के गुणों को गिनने वाला न तो पहले कोई हुआ है और न भविष्य में कोई होगा।

हवे गुण गणूं मारा धणीतणां, पण कागल स्याही लेखणो मांहें मणां।
मणां तो कहूं छूं जो बेठी माया मांहें, नहीं तो मणां मूने नथी कोई क्यांहें।।१६।।

अब मैं अपने धाम धनी के गुणों को गिन अवश्य रही हूँ, किन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि इस कार्य में कागज, स्याही, तथा लेखनी की कमी पड़ेगी। "कमी" शब्द का प्रयोग तो इसलिये कर रही हूँ कि मैं माया का तन लेकर बैठी हूँ, अन्यथा परमधाम में तो मुझे किसी भी प्रकार से किसी भी वस्तु की कोई कमी नहीं है।

साथ माटे हूं करूं रे पुकार, जोऊं वासना चौद लोक मंझार।
मेली वासनाओने रास रमाडुं, धणीना गुण हूं गणीने देखाडुं।।१७।।

मैं सुन्दरसाथ के लिये तारतम वाणी से पुकार कर रही हूँ और चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में आयी हुई ब्रह्मात्माओं को ढूँढ रही हूँ। मैं सभी आत्माओं को एकत्रित करके जागनी-रास की लीला में खेलाऊँगी तथा धाम धनी के गुणों को गिनकर दिखाऊँगी।

नील करूं मींडा मूकीने तेर, ए गुण गणतां मूने टली गयो फेर।
हवे चौद करूं दस नीलने काज, गुण गणवा मारा धणी श्री राज।।१८।।

तेरहवाँ शून्य रखकर गुणों की संख्या एक नील करती हूँ। इतने गुणों की गणना करने में मेरे जीव के जन्म-मरण का चक्र समाप्त हुआ मानना चाहिये। अब प्रियतम के गुणों की गणना करने के लिये चौदहवाँ शून्य रखकर दस नील तक पहुँचा देती हूँ।

पनर करीने करूं गुण पार, दस पार करूं सोल गुणने आधार।
पदम करवाने करूं सतर, हूं अरधांग मारो धणी ए घर।।१९।।

पन्द्रहवाँ शून्य रखकर गुणों की गणना "पार" कर लेती हूँ। सोलहवें शून्य के योग से धाम धनी के गुणों को दस पार तक मान लेती हूँ। सत्रहवाँ शून्य जोड़कर गुणों की संख्या पद्म करती हूँ। इस अवस्था में यह पूर्णतया दृढ़ता बन जाती है कि मैं प्राणेश्वर अक्षरातीत की अर्धांगिनी हूँ और परमधाम की आत्मा हूँ।

अढार करीने दस करूं पदम, मूने वाला लागे धणीना गुण एम।
खोईण करूं करीने नव दस, गुणने बंधाई वालो आव्यो मारे वस।।२०।।

अठारहवाँ शून्य रखकर धनी के गुणों की गणना दस पद्म तक कर लेती हूँ। इस प्रकार, धनी के गुण मुझे बहुत ही प्यारे लगते हैं। उन्नीसवाँ शून्य रखकर गुणों को

खोइण तक पहुँचा देती हूँ। इस प्रकार, गुणों की गणना करने से मुझे यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि मेरे प्राणवल्लभ अब मेरे प्रेम के वश में हो जायेंगे।

वीस करीने दस करूं खोईण, एकवीस करूं जेम थाय गुण जोण।
दस जोण करूं मूकीने दस बार, गुण गणतां घणूं जीती आधार।।२१।।

बीसवाँ शून्य रखकर दस खोईण तक की गणना करती हूँ। इसी प्रकार, एक्कीसवाँ शून्य जोड़कर मैं धनी के गुणों की संख्या "जोण" तक पहुँचा देती हूँ। बाइसवाँ शून्य रखकर दस जोण तक की संख्या कर लेती हूँ। धनी के अपार गुणों को गिनते-गिनते मैं उनके प्रेम में जीतती भी जाती हूँ।

अंक करूं गुण लखीने त्रेवीस, दस अंक करूं मींडा मूकीने चोवीस।
हवे पचवीस कीधे गुण एक संख थाय, रदे रे मोटो गुण घणा समाय।।२२।।

तेइसवाँ शून्य रखकर अंक तक की गणना करती हूँ। चौबीसवें शून्य का योग करके दस अंक तक गुणों की संख्या पहुँचा देती हूँ। पच्चीसवाँ शून्य रखते ही गुण एक शंख तक पहुँच जाते हैं। मेरा हृदय बहुत बड़ा है। इसमें धनी के बहुत अधिक गुण समा सकते हैं।

हवे छवीस करीने करूं दस संख, वली लखतां लखतां चीफूं निसंख।
सुरिता करूं मींडा मूकीने सतावीस, ए गुण धणी जोई हूं पगला भरीस।।२३।।

छब्बीसवाँ शून्य रखकर धाम धनी के गुणों की संख्या दस शंख तक कर लेती हूँ। धनी के गुणों को इस प्रकार पुनः लिखते-लिखते निश्चित रूप से मुझे संकोच भी होता है। सताइसवाँ शून्य रखकर गुणों की गणना को

"सुरिता" तक पहुँचा देती हूँ। प्रियतम के इतने गुणों को देखकर मैं उनकी ओर प्रेम के कदम बढ़ाने का संकल्प लेती हूँ।

अठावीसे दस सुरिता थाय, वीस नव करूं जेम पती गुण ग्रहाय।
दसपती गुण हूं त्रीसज करूं, ए गुण गणी मारा चितमां धरूं।।२४।।

अट्ठाइसवाँ शून्य रखकर मैं गुणों को दस सुरिता तक कर देती हूँ। उन्तीसवाँ शून्य रखते ही धनी के गुण "पति" तक हो जाते हैं। तीसवें शून्य के योग से गुणों की संख्या दस पति तक पहुँच जाती है। अपने प्राणधन के इन गुणों को गिनकर मैं अपने चित्त में बसा लेती हूँ।

एकत्रीसे एम अंत केहेवाय, वली लेखणो कागल स्याहीनी चिंता थाय।
जाणूं रखे खपी जाय अध विच, त्यारे केम गुण गणीने ग्रहीस मारे चित।।२५।।

एकतीसवाँ शून्य रखने से गुणों की संख्या एक "अन्त" तक हो जाती है। अचानक ही मुझे लेखनी, कागज, तथा स्याही की चिन्ता होने लगती है कि यदि गुणों को लिखते-लिखते ये बीच में ही समाप्त हो जायेंगे, तो मैं अपने प्रियतम के गुणों को किस प्रकार से गिनूँगी और उन्हें अपने चित्त में बसा सकूँगी।

बत्रीस करीने दस अंतज करूं, ए गुण एकांत मारा चितमां धरूं।
मध गुण करूं त्रेतीसज करी, रखे कागल स्याही लेखणो जाय वरी।।२६।।

बत्तीसवाँ शून्य रखकर गुणों की संख्या दस अन्तज तक कर लेती हूँ। मैं एकान्त में इन सभी गुणों को अपने चित्त में बसा लेती हूँ। तैंतीसवाँ शून्य रखकर प्रियतम के गुणों को मध्य तक मान लेती हूँ। मैं चिन्तित रहती हूँ कि कहीं कागज, स्याही, और लेखनी ही समाप्त न हो जाये।

हवे दस मध करूं करीने चोंत्रीस, गुण मारा वालाना चितमां ग्रहीस।
हवे एकडा ऊपर पांत्रीस मींडा धरूं, परार्ध करीने लेखो मारो करूं।।२७।।

चौंतीसवे शून्य के योग द्वारा गुणों की संख्या दस मध्य तक पहुँच जाती है। मैं अपने प्रियतम के इन गुणों को अपने चित्त में बसा लेती हूँ। अब मैं एक अंक के आगे पैंतीसवाँ शून्य रख देती हूँ, जिसका परिणाम यह होता है कि धनी के गुणों की संख्या मेरी गणना के अनुसार परार्ध तक पहुँच जाती है।

एणे लेखे कांई गणती न थाय, मारा धणीतणां गुण एम न गणाय।
हवे लेखो करूं साथ जोजो विचार, लखवा गुण मारा प्राणना आधार।।२८।।

इस प्रकार लिखने से गिनती नहीं होती। मेरे प्रियतम के अनन्त गुणों को इस प्रकार से नहीं गिना जा सकता है। हे साथ जी! अपने प्रियतम के गुणों को लिखने के लिये

अब मैं दूसरी प्रकार से गणना (हिसाब) करती हूँ, जिसका आप विचार करके देखिए।

एक मींडे थाय परार्ध गणां, एणी सनंधें वाधे बीजे एह तणां।
एम करतां ए जेटला थाय, वली एहेना एटला गुण गणाय।।२९।।

एक शून्य रखने से धनी के गुण परार्ध गुना बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार, दूसरे शून्य से धाम धनी के गुण उसी अनुपात में बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार करते हुए जितने गुण होते हैं, उसी तरह से गुणों की संख्या की गणना बढ़ती जाती है।

ए गुण मारा जीवमां ग्रहाय, पण बीहती लखूं जाणुं रखे कागले न समाय।
लेखणोनी मूने चिंता थाय, जाणूं घडतां घडतां रखे उतरी जाय।।३०।।

इन गुणों को मैं अपने जीव में ग्रहण करती हूँ, किन्तु

इस बात से डरती हूँ कि इतना लिखने में कहीं कागज कम न पड़ जाये (इतना लेख कागज में नहीं समायेगा)। मुझे लेखनियों की भी चिन्ता हो रही है कि कहीं नोंक बनाते-बनाते सभी कलमें ही समाप्त न हो जायें।

हूं तां स्याहीनी पण करूं छूं जो वाण, जाणूं रखे लखतां न पोहोंचे निरवाण।
एम मूकतां मूकतां मींडा रहया भराय, कागल स्याही लेखणो खपी जाय।।३१।।

मैं तो स्याही से लिखने में भी कृपणता बरत रही हूँ कि कहीं लिखते-लिखते सम्पूर्ण स्याही ही समाप्त न हो जाये। इस प्रकार एक के आगे केवल शून्य-शून्य लिखने से सम्पूर्ण कागज भर गया। यहाँ तक कि सारी स्याही एवं लेखनियाँ भी समाप्त हो गयीं।

ए कागल एम रहयो भराई, कोरमेर सघली रही समाई।

कीडी पग मूकवानो नथी क्यांहें ठाम, किहां ने मूकूं मींडूं जेहेनूं नाम।।३२।।

यह कागज इस प्रकार भर गया कि इसके चारों कोनों पर भी सर्वत्र शून्य-ही-शून्य नजर आने लगे। इस पर अब चींटी के पैर के बराबर भी स्थान नहीं बचा है। ऐसी अवस्था में जिसे शून्य कहते हैं, भला उसे कैसे रखा जा सकता है?

हवे ए गुण गण मारा जीव तूं रही, जेम जाणजे तेम राखजे ग्रही।

ए गुणतां में घणूं ए गणाय, पर मारा धणी तणां गुण एहमा न समाय।।३३।।

हे मेरे जीव! तूने अब तक जो भी गुण गिने हैं, उनमें जितना सम्भव हो, उतना अपने हृदय में बसा। मैंने बहुत ही कठिनाई से इन गुणों को गिना है, किन्तु मेरे प्राणेश्वर के गुण इस गणना से भी पूर्ण नहीं होते हैं।

हवे वली करूं बीजो लखवानो ठाम, लखवा गुण मारा धनी श्री धाम।
जेटला गुण ए मांहें थया, एटली दाण एहवा कागल भरया।।३४।।

अब मैं अपने धाम धनी के गुणों को पुनः लिखने के लिये पुनः दूसरा स्थान खोजती हूँ। अब तक जितने गुण गिने गये हैं, उतनी संख्या में इस प्रकार के कागजों को भरा गया।

एवा कागल एवी स्याही लेखण, माहें झीणा आंक लख्या अतिघण।
ए लेखणोंनी में जोई अणी, पण हजी कांई करी न सकी झीणी अतंत घणी।।३५।।

इसी प्रकार की स्याही, लेखनी, तथा कागज पर बहुत बारीक अंकों में धनी के गुणों को लिखा। मैंने लेखनियों (कलमों) की नोंक भी देखी। वह इतनी अधिक बारीक थी कि मैं किसी भी प्रकार से उससे अधिक बारीक नोंक नहीं बना सकी।

जेटला गुण ए गणतां थाय, ए गुण मारा जीवमां समाय।

लेखणो करवाने बुध करे छे बल, घडूं ने समारूं सहु काढीने बल।।३६।।

अभी तक धनी के जो भी गुण गिने गये हैं, मेरे जीव ने उन सभी को आत्मसात् कर लिया है। मेरी बुद्धि प्रियतम के गुणों को लिखने के लिये प्रयास कर रही है, इसलिये मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ बहुत अधिक कलमें (लेखनियाँ) बनानी हैं।

कथुआना पगनो गुण जेटलो भाग, लेखणोंनी टांको में चीरियों जोई लाग।

एणी टांके आंक लख्या एम करी, एटली दाण एहवा कागल फरी फरी।।३७।।

अब तक जितने भी गुण गिने गये हैं, कथुए के पैर के उतने भाग के बराबर मैंने कलमों की नोंक को चीरकर बनाया। इस प्रकार की बारीक नोंक वाली कलम से मैंने गुणों की गणना के अंक लिखे हैं, और जितने गुण थे,

उतने ही कागज थे, जिन पर मैंने बार–बार लिखा है।

एम लखी लखीने में गणया गुण, पण मारा धणी तणा गुण छे अतिघण।
ए गुण मलीने जेटला थया, ते तां में मारा जीवमां ग्रहया।।३८।।

इस प्रकार लिख–लिखकर मैंने प्रियतम के गुणों को गिना, किन्तु मेरे धाम धनी के गुण तो बहुत अधिक (अनन्त) हैं। इन सभी गुणों को मिलाने पर जो योग होता है, उसे मैंने अपने जीव के हृदय में धारण कर लिया।

ए लखतां मूने केटली थई छे वार, हवे एहेनो निरमांण काढवो निरधार।
गुण जेतमों भाग एक खिणनो आधार, एटली थई छे मूने लखतां वार।।३९।।

इन गुणों को लिखने में कितना समय लगा, उसका भी विवरण देना अति आवश्यक है। अब तक प्रियतम के

जितने गुण हुए, उतने भाग मैंने एक क्षण के किये। उतने ही समय में मैंने सभी कागजों पर धनी के गुणों को लिखा।

एम लखी लखीने में लख्या अपार, हवे वली जोऊं केटली थई मूने वार।
गुण जेटला महाप्रले थाय, एम लख्या में तेणें ताय।।४०।।

इस प्रकार लिख-लिखकर मैंने प्रियतम के अपार गुणों को लिखा। अब मैं यह देखती हूँ कि मैंने कितने समय तक लिखा? अब तक जितने गुणों को मैंने गिना है, उतनी संख्या के बराबर महाप्रलय हुए हैं और उतने समय तक मैंने अपने प्राणेश्वर के गुणों को गिना है।

वचमां स्वांस न खाधो एक, वेल न कीधी कांई लखतां वसेक।
एहेनो में सरवालो किध, श्री सुंदरबाईए सिखामण दिध।।४१।।

धनी के गुणों को गिनते समय मैंने एक भी स्वांस नहीं लिया अर्थात् निरन्तर लिखती ही रही। थोड़ा भी समय मैंने व्यर्थ नहीं किया। श्यामा जी की दी हुई शिक्षा के अनुसार मैंने इसका भी हिसाब किया।

हवे जो जो साथ लेखूं एम लख्यूं जोर, तोहे मारा जीवनी हामनी न चंपाणी कोर।
जीव छे मारो मोटो पात्र, हजी जीव जाणे ए लख्यूं तुछ मात्र।।४२।।

हे साथ जी! देखिए, यद्यपि मैंने धनी के गुणों को अपनी पूरी शक्ति से लिखा, फिर भी मेरे जीव की चाहना का एक भाग भी पूरा नहीं हुआ। मेरे जीव में प्रियतम के गुणों को लिखने की बहुत अधिक पात्रता है। इतना लिखने के पश्चात् भी यह यही मान रहा है कि मैंने तो बहुत ही थोड़ा सा लिखा है।

गुण तो पाछल हजी भरया भंडार, गुण जेटला भंडार में गणियां आधार।
गणतां गणतां पाछल दीसे अपार, तेहेनो निरमाण काढवो निरधार।।४३।।

अभी तो धनी के गुणों के भण्डार के भण्डार भरे हैं। जितने गुण गिने हैं, उतने ही गुणों के भण्डारों की संख्या भी गिनी है। गिनते-गिनते अभी भी अपार भण्डार शेष दिखायी देते हैं। इनकी भी गणना करना अति आवश्यक है।

हूं नव काढूं तो बीजो काढे कोंण, निरमाण काढी ग्रहूं धणीतणा गुण।
पाछला भंडारनूं लेखूं दऊं वल्लभ, ए लेखूं करतां मूने नथी रे दुर्लभ।।४४।।

यदि अपने प्राणवल्लभ के गुणों के भण्डारों का आँकलन मैं न करूँ, तो और कौन करेगा? मैं अपने धाम धनी के गुणों का हिसाब करके उन्हें अपने हृदय में आत्मसात् करूँगी। अब मैं धनी के गुणों के बचे हुए शेष भण्डारों को

लिख देती हूँ। यह कार्य मेरे लिये कठिन नहीं है।

सर्वे गुण गणी जीवे कीधां मारे हाथ, हूं तां प्रगट कहूं छूं मारा प्राणना नाथ।
ए सर्वे तो कहूं जो गुण ऊभा थाय, गुण मननी पेरे वाधता जाय।।४५।।

मेरे प्राणों के प्रियतम्! यह बात मैं स्पष्ट रूप से कह रही हूँ कि यद्यपि मेरे जीव ने आपके सभी गुणों को गिनकर मुझे बता दिया है, किन्तु यदि धनी के गुणों की संख्या स्थिर हो, तब तो वह सम्पूर्ण संख्या कही जा सकती है। प्रियतम के गुण तो मन की गति से बढ़ते ही रहते हैं।

एक खिण में वहेच्यूं मारा श्री राज, ए गुण जेटला कीधां तेहेना भाग।
तेहेवा एक भागना में ए गुण कहया, ए सर्वे मारा जीवमां ग्रहया।।४६।।

मेरे राज रसिक! मैंने एक क्षण के उतने भाग किए जितने कि गुण हैं। उस एक भाग में जो अवधि निश्चित

होती है, उतने समय में धाम धनी के जो गुण गणना में आते हैं, मैंने उतनी ही संख्या मान ली। गुणों की उस संख्या को मैंने अपने जीव के हृदय में बसा लिया।

ए गुण गणतां मारा कारज सरया, भलेरे मायामां आपण देह धरया।
आखा अवतार नी केही कहूं वात, कांईक प्रेमल रदे मूने आवी प्राणनाथ।।४७।।

भले ही हमने माया का तन क्यों न धारण किया हो, किन्तु प्रियतम के गुणों की इस प्रकार गणना करते–करते मेरा कार्य सिद्ध हो गया। धाम धनी द्वारा धारण किये गये सभी स्वरूपों की मैं क्या बात करूँ। मेरे धाम–हृदय में तो अब मेरे प्राणेश्वर की कुछ मधुर सुगन्धि आ गयी है, अर्थात् उनका स्वरूप विराजमान हो चुका है।

ए गुण गणिया में निद्रा मंझार, नहीं तो एम केम गणूं मारा जीवना आधार।
हवे वातडियो करसूं इछा तमतणी, आंही जाग्यानी मूने हाम छे घणी।।४८।।

मैंने इन गुणों को माया की नींद में गिना है, अन्यथा अपने जीवन के आधार धाम धनी के गुणों को इस प्रकार क्यों गिनती। अब मैं केवल आपकी इच्छा के अनुसार ही बातें करूँगी। इस मायावी संसार में जाग्रत होने की मेरी बड़ी तीव्र इच्छा है।

वाला तमे आव्या छो माया देह धरी, साथ तणी मत माया ए गई फरी।
हवे अनेक हांसी थासे जाग्या पछी घरे, ज्यारे साथे माया मांगी कहे अमने सूं करे।।४९।।

मेरे प्राणेश! आप माया का तन धारण कर इस खेल में आये हैं। माया ने सुन्दरसाथ की बुद्धि को बदल दिया है। अब तो परमधाम में जाग्रत होने पर अनेक प्रकार की हँसी होगी, क्योंकि जब सुन्दरसाथ ने माया का खेल

माँगा था, तब यही कहा था कि माया हमारा क्या कर लेगी।

तमे ततखिण लीधी अमारी खबर, लई आव्या तारतम देखाड्या घर।
आपण जाग्या पछी हांसी करसूं जोर, घरने विसारी माया ए कीधा चोर।।५०।।

इस खेल में हमारे आते ही आपने उसी क्षण हमारी सुधि ली और तारतम ज्ञान लाकर परमधाम की पहचान दी। जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे तो बहुत अधिक हँसी करेंगे। इस माया ने चोर की तरह हमसे परमधाम को दूर सा कर दिया है (भुला दिया है)।

हवेने करसूं जाग्या पछी वात, कांई अमल चढ्यूं छे साथने निघात।
तारतम केहेता हजी वले न सार, नहीं तो अनेक विधे कहयूं प्राणने आधार।।५१।।

हे धाम धनी! अब मैं परमधाम में जाग्रत होने के पश्चात्

आपसे बातें करूँगी। इस खेल में सुन्दरसाथ के ऊपर माया का बहुत ही गहरा नशा चढ़ा हुआ है। यद्यपि धाम धनी ने अनेक प्रकार से इन्हें तारतम ज्ञान द्वारा समझाया है, फिर भी इन्हें अभी सुधि नहीं हो रही है।

इंद्रावती लिए भामणा गुण जेटला, तमे आंही सुख दीधा अमने एटला।
घरना सुखनी आंही केही कहूं वात, हवे सुख घरना नी घेर करसूं विख्यात।।५२।।

मेरे धाम धनी! मैं आप पर पूर्ण रूप से न्योछावर होती हूँ। आपके जितने (अनन्त) गुण हैं, आपने उतने ही सुख हमें इस संसार में भी दिये हैं। परमधाम के सुखों की मैं इस संसार में क्या बात करूँ। जब परमधाम चलेंगे, तब वहाँ के सुखों की बातें करेंगे।

चरणे लाग कहे इंद्रावती, गुण न देखे किन एक रती।

धणी जगाडी देखाडसे गुण, हाँसी थासे त्यारे अति घण।।५३।।

श्री इन्द्रावती जी अपने प्रियतम के चरणों में प्रणाम करती हुई कहती हैं कि हे धाम धनी! इस संसार में किसी ने भी आपके रञ्चमात्र (नाम मात्र) भी गुणों की पहचान नहीं की है। जब आप परमधाम में जाग्रत करके अपने गुणों की पहचान करायेंगे, तब वहाँ बहुत अधिक हँसी होगी।

प्रकरण ।।१२।। चौपाई ।।३२७।।

सांभलो साथ मारा सिरदार, वचन कहूं ते ग्रहो निरधार।
एटला गुण आपणसूं करी, बेठा आपणमां माया देह धरी।।१।।

मेरे प्रमुख सुन्दरसाथ जी! मैं जो भी बातें आपसे कह रही हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें और दृढ़तापूर्वक ग्रहण करें। प्रियतम ने हमारे ऊपर इतनी कृपा की है और हमें जगाने के लिये हमारे ही मध्य (श्री मिहिरराज जी) में माया का तन धारण करके बैठे हैं।

भरम भाजो वचन जोई करी, निद्रा घेन मूको परहरी।
श्री धामतणां धणी केहेवाए, ते आवी बेठा आपण मांहें।।२।।

इनके वचनों को देखकर अपने संशय मिटाइये तथा अपनी माया की निद्रा को दूर भगाइये। जो धाम के धनी कहलाते हैं, वे हमारे (मेरे) अन्दर आकर लीला कर रहे हैं।

हवे सेवा कीजे अनेक विध करी, अने आपण काजे आव्या फरी।
वली अवसर आव्यो छे हाथ, चेतन करी दीधो प्राणनाथ।।३।।

अब उनकी पहचान करके अनेक प्रकार से सेवा कीजिए। वे हमें जाग्रत करने के लिये ही पुनः आये हैं। प्रियतम अक्षरातीत (श्री प्राणनाथ जी) ने सावचेत भी कर दिया है कि उन्हें (प्रियतम को) रिझाने का हमें पुनः अवसर प्राप्त हुआ है।

ए ऊपर हवे सूं कहूं, श्री वाला जी ना चरणज ग्रहूं।
कर जोडी करूं विनती, अने अलगी न थाऊं चरण थकी।।४।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी! अब इससे अधिक मैं क्या कहूँ। मैंने तो आपके श्री चरणों को ही अपने हृदय में आत्मसात् कर लिया है। मैं अपने दोनों हाथों को जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मैं कभी

भी आपके चरणों से अलग न होऊँ।

प्रकरण ।।१३।। चौपाई ।।३३१।।

जाटी भाषा में – प्रबोध

मूंजा अंध अभागी जीव जोर रे, तूं की सुतो हित।
पर पर धणिए जगाइया, तोके घर न सूझे कित।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे अन्धे भाग्यहीन जीव! तू अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर जाग्रत हो जा। तू इस प्रकार माया में क्यों सो रहा है? धाम धनी ने तुझे अनेक प्रकार से जगाया, किन्तु तुझे अभी भी अपने घर की पहचान क्यों नहीं हो पा रही है?

अगेनी तू कुरो केओ, जडे पिरी हल्या साणे।
से अजां न उथिए अकरमी, भूंडा सुते हित केही सांगायसे।।२।।

शब्दार्थ– अगेनी–पहले, साणे–सामने, अजां–अभी भी, सांगायसे–कारण से।

अर्थ– पहले भी तूने क्या किया, जब प्रियतम तुम्हारे सामने ही चले गये। रे कर्महीन! तू अभी भी जाग्रत क्यों नहीं हो रहा है? पापी! तू अभी तक किसलिये सो रहा है?

पर पोतेजी न्हार तूं निखर, वलहो न डिसे अजां छेह।
अवगुण न डिसे पांहिंजा, पिरी मेहेर करी वरी एह।।३।।

शब्दार्थ– निखर–निष्ठुर, छेह–वियोग, पांहिंजा–अपने।

अर्थ– मेरे निष्ठुर जीव! तू जरा अपनी ओर तो देख, तुझे अपने प्रियतम का वियोग नहीं दिखायी दे रहा है? तू अपने दोषों को क्यों नहीं देखता? धाम धनी ने तुम्हारे ऊपर पुनः ऐसी अनुपम कृपा की है।

वभिरकां पिरी तो कारण, आया माया मंझ।

को न सुजाणे सिपरी, न तां थींदिए डूरण डंझ।।४।।

शब्दार्थ– वभिरकां–पुनः, थींदिए–होगा।

अर्थ– प्रियतम तुम्हारे लिये ही पुनः माया का तन धारण करके आये हैं। तू अभी भी उनकी पहचान क्यों नहीं कर लेता? यदि तूने अपने प्राणधन को नहीं पहचाना, तो तुझे बहुत अधिक दुःख देखना पड़ेगा।

पांण पांहिंजो पस तूं, अंख उघाडे न्हार।

खीर पाणी जी परख पधरी, हिन तारतम महें विचार।।५।।

तू अपनी आँखें खोलकर स्वयं को देख। तारतम वाणी से यदि तू विचार कर, तो तुझे विदित होगा कि उसमें दूध और पानी अर्थात् ब्रह्म और माया की स्पष्ट पहचान दी गयी है।

अगेनी अंखियूं फूटियूं, भूंडा हाणें तूं कीक सांगाए।

ही जोगवाई हथ न रेहेंदी, पोय पर न थिंदिए कांए।।६।।

शब्दार्थ– कीक–कुछ, पोय–बाद में, थिंदिए–होगा।

अर्थ– रे पापी! तुम्हारी आँखें तो पहले भी फूटी थीं। अब तो तू कुछ पहचान कर ले। ये साधन (शरीर, समय) हमेशा तुम्हारे पास रहने वाले नहीं हैं। सोच ले, बाद में तेरा क्या हाल होने वाला है?

अगेतां अकरमी थेओ भूंडा, हांणे तूं पाण संभार।

पिरी पले पले तोके थका, भूंडा अजां न वरे तोके सार।।७।।

रे पापी! पहले भी तो तू कर्महीन हो गया था। अब तो तू अपने को सम्भाल ले। प्रियतम तुझे समझा–समझाकर थक गये। किन्तु पापी जीव! अभी भी तुझे सुधि नहीं आ रही है।

वभिरकां पिरी तो कारण, हांणे आया माया मंझ।

धाऊं पाइंदे पिरी वभिरकां, तोके थीअण आई संझ।।८।।

शब्दार्थ– थींअण–होने वाली है।

अर्थ– प्रियतम तुम्हारे लिये अब पुनः इस मायावी संसार में आये हुए हैं। वे तुम्हें जगाने के लिये पुनः पुकार रहे हैं। तुम्हारे अवसर की शाम होने वाली है।

अंग मरोडे न उथिए, पासे फजर पसी हींए मंझ।

पोए कारी रात में की न सुझे, से तां डुखे संदानी डंझ।।९।।

शब्दार्थ– पसी–देखकर, हींए–यहाँ, मंझ–में।

अर्थ– तारतम ज्ञान से प्रातःकाल का उजाला होने पर भी यदि तू अपने आलस्य को छोड़कर जाग्रत नहीं होता है, तो याद रख, बाद में अज्ञानता की अन्धेरी रात्रि में तुझे कुछ भी पता नहीं चलेगा और तुम्हें हमेशा ही

प्रायश्चित का दुःख भोगना पड़ेगा।

तारतम तूंता न्हार विचारे, जा पिरी आंदो तो कारण।

हेतरा भट बरंदे मथे, तोके अजां सा न वंजे घारण।।१०।।

मेरे जीव! तू इस तारतम ज्ञान के प्रकाश में विचार करके देख, जिसे प्रियतम तुम्हारे लिये ही लेकर आये हैं। तेरे शिर पर इतनी अधिक ज्ञानाग्नि की वर्षा हुई, फिर भी तू माया की नींद को नहीं छोड़ पा रहा है।

प्रकरण ।।१४।। चौपाई ।।३४१।।

मूंहजा जीव अभागी रे, हाणे तूं जिन चुके हिन वेर।

तो के नी हिन अंधारे मंझां, ई वेओ कढंदो केर।।१।।

मेरे भाग्यहीन जीव! अब तू इस बार इस अवसर को न गँवा, अन्यथा माया के इस अन्धकार से इस तरह से दूसरा कौन है जो तुम्हें निकालेगा।

गुण तूं हिकडो न्हार संभारे, संदो सिपरियन।

जाग तूं मूंजा जीव अभागी, को सुते सारूथी मन।।२।।

मेरे अभागे जीव! तू अपने प्राणेश्वर के एक भी गुण को तो जरा देख और उन्हें याद कर। अब तो तू जाग जा। मन को ही अपना स्वामी बनाकर (आश्रित होकर) माया में क्यों सो रहा है?

पेरो वेण तो केहा कढया, से कुरो मथियण मन मंझा।

बुध मन तोहेजा बेही रेहेंदा, हांणे क्रोध कढंदे साहा।।३।।

याद कर! पहले तूने किस प्रकार के वचन कहे थे? तूने अपने मन में क्या सोचा–विचारा है? तुम्हारे मन और बुद्धि यहीं रह जायेंगे और प्रियतम तुम्हारी भूलों पर क्रोध दर्शाकर तुझे यहाँ से ले जायेंगे।

जीव निरजो को थिए, तोके अजां न लगे घाए।

सिपरी संभारे करे, भूंडा को न उडाइए अरवाए।।४।।

मेरे जीव! तू इस प्रकार निर्लज्ज क्यों हो गया है? तुझे अभी भी प्रियतम के वचनों की चोट क्यों नहीं लगती? रे पापी! तू अपने प्राणेश्वर की पहचान करके उन पर अपनी आत्मा को पूर्णतया न्योछावर क्यों नहीं कर देता (उड़ा क्यों नहीं देता)?

जे तूं चुके जीव हिन भेरां, त तां सुणज मूंजी गाल।

जीव कढंदुस जोरे तोके, करे भुछा हवाल।।५।।

मेरे जीव! यदि तू इस बार चूक गया, तो मेरी बात सुन ले। मैं दण्ड रूप में तेरी बहुत बुरी अवस्था (हाल) करूँगी और तुझे बलपूर्वक इस माया से निकालूँगी।

अगेनी तो भुछी केई, जीव हाणें तूं पाण संभाल।

सजण तोके साणें कोठींन था, खिल्ली करींन था गाल।।६।।

शब्दार्थ– साणें–परमधाम से, कोठींन था–बुलाने।

अर्थ– पहले भी तूने बुरा किया। रे जीव! अब तो तू अपने को सम्भाल ले। परमधाम से प्रियतम तेरी हँसी करने तथा तुझे यहाँ से ले जाने के लिये संसार में आये हैं।

हो ससुई सा पण ई चोए, आऊं डियां कोड मथां।

पुनूं संदी बधाई को आणे, ते के डियां ल्हाए हथां।।७।।

शशि भी ऐसा कहती है– जो भी मेरे प्रियतम पुन्हुन (पुनूं) के आने की बधाई देगा, उसे मैं अपने हाथों अपनी गर्दन को करोड़ों बार काटकर दे दूँगी।

ए वेण न न्हारिए, फिट फिट रे भूंडा जीव।

तो जो ओठो पण वेओ को न्हारे, हिन गाले वेओ घणूं लही।।८।।

शब्दार्थ– तो जो–तुम्हारा, ओठो–नमूना, वेओ–दूसरा, लही–उतार सके।

अर्थ– रे पापी जीव! तुझे धिक्कार है। शशि द्वारा कहे गये इन वचनों का विचार क्यों नहीं करता। भला तुम्हारे समान और कौन दिखायी दे रहा है, जो प्रेम की इन बातों को बहुत अधिक आत्मसात् कर सके।

तोहे तोके सांगाय न वरे, तूं थेओ को ई।

न्हार संभारे पाण पांहिंजो, जे गालों करींन था पिरीं।।९।।

रे जीव! तू ऐसा क्यों हो गया है? तू अपने आपको देख और प्रियतम से जो बातें तूने की थीं उनको याद कर।

द्रष्टव्य– जीव परमधाम में प्रेम–संवाद में नहीं था। प्रियतम से बातें करने का आशय है– सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से बातें करने से है।

से वेण तूं को विसारिए भूंडा, जे पिरी चेया तोके पाण।

जे वेण विचारिए हिकडो, त हंद न छडिए निरवांण।।१०।।

रे पापी जीव! तू उन वचनों को क्यों भूल गया, जो प्रियतम (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) ने स्वयं तुमसे कहे थे। यदि तू उनके एक वचन का भी विचार कर लेता, तो निश्चित रूप से उनकी सान्निध्यता को नहीं छोड़ता।

अभागी तोके ते चुआं अकरमी, जे न पसां तोमें हाल।

सत दाण तोके चुआं सुहागी, जे करिए की की भाल।।११।।

रे जीव! मैं तुम्हें भाग्यहीन कहूँ या कर्महीन कहूँ। तुम्हारी अवस्था में मैं कोई भी परिवर्तन नहीं देख रही हूँ। यदि तू धनी की राह पर अपनी थोड़ी सी भी सम्भाल कर ले, तो मैं तुझे सौ बार सुहागी कहूँगी।

प्रकरण ।।१५।। चौपाई ।।३५२।।

वी वलामणी

और विलाप किया है

मूंजा जीव सुहागी रे, हाणें जिन छडिए पिरी पेर।
वभेरकां तो कारणे, पिरी आया हिन वेर।।१।।

मेरे सुहागी जीव! अब तू इस बार अपने प्रियतम के चरणों को न छोड़। तुम्हारे लिये ही इस बार प्रियतम संसार में आये हैं।

पिरिए संदा गुण संभारे, झल्ल तूं पिरिए पेर।
सांणे तोके सुख पुजाइंदा, वेओ कोठे ईंय केर।।२।।

तू अपने धनी के गुणों को याद कर और उनके चरणों को पकड़ ले। प्रियतम तुझे सुखपूर्वक अखण्ड धाम में ले

जायेंगे। दूसरा कौन है, जो तुझे इस प्रकार बुलायेगा?

खिल्ली कूडी कर गालडी, सुजाण पोतेजा पिरी।

तोजे काजे आप विधाऊं, विनी भेरां न्हार की।।३।।

शब्दार्थ– विनी–दूसरी, भेरां–बार।

अर्थ– अपने प्रियतम से तू हँसते–खेलते हुए बातें कर और उनकी पहचान कर। तुम्हारे लिये धनी दूसरी बार आये हैं। इस बात को तू क्यों नहीं देखता?

सजण ए की छडजे, तूं तां न्हार केडा आईन।

पिरिए तोसे पाण न रख्यो, से न संभारजे की।।४।।

ऐसे प्राणवल्लभ को भला कैसे छोड़ा जा सकता है? तू उन्हें देख कि वे कैसे हैं? प्रियतम ने तुमसे कुछ भी

छिपाकर नहीं रखा है। ऐसी अवस्था में तू उन्हें याद क्यों नहीं करता?

कोड करे तूं केड बांधीने, थी पिरिए जे पास।

सिपरी तूं सुजाण पांहिंजा, छड वेओ मंडे साथ।।५।।

तू प्रसन्नता से कमर कसकर अर्थात् तैयार होकर प्रियतम के पास जा। तू केवल अपने धाम धनी की पहचान कर तथा अन्यों का साथ छोड़ दे।

पाणजे साथ के परमें चोयज, जे तो उकले वेण।

साथ तां की न सांगाय सुहागी, तोहे पाहिंजा सेण।।६।।

यदि प्रियतम के वचनों की तुम्हें समझ हो जाती है, तो उन्हें अपने अन्य सुन्दरसाथ से भी कहना। मेरे सुहागी जीव! यद्यपि सुन्दरसाथ को कुछ भी सुधि नहीं है, तो

भी वे अपने धाम के साथी तो हैं।

प्रकरण ।।१६।। चौपाई ।।३५८।।

मूंजा साथ सुहागी रे, हांणें अईं को न सुजाणो सिपरी।
पेरोनी पांण न सुजातां, आइडा से वरी रे।।१।।

मेरे सुहागी सुन्दरसाथ जी! अब अपने प्रियतम को क्यों नहीं पहचान रहे हैं। पहले भी आपने उन्हें नहीं पहचाना। वही धाम धनी अब पुनः (श्री मिहिरराज जी के तन में) आये हैं।

सेई सजण सेई गालड्यूं, सेई कारयूं करीन।
पांण जो काजे पिरी पांहिंजा, पाणी अखियें भरीन।।२।।

अब वही प्रियतम हैं, जो पहले श्री देवचन्द्र जी के तन में लीला कर रहे थे। वैसी ही चर्चा कर रहे हैं तथा उसी प्रकार तारतम ज्ञान से सबको पुकार रहे हैं। हमारे धाम धनी हमारी आत्म-जाग्रति के लिये अपनी आँखों में आँसू भरकर हमें समझा रहे हैं।

सेई सिखामण डियन सिपरी, ताणीन घर मणे।

पाण पाहियूं की आसरूं, वलहो आव्यो वरी करे।।३।।

प्रियतम हमें पहले की तरह ही सीख दे रहे हैं, तथा हमें परमधाम चलने की प्रेरणा दे रहे हैं। धाम धनी पुनः दूसरी बार आये हैं। ऐसी अवस्था में हम उन्हें पुनः क्यों भूलें?

कूकडियूं करीन पेहेलीनियूं, हांणें को न सुजाणो साथ।

न तां खरे बेपोरे सेज सोझरे, हाणे थींदी रात।।४।।

वे पहले की भांति ही पुकार रहे हैं, किन्तु हे साथ जी! अब भी आप उनकी पुकार को क्यों नहीं सुन रहे हैं? अब यदि आप उन्हें नहीं पहचानेंगे, तो तपती दोपहरी के उजाले में रात्रि जैसा दृश्य उपस्थित हो जायेगा, अर्थात् हमारे हृदय के अन्दर गहन अन्धकार छा जायेगा।

पोए हथ हणंदा पटसे, हैडे डींदा घा।

सजण सूरे में वेही न रेहेंदां, हल्री वेदानी हथ मंझां।।५।।

शब्दार्थ– पटसे–धरती पर, सूरे में–माया में।

अर्थ– बाद में आप धरती पर हाथ पटकेंगे और छाती पीटते–पीटते उसमें घाव कर लेंगे। धाम धनी इस माया में हमेशा बैठे नहीं रहेंगे। वे हमारे हाथ से चले जायेंगे।

धाएडियुं करीन पिरी, परी परी चए वेण।

पाणजे काजे पिरी बभेरां, पाण त्रेमाईन नेण।।६।।

शब्दार्थ– धाएडियुं–पुकारना, त्रेमाईन–बहाते हैं।

अर्थ– प्रियतम अनेक प्रकार के वचनों से पुकार कर रहे हैं। वे हमारी आत्म–जाग्रति के लिये दूसरी बार भी अपनी आँखों से आँसू बहाते हैं।

मायातां डिठियां मंझ पेहीने, सोझरे सिपरियन।

भती भती जी रांद डेखारण, पिरी आंदो तारतम।।७।।

शब्दार्थ– पेहीने–प्रवेश करके, सोझरे–उजाला।

अर्थ– हम इस संसार में बैठकर माया का खेल देख रहे हैं। हमें तरह–तरह का खेल दिखाने के लिये धाम धनी तारतम ज्ञान का उजाला लेकर आये हैं।

जा माया आं मोंहें मंगई, सा डिठियां वी वार।

साथ हाणें पिरी साथ हल्लजे, जीं पिरी पेराईन करार।।८।।

हमने धाम धनी से जिस माया का खेल माँगा था, उसे हम दूसरी बार (पहली बार व्रज में) देख रहे हैं। हे साथ जी! अब हमें प्रियतम के साथ परमधाम चलना चाहिये, जिससे प्रियतम प्रसन्न (आनन्दित) हों।

वभेरे पिरी पाणजे काजे, सायर में विधाऊं आप।

पाणजे काजे पांण विधाऊं, हाणें को न सुजाणो साथ।।९।।

प्रियतम हमारे लिये ही इस भवसागर में दूसरी बार आये हैं। हे साथ जी! जब वे अपने लिये ही इस संसार में आये हैं, तो अब हम उनकी पहचान क्यों नहीं कर रहे हैं?

आकारतां अंई भले पसो था, पण पसो मंझियो तेज।

पिरी पांहिंजा पाण पाणसे, घणूं करीन था हेज।।१०।।

हे साथ जी! आप भले ही उनके (श्री मिहिरराज जी के) बाह्य तन को क्यों न देख रहे हों, किन्तु उनके धाम-हृदय में विराजमान श्री राज जी के आवेश स्वरूप के तेज को भी तो देखिये। तब आपको विदित होगा कि धाम धनी परमधाम के हम सब सुन्दरसाथ से कितना अधिक प्रेम करते हैं।

हांणें केही पर करियां आंसे, को न सुजाणों सेंण।
सजण सेई पुकार करीन, आंके निद्र अचे की नेंण।।११।।

हे साथ जी! अब आप ही बताइये कि मैं अब आपके साथ किस प्रकार का व्यवहार करूँ? आप अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की पहचान क्यों नहीं कर पा रहे हैं? धाम धनी पहले (श्री देवचन्द्र जी) की ही तरह तारतम ज्ञान से आपको पुकार रहे हैं। फिर भी आपकी आँखों (हृदय) में माया की नींद क्यों है?

नेंणेंनी मंझां निद्र न वंजे, जे हेडी मथां थेई।
सेणेंसे अंई साथ न हल्यां, पोरया कुरो कंदा रही।।१२।।

आपकी आँखों (हृदय) से माया अभी भी क्यों नहीं जा रही है? आपकी यह ऐसी अवस्था क्यों हुई? यदि प्रियतम के साथ परमधाम नहीं गये, तो बाद में यहाँ

रहकर क्या करेंगे?

हिन डुखे मंझा को न निकरयो, केहो डिसोथा भाल।
जडे हली वेंदा हथ मंझां, तडे केहा थींदा हाल।।१३।।

इस दुःखमय संसार से कोई बाहर नहीं निकला है। आप यहाँ आशा-भरी दृष्टि से किसकी ओर देख रहे हैं? जब प्रियतम हाथ से निकल जायेंगे, तब सोचिये कि आपकी क्या अवस्था होगी?

पाणके हिन पिरी धारा, वेओ चोय ई केर।
साथ संभारे न्हारयो दिलमें, जिन चुको हिन वेर।।१४।।

हे साथ जी! धाम धनी के अतिरिक्त और कौन है, जो हमें इस प्रकार आत्म-जाग्रति के लिये कहे। आप अपने हृदय में इस बात का विचार कीजिए और इस अवसर को

न गँवाइये।

हिकडी आर चुके मांहडू, तेके वी आर अचे बुध।
हेतरा भठ वरंदे मथे, आंके अजां न वरे सुध।।१५।।

यदि मनुष्य एक बार चूक जाता है, तो दूसरी बार उसे बुद्धि आ जाती है। हे साथ जी! आपके शिर पर इतनी आग जली (ज्ञान की वर्षा हुई), फिर भी आपको सुधि नहीं हुई।

हिक वेर म थीजा विसरया, हित न्हाय बेठे जो लाग।
अंख उघाडे ढकजे, कोडमी पातीमें थिए अभाग।।१६।।

इस बार अपने आराध्य अक्षरातीत को न भूलिये। अब बैठने (निष्क्रिय रहने) का समय नहीं है। आँखों के खोलने और बन्द करने में जो समय लगता है (एक

पल), उसके करोड़वें भाग को भी यदि आप व्यर्थ में गँवाते हैं, तो निश्चय ही आप भाग्यहीन कहलायेंगे।

आऊं खीजी आंके की चुआं, सा न वरे मूंजी जिभ।
पण अंई हिन माया मंझां, केही कढंदा निध।।१७।।

मैं आपसे क्रोधित होकर क्यों बोलूँ? मेरी जिह्वा ऐसा नहीं कर सकती, किन्तु इस माया में फँसे रहकर आप कौन सी निधि प्राप्त कर लेंगे?

वेण विगो आंके चुआं, सा वढियां मुंहजी जिभ।
पण अंई हिनमें पई रहया, हिन मंझां कां न थिंदियां सिध।।१८।।

शब्दार्थ– विगो–टेढ़ा, वढियां–काट डालूँ, मुंहजी–अपनी।

अर्थ– यदि मैं आपके लिये कोई कटु शब्द बोलूँ, तो मैं अपनी जिह्वा को ही काट देना चाहूँगी। किन्तु आप ही बताइये कि इस माया में फँसे रहकर आप क्या करेंगे? इस मायावी संसार में उलझे रहकर किसी का भी आध्यात्मिक लक्ष्य सिद्ध नहीं हुआ है।

हिन सोझरे जे न सुजातां, वभेरकां हीं ईं।
पोए सांणेनी सिपरियन अग्यां, मोंह खणदियूं की।।१९।।

तारतम ज्ञान के इस उजाले में यदि आपने अपने प्राणवल्लभ को दूसरी बार भी नहीं पहचाना, तो परमधाम में जाग्रत होने पर धाम धनी के सम्मुख अपना मुख कैसे उठायेंगे?

पेरोनी पाण नजर न्हारींदे, व्यो अवसर हथां।

जडे हथे मंझे हली वेयां, तडे केहेडी थेईनी पाण मथां।।२०।।

पहले भी हमारे देखते-देखते हमारे हाथ से अवसर निकल गया। सोचिये! जब प्रियतम हमारे मध्य से चले गये (अदृश्य हो गये), तो हमारे शिर पर क्या बीती अर्थात् हमें कितना दुःखद अनुभव हुआ।

हींय हंद एहेडो आय, हिक वेरमें थिए वेणां।

साथ तां आइन सभे समझू, न्हाय केहे में मणां।।२१।।

यह मायावी जगत् तो ऐसा है कि एक ही क्षण में सब कुछ नष्ट हो जायेगा। हे साथ जी! आप सभी तो बहुत समझदार हैं। किसी में भी बुद्धि-विवेक की कोई कमी नहीं है।

साथ अंई की की न्हारयो संभारे, गुण म छडो मोकरे मोय।

इंद्रावती चोय पेरे लगी, फिरी फिरीने केतरो चोय।।२२।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! प्रियतम के कुछ-कुछ वचनों को याद करके उनका विचार तो कीजिए। धनी के गुणों को आत्मसात् करना न छोड़िये तथा माया से मोह न करें। मैं आपके चरणों में लगकर कितना कहूँ कि जाग जाइए, जाग जाइए।

प्रकरण ।।१७।। चौपाई ।।३८०।।

विनती – राग धनाश्री

हूं तां पिउजीने लागूं छूं पाय, मारा वाला जेम आ फेरा सुफल मारो थाय।
जेम पिउजी ओलखाय मारा पिउजी, सुणोने अमारी वालाजी विनती।।१।।

श्री इन्द्रावती जी अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणों में प्रणाम करते हुए कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम! आप मेरी यह प्रार्थना सुनिये। मैं यही चाहती हूँ कि मेरा इस संसार में आना सार्थक हो जाये अर्थात् मेरी आत्मा जाग्रत हो जाये। मैं आपकी वास्तविक पहचान करना चाहती हूँ।

अमें पेहेला नव ओलख्या राज, अमने भरम गेहेने आण्या वाज।
भवसागरना जल छे अपार, तेतां तमे सेहेजे उतारया पार।।२।।

मेरे राज रसिक! हम पहले (जब आप श्री देवचन्द्र जी के तन में लीला कर रहे थे) आपकी पहचान नहीं कर

सके थे, क्योंकि हम माया के गहरे प्रभाव से हार गये थे। यद्यपि इस भवसागर का जल अनन्त है, किन्तु आपने तारतम ज्ञान एवं अपनी प्रेममयी कृपा द्वारा इससे सरलतापूर्वक पार करा दिया।

तमे भली पेहेलीने कीधी मारी वहार, धणी लिए तेम लीधी सार।
चौद भवननी गम आंही, तेतां लखी सर्वे सास्त्रों मांही।।३।।

उस समय (पहले) आपने हमारी बहुत अच्छी प्रकार से वैसी ही सुधि ली, जैसे एक प्रियतम अपनी अर्धांगिनी (प्रियतमा) की लेता है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण पहचान शास्त्रों में अच्छी प्रकार से दी गयी है।

ते तमे कीधी छे प्रकास, तेहेनी तारतम पाय पुरावी साख।
तमे अमने जुगते माया रामत देखाडी, तमे अमने घेर पोहोंचाड्या दुस्तर उतारी।।४।।

आपने तारतम ज्ञान के प्रकाश में इस मायावी ब्रह्माण्ड की वास्तविकता को दर्शाया तथा शास्त्रों से इसकी साक्षी भी दी। आपने हमें युक्तिपूर्वक इस माया का खेल दिखाया है और कठिनता से पार की जा सकने वाली इस माया से हमें पार करके परमधाम तक पहुँचाया है।

अमें मनोरथ कीधां हता जेह, तमें पूरण कीधां सर्वे तेह।
तमे अमने मनोरथ करतां वारया, तोहे कारज अमारा लई सारया।।५।।

हमने परमधाम में माया का खेल देखने की जो इच्छा की थी, उसे आपने अच्छी प्रकार से पूर्ण किया। यद्यपि आपने हमें परमधाम में माया का खेल देखने से मना किया था, किन्तु हमारी तीव्र इच्छा को देखकर उसे पूर्ण भी कर दिया।

अमने लागी हती जेहेनी रढ, ते तमे पूरण कीधी आंही आवी द्रढ़।
तमे अमने रामत देखाडवाने काज, अम पेहेलाने पधारया श्री राज।।६।।

हमने माया का खेल देखने की रट लगा रखी थी। उसे आपने हमें यहाँ लाकर अच्छी प्रकार से पूर्ण कर दिया। हे राज! हमें माया का खेल दिखाने के लिये आप हमसे पहले ही आये।

एवा मारा लाड पूरण कोण करे, बीजी दाण देह मायामां कोण धरे।
तमे मोसूं गुण कीधां छे अनेक, तेतां लख्या मारा रूदयामां लेख।।७।।

आपके अतिरिक्त और दूसरा कौन है, जो इस प्रकार मुझसे प्रेम करे तथा मेरी आत्मा को जाग्रत करने के लिये माया में दूसरी बार तन धारण करे? आपने मेरे प्रति अपनी बहुत अधिक प्रेम-भरी कृपा दर्शायी है, जो मेरे हृदय-पटल पर अंकित है।

तम उपर थी तिल तिल करी नाखूं मारी देह, तमे कीधां मोसूं अधिक सनेह।

हूं तो भामणियां लई लई जाऊं, तमसूं सुरखरू केणी पेरे थाऊं।।८।।

मेरे प्राणवल्लभ! मैं आपके प्रति अपने शरीर को टुकड़े–टुकड़े करके न्योछावर कर देना चाहती हूँ। आपने मुझसे बहुत अधिक (अपार) प्रेम किया है। मैं बार–बार आपके ऊपर बलैया लेती हूँ (समर्पित होती हूँ)। मैं तो समझ ही नहीं पा रही हूँ कि आपके इस अखण्ड प्रेम से उऋण कैसे हो पाऊँगी?

तमे छो अमारडा धणी, तो आसडी पूरो छो अमतणी।

इंद्रावती चरणे लागे, कृपा करो तो जागी जागे।।९।।

श्री इन्द्रावती जी चरणों में प्रणाम करते हुए कहती हैं कि आप ही हमारे प्राणप्रियतम हैं, इसलिये हमारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। आपकी कृपा से ही हम सभी आत्मायें

जाग्रत हो सकती हैं।

प्रकरण ।।१८।। चौपाई ।।३८९।।

अखंड दंडवत करूं परणाम, हैडे भीडी ने भाजूं हाम।

प्रेमे दउं प्रदखिणा, फरी फरी वली अति घणा।।१।।

मेरे प्राणेश! मैं आपके चरणों में अपने सर्वस्व समर्पण को दर्शाने वाला अखण्ड दण्डवत् प्रणाम करती हूँ। मैं आपके गले लगकर अपने प्रेम की इच्छा को पूर्ण करना चाहती हूँ। मेरी यही कामना है कि मैं बार-बार बहुत अधिक प्रेम के साथ आपकी परिक्रमा किया करूँ।

वारी वारी जाऊं मुखारने विंद, वरणवुं सोभा सरूप सनंध।

वारणा लऊं आंखडियो तणा, सीतल दृष्ट मांहें नहीं मणा।।२।।

मैं आपके मुखारविन्द की अनुपम शोभा पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ और आपके स्वरूप की सुन्दर शोभा का वर्णन करती हूँ। मैं आपकी उन आँखों पर भी न्योछावर होती हूँ, जिनकी प्रेम-भरी शीतल दृष्टि में

किसी भी प्रकार की कमी नहीं है।

भामणा ऊपर लउं भामणा, सुख अमने दीधां अति घणा।
वली वली लागूं चरणे, सेवा करीस हूं वालपण घणे।।३।।

आपने हमें बहुत अधिक सुख दिया है। मैं आपके प्रति बार-बार समर्पित होती हूँ। मैं बारम्बार आपके कोमल चरणों में प्रणाम करती हूँ तथा इस बात का दृढ़ संकल्प करती हूँ कि मैं बहुत प्रेम से आपकी सेवा करूँगी।

वारी फरी नाखूं मारी देह, इंद्रावती वली वली एम कहे।
अति वखाण में थाय नहीं, पोताना घरनी वातज थई।।४।।

श्री इन्द्रावती जी बार-बार कह रही हैं कि हे धाम धनी! मैं आपके ऊपर अपने को बार-बार न्योछावर करना चाहती हूँ। यह तो अपने घर (परमधाम) की बात है,

इसलिये मैं इस विषय में अधिक नहीं कहना चाहती।

पोते पोताना करे वखाण, तेहेने सहु कोई कहे अजाण।
पण जेवडी वात तेहेवा वखाण, वचन ग्रहसे जोईने जाण।।५।।

जो स्वयं अपने मुख से अपनी महिमा गाता है, उसे सभी अज्ञानी कहते हैं। किन्तु जो बात जितनी है, उतनी कहना आवश्यक है, क्योंकि उसे जानकर ही लोग उसे ग्रहण करते हैं।

श्री धणीतणा वचन प्रमाण, प्रगट लीला थासे निरवाण।
चौद भवननो कहिए भाण, रास प्रकास उदे थया जाण।।६।।

तारतम वाणी में कहे हुए धनी के वचनों से यह सिद्ध होता है कि निश्चित रूप से अब ब्रह्म लीला प्रकट होगी। रास और प्रकाश ग्रन्थ के अवतरण को तो चौदह लोकों

में सर्वोपरि ज्ञान का सूर्य ही समझना चाहिए।

चौद भवननो नहीं आसरो, उदेकार अति घणो थयो।

सब्दातीत ब्रह्मांड कीधां प्रकास, ए अजवालूं जोसे साथ।।७।।

रास और प्रकाश ग्रन्थ के अलौकिक ज्ञान का इतना अधिक उजाला है कि चौदह लोक के इस मायावी ब्रह्माण्ड से अब हमारा कोई लगाव ही नहीं रह गया है। तारतम वाणी ने बेहद और परमधाम (शब्दातीत ब्रह्माण्डों) का ज्ञान दर्शाया है, जिसका अनुभव सुन्दरसाथ भी करेंगे।

प्रकास तणा वचन निरधार, जे जोईने करसे विचार।

आगल ए थासे विस्तार, जीव घणा उतरसे पार।।८।।

जो भी सुन्दरसाथ प्रकाश ग्रन्थ के वचनों का विचार

करेगा, उसे यह विदित हो जायेगा कि ये पूर्णतया सत्य हैं। तारतम वाणी के अन्दर इन वचनों का भविष्य में और अधिक विस्तार होगा, जिनका अनुकरण करके बहुत से जीव इस भवसागर से पार हो जायेंगे।

ए लीला जे जोसे विचार, सूं करसे तेहेने संसार।
प्रगट पाइयो कीधो एह, अंबारत थासे हवे तेह।।९।।

जो इस लीला का विचारपूर्वक चिन्तन करेंगे, उनका संसार भला क्या कर लेगा? धाम धनी ने रास एवं प्रकाश की यह जो नींव रखी है, उसके ऊपर श्रीमुखवाणी का बहुत ही विशाल भवन स्थित होगा।

हवे सुणजो सहुए साथ, चरणे तमने लागे मेहेराज।
ए वाणी श्री धणिए कही, वली वली तमने कृपा थई।।१०।।

अब सभी सुन्दरसाथ मेरी बात सुनें। मैं मिहिरराज आपके चरणों में प्रणाम करते हुए कह रहा हूँ कि इस वाणी को स्वयं धाम धनी ने ही कहा है। इस प्रकार आपके ऊपर धाम धनी की बारम्बार कृपा हुई है।

एहेवो पकव प्रवीण नथी कांई हूं, तो सिखामण तमने केम दऊं।
हूं घणुए एम जाणूं सही, जे जीव मारूं समझावुं रही।।११।।

हे साथ जी! मैं कोई ऐसा महान ज्ञानी नहीं हूँ, जो आपको इस प्रकार से शिक्षा दूँ। मैं यह बात बहुत अच्छी प्रकार से जानती हूँ कि इस प्रकार कहकर मैं केवल अपने जीव को ही समझाने का प्रयास करती हूँ।

पण धणी तणी कृपा अति घणी, वली वली दया करे साथ तणी।
तो वचन तमने केहेवाय, नहीं तो कीडी मुख कोहलूं न समाय।।१२।।

सब सुन्दरसाथ पर धाम धनी की बहुत अधिक कृपा है। वे सुन्दरसाथ पर बार–बार अपनापन (दया) दिखा रहे हैं। यही कारण है कि तारतम वाणी के अमृतमयी वचन आपसे कहे जा रहे हैं, अन्यथा मेरा मुख तो चींटी के मुख के समान बहुत छोटा है और धनी के वचन कुम्हणे (पेठे) के समान हैं।

हवे रखे वचन विसारो एक, साथ माटे कहया विसेक।
वचन कहया छे करजो तेम, आपण पेहेलां पगला भरियां जेम।।१३।।

हे साथ जी! अब आप प्रियतम अक्षरातीत द्वारा कहे गये एक भी वचन को न भूलिये। सुन्दरसाथ को जगाने के लिये ही विशेष रूप से यह ब्रह्मवाणी कही गयी है। आप वैसा ही आचरण करें, जैसा धाम धनी ने तारतम वाणी के अपने वचनों में कहा है। व्रज से रास में जाते समय

हमने विरह, प्रेम, और समर्पण का जो मार्ग अपनाया था, वही हमारे लिये श्रेयस्कर है।

वली अवसर आव्यो छे हाथ, चरणे लागीने कहूं छूं साथ।
हवे चरणे लागूं श्रीवालाजी, तमे वहार मारी भली कीधी।।१४।।

हे साथ जी! मैं आपके चरणों में प्रणाम करते हुए यह बात कह रही हूँ कि धनी को रिझाने का पुनः स्वर्णिम अवसर आपको प्राप्त हुआ है। अब मैं अपने प्राणेश्वर के चरणों में प्रणाम करती हूँ। आपने इस संसार में मेरी बहुत अच्छी तरह से सुधि ली है।

आ माया घणूं जोरावर हती, पण हलवी थई मारा धणी तम थकी।
मायाने तजारक थई, ते ऊपर आ विनती कही।।१५।।

मेरे प्रियतम! यह माया बहुत ही शक्तिशाली थी, किन्तु

आपकी कृपा से अब यह बहुत हल्की हो गयी है। आपने माया को ठोकर मारकर भगा दिया, इसलिये मैंने यह धन्यवाद रूप विनती की है।

ते विनतडी जोजो सार, माया दुख पामी निरधार।
धणी लिए तेम लीधी सार, मुख मांहेंथी काढी आधार।।१६।।

हे साथ जी! अब आप मेरे द्वारा की गयी विनती के सार तत्व को देखें। माया ने हमें बहुत दुःखी किया है। हमारे जीवन के आधार प्रियतम ने हमें माया के भयानक मुख से निकालकर एक सच्चे पति की भांति हमारी सुधि ली है।

तमारा गुणनी केही कहूं वात, तमे अनेक विधे कीधी विख्यात।
पोतावट जाणी प्रमाण, इंद्रावती चरणे राखी निरवाण।।१७।।

मेरे प्राणवल्लभ! आपके गुणों का मैं किन शब्दों में वर्णन करूँ। आपने अनेक रूपों में उन्हें दर्शा दिया है। मुझ इन्द्रावती को अपनी अर्धांगिनी जानकर आपने मुझे अपने चरणों की छत्रछाया में रखा है।

चरण पसाय सुंदरबाईने करी, फल वस्त आवी रदे चढी।
चरण फल्या निध आवी एह, हवे नहीं मूकूं चित चरण सनेह।।१८।।

श्री श्यामा जी के चरणों की कृपा से मेरे धाम-हृदय में तारतम वाणी की निधि अवतरित हुई तथा सर्वोच्च ज्ञान का प्रकाश हुआ। अब मैं उनके चरणों का प्रेम किसी भी स्थिति में नहीं छोडूँगी।

चरण तले कीधुं निवास, इंद्रावती गाए प्रकास।
भाजी भरम कीधो अजवास, पामे फल कारण विस्वास।।१९।।

मैं इन्द्रावती की आत्मा श्यामा जी के चरणों की छत्रछाया में रहकर ही इस प्रकाश वाणी का गायन कर रही हूँ। आपके प्रति अटूट विश्वास के कारण ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि आपने मेरे अन्दर का संशय मिटाकर तारतम ज्ञान का उजाला कर दिया है।

विस्वास करीने दोडे जेह, तारतमनूं फल लेसे तेह।
ते माटे कहूं प्रकास, जोपे जागी लेजो साथ।।२०।।

तारतम ज्ञान का फल उसी को प्राप्त होगा, जो इस पर अटूट विश्वास करके युगल स्वरूप के प्रेम में दौड़ लगायेगा। इस प्रकाश ग्रन्थ का अवतरण भी धाम धनी ने इसलिये मुझसे कराया है कि जिससे सुन्दरसाथ इसको आत्मसात् करके आचरण में उतारे और जाग्रत हो जाये।

एटले पूरण थयो रास, इंद्रावती धणीने पास।

मूने मारे धणिए दीधी बुध, हवे प्रकास करूं तारतमनी निध।।२१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे धाम–हृदय में प्रियतम के विराजमान होने पर रास ग्रन्थ का अवतरण हुआ। मेरे प्राणवल्लभ ने मुझे इस संसार में जाग्रत बुद्धि दी है, जिसके द्वारा अब मैं तारतम ज्ञान की अखण्ड निधि को उजागर कर रही हूँ।

प्रकरण ।।१९।। चौपाई ।।४१०।।

हवे प्रकास उपनो छे

अब प्रकाश प्रकट हुआ है

हवे करूं ते अस्तुत आधार, वल्लभ सुणो विनती।
आटला दिवस में नव ओलख्या मारा वालैया, मायानी लेहेर मूने जोर हती।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे जीवन के आधार प्राणवल्लभ! अब मैं आपकी प्रेम–भरी स्तुति कर रही हूँ, उसे सुनिये। मैं आज दिन तक आपकी पहचान इसलिये नहीं कर पायी क्योंकि मैं माया की भयंकर लहरों से घिरी हुई थी।

जीव जगावी भाजी भरम, श्री वालाजीने लागूं पाए।
सोभा तमारी तीत सब्द थकी, मारी देह आ जिभ्या सब्द मांहें।।२।।

मेरे प्रियतम! मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ। आपने मेरे संशयों को दूर कर मेरे जीव को जाग्रत किया है। आपकी शोभा शब्दों से परे है, जबकि मेरा यह शरीर और जिह्वा इस नश्वर संसार के हैं।

केणी पेरे हूं करूं अस्तुत, मारा जीवने नथी कांई बल।
मारी जोगवाई सर्वे अस्थिर वस्तनी, केम वरणवुं सोभा नेहेचल।।३।।

मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ, मेरे जीव में कोई शक्ति ही नहीं है। मेरे अन्तःकरण तथा इन्द्रिय रूप सभी संसाधन नश्वर माया के हैं। ऐसी अवस्था में मैं आपकी अखण्ड शोभा का वर्णन कैसे कर सकती हूँ।

आगल जीवे कीधी अस्तुत, भगवानजीनी भली भांत।
पंडिताई चतुराई ने प्रवीणाई, किवता मांडे छे करी खांत।।४।।

पहले जीवों ने भगवान आदिनारायण की बहुत अच्छी प्रकार से स्तुति की है। उन्होंने अपनी विद्वता तथा चातुर्यता से काव्य-रचने में प्रवीणता (महारत) प्राप्त की। इस स्थिति को प्राप्त कर उन्होंने सन्तोष धारण कर लिया।

ते प्रवाही वचन ज्यारे जोइए, तेहेमां को को छे भारे वचन।
एतां दिए अचेत थकी उपमां, पण मूने साले ते मन।।५।।

माया के प्रवाह में बहने वाले इन जीवों की रचनाओं को यदि देखा जाये, तो इनमें भी कहीं-कहीं परब्रह्म के सम्बन्ध में श्रेष्ठ वचन देखने के लिये मिल जाते हैं। माया की नींद में अचेत (बेहोश) होने पर भी इन विद्वानों की रचनाओं में परब्रह्म की उपमा बहुत श्रेष्ठ शब्दों में होती है, जिन्हें देखकर मेरे मन में पीड़ा होती है कि मैं ब्रह्मसृष्टि

होकर भी धनी की महिमा में श्रेष्ठ रचना क्यों नहीं कर सकती।

अजाण थके दिए एवडी उपमा, त्यारे जाण्यानो कीहो प्रमाण।
एक वचन जो पडे मुख प्रवाही, ते तां नव जाण्यूं निरवाण।।६।।

यदि माया के जीव अनजाने में भी (क्षर को अक्षरातीत मानकर) इतनी श्रेष्ठ उपमाओं से महिमा गाते हैं, तो यदि उन्हें तारतम ज्ञान के प्रकाश में धाम धनी की पहचान हो जाये, तो न जाने कितने श्रेष्ठ शब्दों से धनी की महिमा का गायन कर सकते हैं। किन्तु यदि हमारे मुख से तारतम ज्ञान के वचनों और प्रवाही जीवों द्वारा रचे गये वचनों को एक समान कहा जाता है, तो इसका यही तात्पर्य निकलता है कि हमने निश्चित रूप से अभी धाम धनी की वाणी को नहीं जाना है।

नव में सांभल्यूं वेद पुराण, नव सांभली किव चतुराई।
एक बे वचन मुख सांभल्या धणीना, तेणे एम जाण्यूं आ पुष्ट ओ प्रवाही।।७।।

न तो मैंने वेद–पुराणों के ज्ञान को सुना है और न चातुर्यतापूर्वक काव्य–रचना की कला सीखी है। मैंने तो मात्र अपने प्रियतम के मुख से एक–दो (अति अल्प) वचनों को ही सुना है, जिससे मुझे विदित हुआ है कि सत्य ज्ञान के आधार पर दृढ़तापूर्वक चलना (पुष्टि मार्गी होना) क्या है और मायावी परम्पराओं के प्रवाह में बहते रहना क्या है।

ते पण चित दई नव सांभल्या, नहीं तो पूर बढयो प्रघल।
आडा गुण सघला जोध जुजवा, तेणे नव लेवा दीधूं टीपूं जल।।८।।

किन्तु उन एक–दो वचनों को भी मैंने चित्त देकर नहीं सुना, अन्यथा प्रियतम (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) के

मुख से ज्ञान के सागर का प्रचण्ड बहाव बह रहा था। ऐसे समय में मेरे तीनों गुण अलग–अलग रूपों में विरोध में खड़े हो गये और उन्होंने मुझे उस ज्ञान रूपी जल की एक बूँद को भी नहीं लेने दिया।

हवे ते गुणने केही दीजे उपमा, फिट फिट भूंडी बुध।
प्रथम तूं मोहोवड मंडाणी, तें कां न लीधी ए निध।।९।।

अब मैं प्रियतम अक्षरातीत के अनन्त गुणों की उपमा मैं किससे दूँ? रे पापिनी बुद्धि! तुझे धिक्कार है। पहले तो तू अग्रगण्य बनकर अपना अधिकार दर्शाती थी, किन्तु अब तुझे क्या हो गया जो तू उस अखण्ड निधि को नहीं ले सकी।

सागर पूर वह्यूं रे सनंधे, तें कां न लीधूं ए जल।
तें बुध पापनी हूं मेलूं परहरी, तें थई मोसूं निबल।।१०।।

रे पापिनी बुद्धि! प्रियतम के मुख से तो ज्ञान के सागर का प्रवाह ही बह रहा था, किन्तु तूने उस जल को ग्रहण क्यों नहीं किया? मैं तेरा परित्याग करती हूँ। मेरा कार्य करने के लिये तू अति निर्बल हो गयी है।

हवे रे बुधडी हूं कहूं तूंने, तूं थाय बुधनो अवतार।
श्री वालाजीने वल्लभ कर रे, एक खिण म मूके लगार।।११।।

रे बुद्धि! मैं तुमसे एक अति उत्तम बात कह रही हूँ कि तू अक्षरातीत को अपना सर्वस्व मानकर उनसे प्रेम कर तथा एक क्षण के लिये भी स्वयं को उनसे अलग न कर।

बीजी बुध केही आवे अम समवड, हूं बुध मांहें बुध अवतार।
बुधें करी वालाजीने वल्लभ करीस, ए बुध नहीं मूकूं लगार।।१२।।

जाग्रत बुद्धि कहती हैं कि सपने की अन्य कोई भी बुद्धि मेरे समान नहीं हो सकती। मैं ही सभी बुद्धियों में श्रेष्ठ होने के कारण बुद्धावतार कहलायी हूँ। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरी इस जाग्रत बुद्धि ने धाम धनी से प्रेम किया है। अब ऐसी बुद्धि को मैं पल–भर के लिये भी नहीं छोड़ूँगी।

बुधं जी रह्या छे आसरे, जे छे बुध अवतार।
ए बुध जी विना बीजा बापडा, कोण काढे ए सार।।१३।।

वस्तुतः जाग्रत बुद्धि ही बुद्धावतार है, जो मेरे धाम–हृदय में धनी के शरणागत होकर रही है। इस जाग्रत बुद्धि के बिना बेचारा और कौन है, जो अखण्ड धाम के ज्ञान

को दर्शाये।

सार काढे सुध करीने, वाणी वेहद गाए।

धन अवतार ते बुध तणो, जे रहयो आवीने पाए।।१४।।

यह जाग्रत बुद्धि सभी धर्मग्रन्थों के सार तत्व को निकालकर सबको उसकी सुधि देती है तथा बेहद की वाणी को संसार में प्रकट करती है। जाग्रत बुद्धि का यह अवतार धन्य-धन्य है। यह जाग्रत बुद्धि मेरे धाम-हृदय में विराजमान प्रियतम अक्षरातीत के चरणों की सान्निध्यता में रही है।

ते नहीं वैकुंठ नाथने, जे रस बुध अवतार।

चरण ग्रह्या वालाजी तणां, कांई ए निध पाम्यो सार।।१५।।

अखण्ड धाम (बेहद तथा परमधाम) के ज्ञान का जो

रस जाग्रत बुद्धि के पास है, वह भगवान विष्णु के पास भी नहीं है। इसने मेरे धाम-हृदय में विराजमान धनी के चरणों को ग्रहण किया है, जिसके परिणाम स्वरूप इसे परमधाम की लीला के ज्ञान की यह अखण्ड निधि प्राप्त हुई है।

सार पामे सुख उपनूं, धन धन ए अवतार।
आज लगे ब्रह्मांड मांहें, कोई एम न पाम्यो पार।।१६।।

परमधाम की लीला का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जाग्रत बुद्धि को बहुत अधिक सुख का अनुभव हुआ। इस प्रकार, यह जाग्रत बुद्धि धन्य-धन्य हो गयी। आज दिन तक इस ब्रह्माण्ड में किसी ने भी इस प्रकार परमधाम की लीला का ज्ञान प्राप्त नहीं किया था।

ए अवतारनी उपमा, कांई लीला अखंड थासे।
वचन एहेना विधे विधे, कांई वाणी ब्रह्मांड गासे।।१७।।

जाग्रत बुद्धि के इस अवतार की महिमा यही है कि इसके अवतरण की लीला से यह सारा संसार अखण्ड हो जायेगा। इसकी वाणी की महिमा को संसार के सभी प्राणी तरह-तरह के वचनों से गायेंगे।

हवे रे श्रवणा कहूं हूं तूंने, तूंने धणिए कहया वचन।
कां न लीधां तें वचन वचिखिण, फिट फिट भूंडा करन।।१८।।

रे पापी कानों! तुम्हें धिक्कार है। अब मैं तुम्हें क्या कहूँ? जब धाम धनी ने तुमसे परमधाम के अनमोल वचन कहे थे, तो तूने उन्हें सुना क्यों नहीं?

मंडाण तुझ ऊपर रे श्रवणा, लेवाए तारे बल।

धणिए धन रेढतां नव जोयूं, नेठ कां न थया निबल।।१९।।

रे कानों! परमधाम का अलौकिक ज्ञान मैं तुम्हारे ही बल से लेने का मुद्दा रखता था। धाम धनी ने भी ज्ञान रूपी धन देने में आगे-पीछे नहीं देखा अर्थात् अपार दिया। फिर भी निर्बल कानों! तुमने उसे दृढ़तापूर्वक ग्रहण नहीं किया।

हवे श्रवणा तूं संभार आपोपूं, थाय वचिखिण वीर।

वाणी जे वल्लभतणी, तूं ग्रहजे दृढ करी धीर।।२०।।

हे कानों! अब तू अपनी शक्ति को याद कर। श्रवण करने में तुम विलक्षण वीर वन जा। प्रियतम की अमृतमयी वाणी को तू धैर्यपूर्वक दृढ़ संकल्प के साथ ग्रहण कर।

विध विधना वचन सुणयाजी, श्रवणां कहे संभारी।
जे मनोरथ हता मारा जीवने, ते पूरी वाले आस अमारी।।२१।।

प्रत्युत्तर में कान कहते हैं कि हमें अच्छी तरह से यह बात याद है कि हमने धाम धनी के मुख से तरह–तरह के अमृतमयी वचनों को सुना है। मेरे जीव में जो भी इच्छायें थीं, उन्हें प्रियतम ने पूर्ण कर दिया है।

हवे सुणीस हूं जोपे करी, नव मूकूं एक वचन।
ऐ वाणी घणू हूं वल्लभ करीस, जेम सहु को कहे धन धन।।२२।।

अब हम धाम धनी के वचनों को अच्छी प्रकार से सुनेंगे तथा उनके एक भी वचन को नहीं छोड़ेंगे। इस वाणी को हम बहुत प्रेम से ग्रहण करेंगे, जिससे हर कोई हमें धन्य–धन्य कहे।

हवे तूने हूं कहूं रे निद्रा, तूं नीच निबल निरधार।

गुण सघला आडी तूं फरी वली, नव लेवा दीधी निध आधार।।२३।।

रे निद्रा! अब मैं तुमसे यह बात कहती हूँ कि तू निश्चय ही नीच और निर्बल है। तूने मेरे सभी गुणों के ऊपर आवरण डालकर प्रियतम की अखण्ड निधि को नहीं लेने दिया।

तू तां केवल माया रूप पापनी, वोल्या लेई तूं बाथ।

श्रवणाय तें सांभलवा न दीधी, आलस वगाई तारे साथ।।२४।।

रे पापिनी निद्रा! तू तो प्रत्यक्ष ही माया का स्वरूप है। तूने मेरा आलिंगन कर माया में डुबोये रखा। तूने मेरे कानों को प्रियतम की वाणी भी नहीं सुनने दी क्योंकि आलस्य और जम्भाई सर्वदा तुम्हारे साथ रहते हैं।

घारण घणी विध आवी जीवने, जेम मीन वीट्यो मांहें जाल।
जेणे नेत्रे निध निरखूं निरमल, ते नेत्रे आडी थई पाल।।२५।।

रे निद्रा! जिस प्रकार मछली जाल में फँस जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे प्रभाव से जीव भी अज्ञानता के गहन अन्धकार में डूब जाता है। मैं अपने जिन नेत्रों से अपने प्राणेश्वर को देख सकती थी, तूने उन नेत्रों के आगे आवरण (पर्दा) डाल दिया।

फिट फिट भूंडी दुष्ट पापनी, हवे तजूं तुझने निरधार।
आगे तें अवसर चूकवयो, हवे निरखूं जीवनो आधार।।२६।।

रे मूर्खा, दुष्टा, पापिनी निद्रा! तुझे धिक्कार है। मैं तुझे निश्चित रूप से छोड़ दूँगी। पहले भी तूने अवसर खो दिया है। अब मैं अपने जीवन के आधार धाम धनी का अवश्य ही दर्शन करूँगी।

आगे निद्रा थई निबल मोसूं, घारण हुती घणी पर।

हवे तूं जीवने म आवीस ढूकडी, कर संसार माहें घर।।२७।।

रे निद्रा! पहले तूने मुझे बहुत निर्बल बना दिया था, क्योंकि मेरे ऊपर तुम्हारा बहुत गहरा प्रभाव छा गया था। अब तू मेरे जीव के जरा भी निकट नहीं आना। तू हमेशा के लिये संसार में चली जा।

निद्रा कहे ज्यारे जीव जाग्यो, त्यारे में केम रेहेवाय।

चरण फल्या ज्यारे धणीतणा, त्यारे जाऊं छूं लागीने पाय।।२८।।

नींद कहती है कि जब जीव जाग जाये, तो मैं शरीर में कैसे रह सकती हूँ? अब धाम धनी के चरणों की कृपा से मैं आपके चरणों में प्रणाम करके चली जाती हूँ।

अरूचडी तूं त्यारे आवी, ज्यारे मल्या मूने श्री राज।

फिट फिट भूंडी ऊहन अकरमण, तूं सरजी स्या ने काज।।२९।।

हे अरुचि! तू तो अभी ही आयी है, जब धनी के चरणकमल मुझे कुछ ही समय पहले प्राप्त हुए हैं। रे पापिनी! निष्क्रिय कर देने वाली ऊंघ! यह तो बता कि तू किसलिए पैदा हुई है?

फिट फिट भूंडी तें दा चूकवयो, हवे करे कांईयक बल।

जीवनजी मलया जीवने, तूं थाय संसारमां नेहेचल।।३०।।

रे पापिनी अरुचि! तुझे धिक्कार है। तूने पहले अवसर खो दिया है। अब तो तू कुछ बल कर। मेरे जीव को प्रियतम अक्षरातीत मिले हैं, इसलिये तू संसार में हमेशा के लिये चली जा (अखण्ड हो जा)।

अरूचडी कहे हूं बलवंती, मूने न लखे कोय।
छानी थईने आवूं जीवमां, भाजूं ते साजूं नव होय।।३१।।

अरुचि कहती है कि मैं बहुत ही शक्तिशालिनी हूँ। मुझे कोई जानता नहीं है। मैं छिपकर जीव में इस प्रकार बैठ जाती हूँ कि जब मैं उसे अपने लक्ष्य से हटा देती हूँ, तो मेरे रहते उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव सा नहीं रहता।

ज्यारे धणी पोते घर संभारे, त्यारे चोरी करे केम चोर।
हवे अवला मांहेंथी सवलूं करूं, जई बेसूं संसार मांहें जोर।।३२।।

जब इस शरीर रूपी घर का स्वामी जीव स्वयं प्रियतम की याद में रहता है, तो क्या माया रूपी चोर द्वारा उसकी चोरी की जा सकती है? अब मैं अरुचि आपको (जीव को) छोड़कर संसार में चली जाती हूँ, जिससे

उल्टे हो रहे कार्य सीधे हो जायेंगे।

मूने मारो वल्लभ मल्या रे वालेस्वरी, जाणूं सेवा कीजे हरकांत।
तेणे समे आवी ऊभी तूं अकरमण, फिट फिट भूंडी स्वांत।।३३।।

मुझे अति प्रिय लगने वाली शान्त प्रकृति! तू पापिनी है। तुझे धिक्कार है, क्योंकि तू उसी समय मेरे अन्दर आ गयी है, जब मेरे प्राणप्रियतम मुझे मिले हैं और मुझे हर प्रकार से उनकी सेवा करनी है।

ए निध आवे केम स्वांत कीजे, केम बेसिए करार।
दोड कीजे सघला अंगसूं, स्वांत कीजे संसार।।३४।।

प्रियतम की पहचान हो जाने पर आलस्य से उत्पन्न होने वाली शान्ति और आनन्द के साथ निठल्ले (प्रेम से रहित) होकर चुपचाप कैसे रहा जा सकता है? अब तो

सभी अंगों से धनी के प्रेम में दौड़ लगानी है तथा संसार की ओर से शान्त (निष्क्रिय) हो जाना है।

स्वांत कहे हूं तिहां लगे हुती, जां जीवने निद्रा हती जोर।
हवे जाऊं छूं संसार मांहें, तमे करो धनीसों कलोल।।३५।।

शान्ति कहती है कि मैं तभी तक थी, जब तक जीव माया की गहरी नींद में सो रहा था। अब मैं संसार में जा रही हूँ। हे जीव! आप अपने प्रियतम के साथ प्रेम और आनन्द की क्रीड़ा में मग्न हो जाओ।

हवे रे तूने कहूं लोभ लालची, फिट फिट भूंडा अजाण।
नव कीधो लोभ खरी निधनो, जेथी अरथ सरे निरवाण।।३६।।

रे लोभ-लालच! तुम पापी और अज्ञानी हो। तुम्हें धिक्कार है। मैं तुमसे यह बात कहती हूँ कि तुमने उस

सच्ची निधि (प्रियतम) को पाने का लोभ नहीं किया, जिसको पा लेने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

हवे म थासो तमे माया ढूकडा, मारा लोभ लालच बंने जोड।
लोभ आवो मारा वालाजीमां, जेम करूं रात दिन दोड।।३७।।

अब मेरे लोभ–लालच! तुम दोनों भूलकर भी माया के पास न जाना। लोभ! तू मेरे धाम धनी को पाने के लिये लग जा, जिससे मैं दिन–रात उन्हीं के प्रेम में लगी रहूँ।

लोभ लालच कहे स्यो वांक अमारो, जां न वले जीवने सार।
हवे जे तमे कह्यूं अमने, ते जोजो केम ग्रहूं छूं आधार।।३८।।

लोभ–लालच कहते हैं कि जब आपका जीव ही अपनी सुधि न ले, तो हमारा क्या दोष है? अब आपने हमें जिस कार्य के लिये कहा है, उसे देखिये। हम कितनी

शीघ्रता से धाम धनी को पा लेते हैं।

फिट फिट भूंडी तृष्णा अभागणी, तूं निबल थई निरधार।
बीजा गुण सघला तृपत थाय, पण तूंने कोई भावठ नां भंडार।।३९।।

रे पापिनी, अभागिनी तृष्णा! तुझे धिक्कार है। निश्चिय ही सत्य मार्ग पर चलने में तू निर्बल बनी रही। दूसरे सभी मायावी गुण (लोभ, अरुचि, सन्तोष आदि) तो तृप्त हो जाते हैं, किन्तु तू तो भूख का भण्डार ही प्रतीत होती है।

हवे तूंने केम काढुं रे तृष्णा, तोसूं मारे घणू काम।
तृष्णा आव मारा वालाजीमां, जेम वस करूं धणी श्री धाम।।४०।।

रे तृष्णा! मैं तुझे अपने से क्यों बाहर करूँ? तुझसे तो मुझे बहुत अधिक काम लेना है। तृष्णा! अब तू मात्र धाम धनी के लिये लग जा, जिससे मैं अपने प्राणेश्वर

अक्षरातीत को वश में कर लूँ।

तृष्णा कहे हूं केमे नव मूकूं, जे आत्माए देखाड्या आधार।
तमे जई बीजा गुण संभारो, ए हूं नहीं मूकूं निरधार।।४१।।

अब तृष्णा कहती है कि जब आत्मा ने प्रियतम की पहचान करा दी है, तो अब मैं किसी भी प्रकार से धाम धनी को नहीं छोडूँगी। अब आप जाकर दूसरे गुणों को सम्भालिये (सही मार्ग पर ले चलिये)।

मोह कहूं सुन वातडी, मूने मल्याता मारो आधार।
फिट फिट भूंडा दुरमती, तें तोहे न छाड्यो संसार।।४२।।

रे मोह! मेरी एक बात सुन, जिसे मैं तुमसे कह रहा हूँ। मुझे मेरे प्राणाधार मिल गये थे, किन्तु तूने संसार को नहीं छोड़ा। रे पापी, दुष्ट बुद्धि वाले मोह! तुझे धिक्कार है।

हवे रे आव तूं वालाजीमां, मायासूं करजे विछोह।

फरी जोगवाई आवी मारा हाथमां, हवे केवो जोध जोइए मारो मोह।।४३।।

रे मोह! अब तू माया से अलग हो जा और धाम धनी के चरणों में लग जा। अब मुझे प्रियतम को पा लेने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। मेरे मोह! अब मैं देखती हूँ कि तुम्हारे अन्दर कितनी शक्ति है।

मोह कहे मारी वात छे मोटी, मूने जाणू सहु कोय।

जेणे ठामे हूं बेसूं, तिहांथी अलगो करी न सके कोय।।४४।।

मोह कहता है कि मेरी बात बहुत बड़ी है। मुझे सभी जानते हैं कि मैं जहाँ भी बैठ जाता हूँ, वहाँ से कोई भी मुझे अलग नहीं कर सकता।

जे निध देखाडी तमे मूने, तेने जड थई वलगूं हूं अंध।

म्हारी विध तां एकज छे, बीजी न जाणू सनंध।।४५।।

आपने मुझे जिस अक्षरातीत की पहचान दी है, उनसे तो मैं अन्धे व्यक्ति की तरह दृढ़तापूर्वक लिपट जाऊँगा। मेरा तो एकमात्र यही मार्ग है। इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी नहीं जानता।

हरख सोक तमे थयारे मायाना, फिट फिट अभागी अजाण।

धणी मले तूं हरख न आव्यो, चाले सोक न आव्यो निरवाण।।४६।।

हर्ष और शोक! तुम्हें धिक्कार है। तुम भाग्यहीन और अज्ञानी हो। तुम माया के पूर्णतया अधीन ही हो चुके हो। रे हर्ष! उस समय तू मेरे पास क्यों नहीं आया, जब प्रियतम (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) से मेरा मिलन हुआ था। रे शोक! उस समय तू मेरे पास क्यों नहीं

आया, जब मेरे धाम धनी का अन्तर्धान हुआ।

निखर तमे निवलाई घणी कीधी, एवा अंध थया अभागी।
हवे तमने हूं सूं कहूं, जे जीवे न वारया जागी।।४७।।

हर्ष और शोक! तुम दोनों ने बहुत ही निष्ठुरता एवं दुर्बलता दिखायी है, जिसके कारण यह जीव भी अन्धा एवं भाग्यहीन हो गया। यह सुनकर हर्ष तथा शोक उत्तर देते हैं कि जब जीव ने ही जाग्रत होकर हमें माया की ओर लगने से मना नहीं किया, तो अब आप ही बतायें कि हम क्या करते?

हवे रे आवो तमे खरी निधमां, आगे चूक्या अवसर।
एक लीजे लाहो श्रीवालाजीनो, बीजो हरखे जागूं म्हारे घर।।४८।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे हर्ष और शोक! पहले

तो तुमने अवसर खो दिया, किन्तु अब तुम अखण्ड निधि (प्रियतम) को पाने में लग जाओ। इसका परिणाम यह होगा कि एक तो इस संसार में मुझे प्रियतम की सान्निध्यता का लाभ मिलेगा, तथा दूसरा मैं अपने मूल तन में जाग्रत भी हो जाऊँगी।

हरख कहे हूं सूं करूं, जां धणी न लिए खबर।
सोक कहे जां धणी नव कहे, तो अमे करूं केही पर।।४९।।

यह सुनकर हर्ष कहता है कि जब मेरा धनी जीव ही मुझे सूचित न करे, तो मैं क्या कर सकता हूँ। शोक भी यही बात कहता है कि जब तक मेरा स्वामी जीव मुझसे नहीं कहेगा, तब तक मैं कुछ भी कार्य कैसे कर सकता हूँ।

जोध अमे बंने छऊं बलिया, हवे जोजो अमारी भांत।

धणी तमे देखाड्या अमने, अमे ते ग्रहूं छूं हरकांत।।५०।।

किन्तु हम दोनों ही बलवान योद्धा हैं। अब आप हमारी कार्य-शक्ति देखिए। आपने जब हमें प्रियतम अक्षरातीत की पहचान करा दी है, तो हम हर प्रकार से प्रयास करके धाम धनी के चरणों को अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

मद मत्सर अहंमेव अहंकार, तमे दोड कीधी संसार।

फिट फिट गुण भूंडा एवा बलिया, तमे विछोह पाड्यो मारे आधार।।५१।।

मद, मत्सर, तथा अहम् के व्यक्त रूप अहंकार! तुम संसार के पीछे भागते रहे। इतने बलवान होते हुए भी तुम तीनों गुण मूर्ख हो। तुम्हें धिक्कार है। तुमने मेरे और धनी के मध्य वियोग की स्थिति बनाये रखी।

तमे त्रणे जोधा एक सम थई, कां नव कीधी समी वात।

ज्यारे जीवनजी मल्या जीवने, त्यारे तमे कां न कीधो उलास।।५२।।

तुम तीनों ही योद्धा एक समान हो गये। जब मेरे जीव को धाम धनी मिले, तो तुमने उनके सम्मुख होकर उनसे बातें क्यों नहीं की तथा तुमने मिलन की प्रसन्नता में आनन्द क्यों नहीं मनाया?

हवे रे तमे म्हारे पासे थाओ, मूने वली मल्या म्हारो आधार।

वले जुध करजो बुधे करी, जेम छांटो न लागे संसार।।५३।।

अब तीनों योद्धा मेरे पास आओ। मेरे प्राणवल्लभ मुझे पुनः मिल गये हैं। अब अपनी बुद्धि को आगे करके माया से युद्ध करो, जिससे मेरे जीव पर इस मायावी संसार का नाम मात्र भी प्रभाव न पड़े।

त्रणे जोधा अमे म्हारे जोरावर, चालूं एकी वाट।
वालाजीने ग्रही करी ने, जीवने भेला करी दऊं साथ।।५४।।

तीनों उत्तर देते हैं– हम तीनों योद्धा बहुत शक्तिशाली हैं। हम सबका एक ही मार्ग है। हम यह प्रण करते हैं कि अब धाम धनी के चरणों को ग्रहण कर जीव के साथ उनका मिलन करा देंगे।

हवे एवा जोध सबल तमे बलिया, मल्या मोसूं खोटे भाव।
जोगवाई गई मारे हाथ थी, पण तमे न गया सेहेज सुभाव।।५५।।

रे सहजता एवं स्वभाविकता! तुम तो भयंकर युद्ध करने वाले शक्तिशाली योद्धा हो, किन्तु तुम मुझसे बुरे भावों के साथ ही मिलते रहे हो। मेरे प्रियतम मेरे सामने ही चले गये, किन्तु तुम केवल माया में ही लिप्त रहे। प्रियतम के साथ रहना तुम्हें अच्छा नहीं लगा।

मायाने मलीने रे मूरखो, मोसूं थया तमे कूडा।

फिट फिट भूंडा दुष्ट अभागी, एणी वाते न थया रूडा।।५६।।

रे मूर्खों! तुमने तो माया से मिलकर मुझसे वैर भाव ही रखा। रे पापी, दुष्ट, एवं भाग्यहीन सहज स्वभाव! तुम्हें धिक्कार है। इतना होने पर भी तुम धाम धनी के प्रति अच्छे नहीं बन सके।

सेहेज सुभाव बंने सरखी जोड, मारा जोध सबल तमे ज्वान।

जेहेनी गमां तमे थाओ, ते जीते निरवाण।।५७।।

सहजता और स्वभाविकता! तुम दोनों मेरे एक समान ही शक्तिशाली एवं युवा योद्धा हो। तुम जिस ओर हो जाते हो, निश्चित रूप से उसकी विजय होती है।

हवे तमने हूं खीजी कहूं छूं, मारा सबल थाजो सुजाण।
सेहेज सुभाव करजो वालाजीसूं वालपण, मा माणजो केहेनी आण।।५८।।

अब मैं तुमसे क्रोधपूर्वक यह बात कहती हूँ कि मेरे शक्तिशाली योद्धाओं सहजता और स्वभाविकता! प्रियतम अक्षरातीत की पहचान करो तथा उनसे अटूट प्रेम करो। इसके अतिरिक्त अन्य किसी के कहने (बहकाने) में न आओ।

सेहेज सुभाव बंने अमे बलिया, जो करे कोई कोट उपाय।
जे अमे वात ग्रहूं जोपे करी, ते केणे नव पाछी थाय।।५९।।

सहजता और स्वाभाविकता दोनों उत्तर देते हैं कि हम दोनों बहुत ही बलवान हैं। जिस बात को हम अच्छी प्रकार से ग्रहण कर लेते हैं, उसके विपरीत यदि कोई करोड़ों उपाय भी कर ले, तो भी वह हमें किसी भी

प्रकार से उससे पीछे नहीं हटा सकता।

हवे जोजो तमे जोर अमारो, वालोजी ग्रहूं करी खांत।
पूरो पास दई रंग चोलनो, पाडूं पटोले भांत।।६०।।

अब आप हमारी शक्ति को देखिये। हम दोनों अब धाम धनी को बहुत चाहना से ग्रहण करते हैं। हम दोनों जीव के ऊपर अखण्ड प्रेम का ऐसा लाल रंग चढ़ायेंगे, जैसे कि ओढ़नी पर डाला गया रंग कभी छूटता नहीं है।

ममता तूं मायातणी, निबल थई निरवाण।
फिट फिट भूंडी दुष्ट पापनी, कीधी मुझने घणी हाण।।६१।।

रे मूर्खा, दुष्टा, एवं पापिनी ममता! तुझे धिक्कार है। तू तो केवल माया की ही होकर रह गयी है। निश्चित रूप से तू मेरे आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कराने में कमजोर रही

है, जिसके कारण मुझे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी है।

हवे ममता आव मारा वालाजीमां, बीजो मूक सर्व संसार।
सबल संघातण थाय मुझ पासे, मूने मल्या छे मारो आधार।।६२।।

हे ममता! अब तू केवल मेरे प्राणवल्लभ के ही प्रति केन्द्रित हो जा। इस संसार को पूर्णतया छोड़ दे। तू मेरी शक्तिशालिनी सखी बन जा, क्योंकि अब मुझे प्राण प्रियतम मिल चुके हैं।

हूं संघातण छऊं जो तमारी, तमे लेओ ए निध।
ए निध अलगी थावा न दऊं, करो कारज तमे सिध।।६३।।

ममता कहती है कि निश्चित रूप से मैं आपकी सखी बन जाती हूँ, जिससे कि आप अपने धाम धनी को प्राप्त कर

लें। अब मैं प्रियतम को आपसे अलग नहीं होने दूँगी। आप अपना लक्ष्य पूर्ण कीजिए।

हवे तूंने हूं कहूं रे कलपना, फिट फिट भूंडी अकरमण।
फोकटियाणी फजीत तें कीधां, कांई अमने अति घण।।६४।।

रे मूर्खा, कर्महीना कल्पना! तुझे धिक्कार है। अब मैं तुझे क्या कहूँ? तूने व्यर्थ में ही मेरी बहुत अधिक दुर्दशा करायी है।

हवे करमण था तूं आव कलपना, सेवा मांहें कर विचार।
वालैयो वालाजी मुझने मल्या, लाभ लऊं आवी मांहें संसार।।६५।।

हे कल्पना! अब तू कर्मठ बन जा और प्रियतम की सेवा करने का विचार कर। मुझे प्राणप्रियतम श्री राज जी मिले। मैं उन्हें अपने हृदय में बसाकर संसार में आने का

लाभ लेना चाहती हूँ।

कहे कलपना ए काम म्हारो, हूं करूं विध विधना विचार।
अंग एके नव राखूं पाछो, सेवानी सेवा दाखूं सार।।६६।।

कल्पना कहती है कि अब यह मेरा काम है। मैं तो तरह-तरह के विचार करती ही रहती हूँ। मैं सेवा के कार्य में अपने एक भी अंग को पीछे नहीं रखूँगी तथा सेवा के सार तत्व को दर्शाऊँगी।

वेर राग बंने जोध जुजवा, साम सामा सिरदार।
वेर कीधूं तमे वल्लभजीसूं, राग कीधो संसार।।६७।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि वैर और राग! तुम दोनों महान योद्धा हो और एक-दूसरे के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी भी हो। अब तक तो तुमने प्रियतम से वैर और संसार से राग

किया है।

तमे मोसूं भूंडाई अति कीधी, तमने दऊं कटारी घाय।
एवो अवसर आव्यो मारा हाथमां, पण तमे भूलव्यो मूने दाय।।६८।।

तुमने मुझसे बहुत अधिक कपटपूर्ण व्यवहार किया है। मैं तुम्हारे ऊपर कटारी से प्रहार करूँगी। पहले मेरे हाथ में प्रियतम को रिझाने का बहुत ही सुन्दर अवसर आया था, किन्तु तुमने उसे गँवा दिया।

म्हारे मंडाण छे तम ऊपर, तमे कां थया मोसूं एम।
हवे हुंकारी आवो अम पासे, हूं लाभ लऊं वालाजीनो जेम।।६९।।

मेरी आशा तुम्हारे ऊपर केन्द्रित थी, किन्तु तुमने मेरे प्रति इस प्रकार का व्यवहार क्यों किया? अब मेरे सहयोगी के रूप में ताल ठोंककर (हुँकार भरकर) मेरे

पास आओ, जिससे मैं अपने आराध्य को रिझाने का लाभ ले सकूँ।

जोर करो तमे जोध जुजवा, राग आवो मांहें आधार।
वेर विधे विधे कठणाईसूं, जई बेसो मांहें संसार।।७०।।

अब तुम दोनों योद्धा मेरे लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिये प्रयास करो। हे राग! तुम प्रियतम के प्रति केन्द्रित हो जाओ। हे वैर! तुम तरह-तरह की कठिनाइयों को सहन करते हुए केवल संसार के लिये ही रहो।

वेर कहे स्यो वांक अमारो, जां धणी पोते घर नव राखे।
अमें आफरवा केम करी ग्रहूं, जां जीव चींधी नव दाखे।।७१।।

वैर कहता है कि जब शरीर रूपी घर का स्वामी जीव ही इसकी देखभाल न करे, तो इसमें मेरा क्या दोष है। जब

जीव हमें धनी के प्रति कुछ करने के लिये संकेत ही न करे, तो मैं केवल अनुमान के सहारे क्या कर सकता हूँ।

राग कहे हूं रूडी पेरे, हलमल करूं आधार।
जीव धणी वचे अंतर टालूं, तो वखाणजो आवार।।७२।।

राग कहता है कि अब मैं जीव को प्रियतम के प्रेम में एकरस कर दूँगा। यदि मैं इस बार धाम धनी तथा जीव के मध्य का मायावी आवरण (पर्दा) हटा दूँ, तो आप मेरी प्रशंसा कीजिएगा।

हवे वेर कहे मारी विध जोजो, केवी कठणाई करूं संसार।
कोई गुण जो जीवसूं जोर करे, तो उतरी वढूं तरवार।।७३।।

वैर कहता है कि अब आप मेरी वास्तविकता को देखिये कि मैं इस संसार के प्रति कितनी कठोरता का व्यवहार

करता हूँ। माया का कोई भी गुण यदि जीव के ऊपर अपना प्रभाव डालने का प्रयास करेगा, तो उसे मैं तलवार से काट डालूँगा (नष्ट कर दूँगा)।

फिट फिट भूंडा स्वाद कहूं तूंने, मूने मल्याता मीठा आधार।
एह स्वाद मेलीने रे सोखिया, तूं स्वाद थयो संसार।।७४।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं– रे मूर्ख स्वाद! तुझे धिक्कार है। मैं तुझे क्या कहूँ? मुझे तो माधुर्यता के सागर धाम धनी मिले थे, किन्तु तू ऐसा निर्लज्ज है कि उनका स्वाद (रस) लेना छोड़कर तू संसार का ही स्वाद लेने में लगा रहा।

हवे रे स्वाद तूं थाय सुहागी, जोजो वल्लभनो मिठास।
ज्यारे तूं आव्यो ए मांहें, त्यारे केहिए न कर बीजी आस।।७५।।

रे स्वाद! अब तू सुहागी बन जा और प्रियतम की मिठास को देख। जब तू उनके हृदय की माधुर्यता का रस लेने लगेगा, तब तुझे अन्य किसी की चाहना नहीं रह जायेगी।

स्वाद कहे ज्यारे ए सुख लाध्यो, त्यारे अभख थयो मोहजल।
उवल हतो ते टली गयो, हवे सवलो आव्यो बल।।७६।।

स्वाद कहता है कि जब से मैंने प्रियतम की माधुर्यता का रस प्राप्त किया है, तब से यह मायावी जगत ग्रहण करने योग्य लगता ही नहीं है। मेरे द्वारा अपनाया गया मिथ्या मार्ग हट गया है और अब मेरे अन्दर सत्य का बल आ गया है।

हवे रे कहूं तूंने गुणना उतार, तें वल्लभसूं कीधो ब्रोध।
में तूंने जाण्यो हतो सुहागी, फिट फिट कमल फेरण क्रोध।।७७।।

हृदय को उल्टी दिशा में ले चलने वाले क्रोध! तुझे धिक्कार है। तू तो सभी गुणों में नीच है। अब मैं तुमसे यह सत्य बात कहती हूँ कि तूने प्रियतम से ही विरोध किया। मैं तो तुम्हें सुहागी समझती थी।

क्रोध में तूंने जाण्यो पोतानो, पण नव सिध्यूं तूं माहेंथी काम।
फिट फिट भूंडा दुष्ट अभागी, रही मारा हैडा मांहें हांम।।७८।।

रे मूर्ख, दुष्ट, एवं भाग्यहीन क्रोध! तुझे धिक्कार है। मैंने तो तुझे अपना समझा था, किन्तु तूने मुझे अपना लक्ष्य पूरा करने नहीं दिया। उसके पूर्ण न होने की पीड़ा (टीस) अभी भी मेरे हृदय में बनी हुई है।

हवे क्रोध कमल फेरी नाख तूं ऊंधो, ऊंधो फेरजे कमल संसारे।
एहवो अकरमी कां थई बैठो, तेम कर जेम सहु को संभारे।।७९।।

रे क्रोध! जिस प्रकार तूने मेरे हृदय–कमल को संसार की ओर (धनी से उल्टा) मोड़ रखा था, उसी प्रकार अब तू इसे संसार से विपरीत करके धनी की ओर मोड़ दे। तू अभी तक इस प्रकार निष्क्रिय होकर क्यों बैठा हुआ है? तू कुछ ऐसा कर कि हर कोई तुझे याद करे।

क्रोध कहे हूं घणुवे जोरावर, पण धणी विना करूं हूं केम।
हवे जो कोई गुण जीवने चंपावे, तो त्यारे तमे कहेजो मूने एम।।८०।।

क्रोध कहता है कि मैं बहुत अधिक शक्तिशाली हूँ, किन्तु जब तक मेरा स्वामी जीव ही न कहे, तब तक मैं क्या कर सकता हूँ। अब यदि माया का कोई भी गुण जीव को दबाता है, तो आप मुझे बताना।

हवेने कहूं तूने चाक चकरडा, तूं चढी बेठो जीवने माथे।
आपोपूं नव ओलखया अभागी, फोकट फेरव्यो जीव निघाते।।८१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि चाक की तरह घूमने वाले चंचल मन! मैं तुमसे यह सत्य कहती हूँ कि तू जीव के शिर पर चढ़कर बैठा हुआ है, अर्थात् जीव के ऊपर तेरा आधिपत्य बना हुआ है। किन्तु तेरा यह दुर्भाग्य है कि तू अभी भी अपने को नहीं जान पाया। निश्चित रूप से तू जीव को माया में व्यर्थ ही भटकाता रहा है।

अंध एवो कां थयो रे अभागी, तें नव सुण्यो आटलो पुकार।
फिट फिट भूंडा फेर न राख्यो, ज्यारे मलिया मूने आधार।।८२।।

रे मूर्ख, भाग्यहीन मन! तुझे धिक्कार है। तू इस प्रकार अन्धा कैसे हो गया? जब मेरे प्राणधन अक्षरातीत मिले, उस समय भी तूने व्यर्थ में घूमना बन्द नहीं किया और

उनकी इतनी अमृतमयी पुकार को भी अनसुना सा कर दिया।

मन समरथ सबल तूं बलियो, तारा वेगनो कीहो कहूं विस्तार।
सूझ सबल मांहें तूं फरतो, आडो ऊभो द्रोड अपार।।८३।।

रे मन! तुम्हारे अन्दर प्रत्येक प्रकार के बल का सामर्थ्य है। तू बलवान है। तुम्हारा तीव्र वेग का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ। विवेक और बल में तू घूमता रहता है। सामने खड़ी दीवार या पर्वत आदि पर भी तू अनन्त वेग से गमन करता है।

हवे तूं मांहें काम म्हारे छे अति घणो, जोसूं तारो जोर मेवार।
पचवीस पख मांहें तूं फरजे, रखे अधखिण रहे लगार।।८४।।

अब मुझे तुमसे बहुत ही महत्वपूर्ण काम लेना है। देखती

हूँ, तुम्हारी मित्रता की शक्ति कैसी है। रे मन! अब तू आधे क्षण भी रुके बिना परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूमता रह।

संकल्प विकल्प छे तूं माहीं, ते तूं कर सेवा नी।
मन उमंग आणे तूं अति घणो, श्री धाम धणी मलवा नी।।८५।।

तुम्हारी प्रवृत्ति संकल्प और विकल्प की है। इसलिये तू प्राणेश्वर अक्षरातीत की सेवा कर। रे मन! अब तू प्रियतम से मिलने के लिये अपने अन्दर अत्यधिक उमंग भर ले।

मन कहे म्हारी वात छे मोटी, अने सकल विध हूं जाणू।
गजा पखे चढी बेसूं माथें, जीवने जोपे वस आणू।।८६।।

मन कहता है कि मेरी महत्ता बहुत अधिक है और मैं सारी वास्तविकता को जानता हूँ। मैं बुद्धि के सहारे जीव

के शिर पर चढ़ जाता हूँ और उसे अपने वश में कर लेता हूँ।

विशेष– बुद्धि के ऊपर रज और तम की अधिकता होते ही चित्त में वैसे ही संस्कार प्रकट हो जाते हैं, जिनके अनुसार जीव संकल्प–विकल्प करता है और कार्य को सम्पादित करता है। उपरोक्त चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

ज्यारे जीव पोते जाग्रत न थाय, त्यारे करूं केम अमे।
जोर अमारूं त्यारे चाले, ज्यारे सामा जागी बेसो तमे।।८७।।

मन कहता है कि जब तक स्वयं जीव जाग्रत न हो, तब तक मैं क्या करूँ? मेरी शक्ति तो तभी कार्य करेगी, जब पहले आप (आत्मा) स्वयं जाग्रत हो जायें, जिससे जीव भी जाग्रत होकर मुझे सत्य की ओर निर्देशित करे।

हवे पेर जोजो तमे म्हारी, करूं म्हारा बलनो विस्तार।
निध लईने दऊं ततखिण, तो केहेजो गुण सिरदार।।८८।।

अब आप मेरी वास्तविकता को देखिये। अब मैं अपनी शक्ति को दर्शाता हूँ। यदि मैं परमधाम की अखण्ड निधि (धाम धनी) को आपको क्षण भर में प्राप्त करा दूँ, तो आप मुझे सभी गुणों में प्रमुख समझना।

कोई जो केलवी जाणे अमने, तो फल लई दऊं तत्काल।
सेवानी सनंधो ते देखाडूं, जेणे धणी न थाय अलगा कोई काल।।८९।।

यदि कोई मेरी गरिमा समझता है अर्थात् मेरी शक्ति का सही उपयोग करता है, तो मैं उसको तत्काल फल देता हूँ (अन्तर्दृष्टि को परमधाम के अन्दर कर देता हूँ)। इसके अतिरिक्त, मैं उसके मन में सेवा की इस प्रकार की भावना भर देता हूँ कि प्रियतम से वह किसी भी समय

दूर नहीं होता।

भरम भ्रांत कीधी तमे भूंडी, एम न करे बीजो कोए।
तारतम अजवाले वालोजी ओलख्या, तमे आडा फरी वल्या तोहे।।९०।।

श्री मिहिरराज जी का जीव कहता है– भ्रम और भ्रान्ति! तुमने तो ऐसी मूर्खता का कार्य किया है, जो कोई भी नहीं कर सकता। तारतम ज्ञान के उजाले में धाम धनी की पहचान होती है, किन्तु तुमने मुझे चारों ओर से घेरकर आवरण (पर्दा) कर दिया।

जो आकार तमारे होत रे अभागी, तो कटका करूं तरवारे।
पींजी पींजी पुरजा करी, वली वली काढूं हेठल धारे।।९१।।

रे भाग्यहीनों भ्रम और भ्रान्ति! यदि तुम्हारा कोई दृश्यमान शरीर होता, तो मैं तलवार से उसे काट डालता

तथा तलवार की उल्टी धार से बार–बार छोटे–छोटे टुकड़े करके फेंक देता।

हवे जोपे थईने जाओ संसार मांहें, ए छे तेवा थाओ तमे।
जेम अजवाले श्री वालोजीने ओलखी, एमां मूल जोत देखूं जेम अमे।।१२।।

अब तुम दोनों पूर्ण रूप से संसार में चले जाओ और जैसा यह संसार है, वैसे ही तुम भी हो जाओ। इसका परिणाम यह होगा कि जिस तारतम ज्ञान के उजाले में मैं प्रियतम की पहचान करूँगी, उसी में मैं अपने मूल स्वरूप को भी जान जाऊँगी।

भरम भ्रांत कहे सांभलो जीवजी, अमने मारो तरवारो।
कीहे ठिकाणे निद्रा करो, ते आपोपूं कां न संभारो।।१३।।

भ्रम और भ्रान्ति कहते हैं कि हे जीव! आप हमें तो

तलवार से मारने के लिये कह रहे हैं, किन्तु इस बात पर आप कभी भी विचार क्यों नहीं करते कि आज दिन तक आप कहाँ सो रहे थे? आप अपने को क्यों नहीं सम्भालते हैं?

जेहेनो धणी पोते निध पामे, ते केम सुए करारे।
आप पोते खबर नव राखे, अने फोकट अमने मारे।।९४।।

जब शरीर के स्वामी जीव को अपना प्रियतम मिल जाये, तो वह भला इस संसार में इतनी शान्ति के साथ कैसे सो सकता है? आप को स्वयं अपनी सुधि है नहीं और व्यर्थ में मुझे मारने के लिये धमकाते हैं।

ज्यारे तमे जाग्या जोरावर, त्यारे अमे जाऊं छूं संसार।
भले मल्या धणीजी तमने, हवे करो अजवालूं अपार।।९५।।

हे शक्तिशाली जीव! जब आप जाग्रत हो गये हैं, तो हम दोनों संसार में वापस चले जाते हैं। यह तो बहुत अच्छा हुआ कि आपको धाम धनी मिल गये हैं। अब तारतम ज्ञान की अनन्त ज्योति को संसार में फैलाइये।

फिट फिट लज्या तूं थई लोकिक नी, बीजा बांध्या कुटमसों करम।
धाम धणी मूने तेडवा आव्या, तिहां तूने न आवी सरम।।९६।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे लज्जा! तू तो केवल संसार की ही होकर रह गयी है। तूने मात्र पारिवारिक सम्बन्धों को निभाना ही अपना ध्येय बना लिया है। साक्षात् धाम धनी मुझे परमधाम ले जाने के लिये आये हुए हैं, इतना होते हुए भी तुझे लज्जा नहीं आ रही है।

दुष्ट पापनी तें सूं कीधूं, आगल करीस हूं केम।

केही पेरे हूं मोंहों उपाडीस, मारा धणी आगल न आवी सरम।।९७।।

हे दुष्टा, पापिनी लज्जा! यह तूने क्या अनर्थ कर डाला है? भविष्य में भी न जाने तू और क्या करेगी? अब मैं परमधाम में जाग्रत होने पर अपने प्राणेश्वर के सम्मुख अपना मुख कैसे ऊपर करूँगी? क्या अपनी इस भूल के लिये मुझे लज्जित नहीं होना पड़ेगा?

हवे रे सरमडी कहूं हूं तूने, तूं जोजे मूल सगाई।

आगे अवसर मोटो चूकी, हवे फरी आवी जोगवाई।।९८।।

हे लज्जा! मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। तू यह पहचान कर ले कि प्रियतम से मेरा मूल सम्बन्ध क्या है। पहले तूने धाम धनी को रिझाने का बहुत बड़ा अवसर खो दिया था, अब वही अवसर पुनः प्राप्त हो गया है।

लज्या कहे हूं घणुए भूली, हवे वालाजीसूं मुख केम मेलूं।
दुस्तर ऊपर आगज उठो, जेणे भूलवी मूने पेहेलूं।।९९।।

लज्जा कहती है कि मुझसे बहुत अधिक भूल हुई है। अब मैं प्रियतम से मुख कैसे मोड़ सकती हूँ। इस माया को आग लग जाये, जिसने पहले मुझे भुला दिया था।

फिट फिट भूंडी आसा तूं थई सागरनी, धणी मेल्या विसारी।
जीवने सुफल जे हाथ लागूं, भूंडी ते तूं बेठी हारी।।१००।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि रे मूर्खा आशा! तुझे धिक्कार है। तू तो अब मात्र माया की ही होकर रह गयी है। तुझे धाम धनी मिले थे, किन्तु तुमने उन्हें भुला दिया। रे मूर्खा! मेरे जीव को धाम धनी के रूप में अखण्ड फल प्राप्त हुआ था, किन्तु तूने उन्हें खो दिया।

एह फल तें मूकी करीने, नीच वस्त कां लीधी।
ए दोष सर्वे जीवने बेठो, तूंने सिखामण नव दीधी।।१०१।।

प्रियतम अक्षरातीत को छोड़कर तूने नीच माया को क्यों ग्रहण किया? इस सारे दोष का अपराधी जीव को ही होना पड़ा। तूने उचित समय पर उसे जरा भी शिक्षा नहीं दी।

हवे आस धणीनी घणूं मोटी, थाईस हूं विचारी।
मणा नहीं राखुं कोई आसडी, हवे लेजो सुफल संभारी।।१०२।।

अब आशा कहती है कि मैं विचारपूर्वक यह बात कह रही हूँ कि मात्र धनी की आशा ही अब मेरे लिये सर्वोपरि रहेगी। इस तुच्छ माया की मैं कोई भी आशा नहीं करूँगी। अब आप अपने प्राणप्रियतम को आत्मसात् कर लीजिए।

अचेत गुण तूं आव्यो अकरमी, धाख थावा नव दीधी।

जीवने जे निध हाथ लागी, भूंडा तें ते जुई कीधी।।१०३।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि जीव को निष्क्रिय कर देने वाले अचेत गुण! तू मूर्ख है। मेरे जीव को प्रियतम के रूप में अखण्ड निधि प्राप्त हुई थी, किन्तु तूने उन्हें मुझसे अलग कर दिया। मेरे मन में उन्हें रिझाने की जो इच्छा थी, उसे तुमने पूर्ण नहीं होने दिया।

ए निधनी केही वात करूं, भूंडा फिट फिट गुण अचेत।

तुझ बेठा तिवरता न आवी, नहीं तो ए निध हूं लेत।।१०४।।

रे मूर्ख अचेत गुण! तुझे धिक्कार है। प्रियतम को न रिझा पाने की पीड़ा को मैं कैसे कहूँ? तुम्हारे कारण ही मेरे अन्दर तीव्रता नहीं आ पायी, अन्यथा प्रियतम को मैं अपने धाम-हृदय में बसा लेती।

अचेत कहे हूं सागरनो, ते जाऊं छूं सागर मांहें।

निध तमारी तमें पामों, ग्रहूं तिवरता बांहें।।१०५।।

अचेत कहता है कि मैं तो मोह सागर से ही उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये अब उसी में जा रहा हूँ। आप अपने अन्दर (बाँहों में) तीव्रता का गुण धारण कर अपनी अखण्ड निधि (प्रियतम) को प्राप्त कर लीजिए।

विशेष– उपरोक्त चौपाई के चौथे चरण "ग्रहूं" शब्द के स्थान पर "ग्रहे" शब्द रखना उपयुक्त होगा।

फिट फिट भूंडा गुण कहूं तिवरता, मूने मल्या ता धाम धनी।

एवो अवसर कोई निगमे, तें कीधी मोसूं भूंडी घणी।।१०६।।

रे मूर्ख तीव्रता गुण! तूझे धिक्कार है। मुझे धाम धनी पहले मिले थे, किन्तु तुमने ऐसा बुरा व्यवहार किया कि मैं उन्हें पा नहीं सकी। भला ऐसे सुनहरे अवसर को भी

कोई गँवाता है।

वली अवसर आव्यो छे हाथमां, हवे तिवरता तू संभारे।
रात दिवस तूं जीवने दोडावे, एक पाव पल मा विसारे।।१०७।।

रे तीव्रता! अब तू इस बात को याद कर कि धाम धनी को पा लेने का पुनः अवसर प्राप्त हो गया है। प्रियतम के प्रेम की राह पर एक पल भी खोये बिना जीव को निरन्तर (दिन-रात) ही लगाये रख।

तिवरता कहे हूं बलवंती, जीवने दऊं हूं जोर।
वस करी आपूं धणी तमारो, करूं पाधरा दोर।।१०८।।

तीव्रता कहती है कि मेरे पास बहुत शक्ति है, मैं जीव को शक्ति देती हूँ। मैं आपके धाम धनी को पाने के मार्ग पर बिना रुके (निर्बाध गति से) सीधी दौड़ लगाऊँगी तथा

उन्हें वश में करके आपको सौंप दूँगी।

सील संतोख हवे आवजो ढूकडा, बांधो सागर आडी पाल।
गुण सघला केहेसो तेम करसे, नथी कांई बीजो जंजाल।।१०९।।

हे शील और सन्तोष! तुम दोनों मेरे पास आओ और इस मोह सागर के चारों ओर बाँध बना दो। इसका परिणाम यह होगा कि सभी गुण वही करेंगे, जैसा तुम कहोगे। उस अवस्था में कोई दूसरा मायावी बन्धन जीव को दुःखी नहीं करेगा।

सील कहे संतोख सुनो, आपणने कीधां छे पाल।
परवत तांणें पूर सागरना, मांहें वेहेवट छे निताल।।११०।।

शील कहता है कि हे सन्तोष! मेरी बात सुनो। हमें इस मोह सागर के चारों ओर बाँध अवश्य बनाना है, किन्तु

इसकी तीक्ष्ण लहरों का बहाव इतना तेज है कि इसमें बड़े–बड़े पर्वत (ज्ञानी, तपस्वी, भक्त आदि) भी बह जाया करते हैं।

आमलिया अलेखे दीसे, लेहेरों मेर समान।
मछ जोरावर मांहें छे मोटा, पाल करवी एणे ठाम।।१११।।

इसके जल में विषय–सुख की अनन्त भँवरें हैं। सुमेरु पर्वत के समान ऊँची–ऊँची लहरें दिखायी देती हैं। इसके अन्दर काम, क्रोध लोभ, मोह आदि बड़े–बड़े मगरमच्छ रहते हैं। ऐसे भवसागर के चारों ओर हमें बाँध बनाना है।

हवे बांधिए पाल खरो करी पाइयो, जेम खसे नहीं लगार।
पछे जल पोते ज्यारे ठाम ग्रहसे, त्यारे सामूं सोभा थाय अपार।।११२।।

अब हमें मजबूत नींव के साथ बाँध बनाना है, जो किसी भी स्थिति में थोड़ा भी टूटे नहीं। माया का जल जब इससे टकराने के पश्चात् वापस चला जायेगा, तो हमारी अपार शोभा होगी।

हवे ए पाल अमे बांधसूं जीवजी, पण तमे थाओ तत्पर।
आ अवसर बीजी वार नहीं आवे, सोभा साथ मांहें ल्यो घर।।११३।।

हे जीव! अब हम दोनों इस भवसागर के चारों ओर सुरक्षा कवच के रूप में बाँध तो अवश्य बना देंगे, किन्तु आपको धनी के प्रेम मार्ग में तत्पर रहना होगा। यह अवसर आपको पुनः मिलने वाला नहीं है। अब आप परात्म में जाग्रत होने पर सुन्दरसाथ के मध्य शोभा लेने के लिये तैयार हो जाइये।

हवे जाग जीव तूं जोपे बलिया, तूने केही दऊं गाल।

में तूने घणुए फिटकारयो, पण चूक्यो अवसर निनाल।।११४।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे बलवान् जीव! अब तू अच्छी तरह से जाग्रत हो जा। मैं तुझे क्या गाली दूँ? मैंने तुझे पहले बहुत अधिक फटकार लगायी, फिर भी तूने धनी का साथ छोड़कर स्वर्णिम अवसर खो दिया।

कठणाई में जोई जीव तारी, अति घणो निखर अपार।

धणी धमी धमीने थाक्या, पण नेठ नव गलियो निरधार।।११५।।

हे जीव! मैंने तुम्हारे हृदय की कठोरता को देखा है। यह तो निश्चित है कि तू बहुत ही कठोर है। प्रियतम तुझे समझा-समझाकर थक गये, किन्तु तू नाम मात्र भी नहीं पिघला।

प्रकरण ।।२०।। चौपाई ।।५२५।।

जीवनो प्रबोध

जीव को प्रबोधित करना

सांभल जीव कहुं वृतांत, तूने एक दऊं द्रष्टांत।
ते तुं सांभल एके चित, तूने कहूं छूं करीने हित।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे जीव! मैं श्रीमद्भागवत् का एक घटनाक्रम सुनाती हूँ, उसे तुम सुनो। इस दृष्टान्त के माध्यम से तुम्हारी भलाई के लिये ही मैं यह सीख दे रही हूँ। तुम ध्यानपूर्वक इसे सुनो।

परीछिते एम पूछ्यो प्रश्न, सुकजी मूने कहो वचन।
चौद भवन मांहें मोटो जेह, मुझने उतर आपो तेह।।२।।

राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से एक प्रश्न पूछा कि

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में सबमें बड़ा (महान) कौन है? आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।

त्यारे सुकजी एम बोल्या प्रमाण, ग्रहजो वचन उत्तम करी जांण।
चौद भवनमां मोटो तेह, मोटी मतनो धणी छे जेह।।३।।

यह सुनकर शुकदेव जी ने इस प्रकार उत्तर दिया कि परीक्षित! तुम मेरे कथनों को अति उत्तम जानकर ग्रहण करो। चौदह लोकों के इस संसार में वही बड़ा है, जिसकी बुद्धि बड़ी है।

वली परीछितें पूछ्यूं एम, जे मोटी मत ते जाणिए केम।
मोटी मतनो कहूं विचार, ग्रहजो परीछित जाणी सार।।४।।

पुनः परीक्षित ने इस प्रकार पूछा कि जो बड़ी बुद्धि वाला है, उसे कैसे जाना जाये? शुकदेव जी कहते हैं–

परीक्षित! मैं बड़ी बुद्धि के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करता हूँ। उसे तुम सबका सार तत्व समझकर ग्रहण करना।

मोटी मत ते कहिए एम, जेहेना जीवने वल्लभ श्री कृष्ण।
मतनी मततां ए छे सार, वली बीजी मतनो कहूं विचार।।५।।

बड़ी बुद्धि वाला उसे कहते हैं, जो श्री कृष्ण जी को अपने जीव का प्रियतम मानता है। सभी मतों का यही सार तत्व है। अब मैं दूसरी बुद्धि के सम्बन्ध में अपने विचार बताता हूँ।

एह विना जे बीजी मत, ते तूं सर्वे जाणे कुमत।
कुमत ते केही केहेवाय, नीछारा थी नीची थाय।।६।।

श्री कृष्ण जी से प्रेम करने वाली बड़ी बुद्धि के अतिरिक्त

अन्य जितनी भी बुद्धियाँ हैं, उन्हें तुम "कुमति" के रूप में ही जानो। प्रश्न होता है कि कुमति किसे कहते हैं? जो नीच से भी नीच बुद्धि है, वही कुमति कहलाती है।

एवडो तेहेनो स्यो वृतांत, तेहेनुं कांइक कहूं द्रष्टांत।
सांभल परीछित कहूं वली तेह, एक मोटी मतनो धणी छे जेह।।७।।

परीक्षित पुनः पूछते हैं कि इस प्रकार उस कुमति की क्या वास्तविकता है? शुकदेव जी कहते हैं कि मैं दृष्टान्त द्वारा उसके विषय में थोड़ा सा बताता हूँ। परीक्षित! मैं उस बड़ी बुद्धि तथा उसके स्वामी के सम्बन्ध में पुनः यथार्थता को दर्शाता हूँ।

मोटी मत वल्लभ धणी करे, ते भवसागर खिण मांहें तरे।
तेहेने आडो न आवे संसार, ते नेहेचल सुख पामे करार।।८।।

बड़ी बुद्धि का स्वामी अपने एकमात्र जीव के प्रियतम श्री कृष्ण जी से प्रेम करता है और क्षण भर में इस भवसागर से पार हो जाता है। उसके मार्ग में यह संसार बाधक नहीं बनता। वह बेहद मण्डल के अखण्ड सुख का उपभोग करता है।

ओली कुमत कहिए तेणे सूं थाए, अंध कूप पड्यो पचे मांहें।
ए सुकजीना कहया वचन, जीव विमासी जुए जोपे मन।।९।।

इसके अतिरिक्त, जिसे कुमति कहा जाता है, उससे क्या होता है कि वह इस भवसागर रूपी अन्धकारमय कुँए में पड़ा दुःख भोगता रहता है। ये वचन शुकदेव जी द्वारा कहे गये हैं। हे जीव! तू अपने मन में इस सम्बन्ध में विचार करके देख।

विमासणनी नहीं ए वात, तारो निरमाण बांध्यो स्वांसो स्वांस।

तेहेनो पण नथी विस्वास, जे केटला तूं लइस ए स्वांस।।१०।।

हे जीव! मात्र विचार करने से ही बात बनने वाली नहीं है, अर्थात् बिना आचरण के लक्ष्य पूरा होने वाला नहीं है। तुम्हारा जीवन एक-एक साँस से बँधा हुआ है। उसका भी निश्चित विश्वास नहीं है कि तू कितनी साँसे लेने वाला है।

एक खिणमां कई वार आवे जाय, त्यारे कात्यूं वीछ्यूं कपासिया थाय।

ते माटे सुणजे रे जीव सही, मोटी मत में तुझने कही।।११।।

एक ही पल में कई बार साँस आती-जाती है। जिस प्रकार कपास के बीज की सार्थकता रुई उत्पन्न करके सूत कातने में है, उसी प्रकार इस जीव की सार्थकता भी ज्ञान को आत्मसात् कर प्रेम का सूत कातने में है।

इसलिये हे जीव! मेरी बात सुन। मैंने तुम्हें श्रेष्ठ बुद्धि की पहचान करा दी है।

जे जोगवाई छे तारे हाथ, ते आंणी जिभ्याए केही कहूं वात।
आटला दिवस ते जाण्यूं नव जाण, मूरख करे तेम कीधुं अजांण।।१२।।

रे जीव! तुम्हें यह जो मानव तन मिला है, उसकी महत्ता का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। आज दिन तक भी तू इसकी उपयोगिता को नहीं जान सका। जैसे मूर्ख लोग किया करते हैं, वैसे ही तू अज्ञानता में माया की उलझनों में भटकता रहा।

हवे ए वचन विचारजे रही, सुकजी पाय साख पुरावी सही।
हवे एक वचन कहूं सुणजे जीव सही, वालाजीना चरण तूं रेहे जे ग्रही।।१३।।

अब तू इन वचनों का विचार कर। इस सम्बन्ध में मैंने

तुम्हें शुकदेव जी के कथनों की साक्षी भी दी है। रे जीव! अब मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, उसे अच्छी तरह से सुन। तू हमेशा प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणों को पकड़े रह।

सुणजे वली धणीना वचन, वाणी कहे ते ग्रहजे मन।
रखे पाणीवल विहिलो थाय, आवो नहीं लाभे रे दाय।।१४।।

पुनः धाम धनी द्वारा तारतम वाणी में कहे गये अमृतमयी वचनों को सुन तथा उन्हें अपने मन में ग्रहण कर। पल भर के लिये भी उनसे अलग न हो। पुनः तुझे ऐसा स्वर्णिम अवसर मिलने वाला नहीं है।

भरम भाजवा कहया वचन, मोटीमत ग्रहे जेम थाय धन धन।
हवे ओलखजे जोपे करी, भरम भ्रांत मूके परहरी।।१५।।

रे जीव! तुम्हारे संशय को दूर करने के लिये ही मैंने ये बातें कही हैं। तू प्रियतम से प्रेम उत्पन्न कराने वाली महान बुद्धि को ग्रहण कर, जिससे तू धन्य-धन्य हो जाये। अब अच्छी तरह से अपने आराध्य सर्वेश्वर की पहचान कर ले और माया से उत्पन्न होने वाली भ्रम-भ्रान्ति को पूर्णतया छोड़ दे।

मुख मांहेंथी वचन कहया तो सूं, जो हजी न छेक निकलियो तूं।
आगे किव मांडी छे अनेक, तें पण कांइक कीधी विसेक।।१६।।

रे जीव! यदि तूने अपने मुख से उपरोक्त वचन कह ही दिया, तो मात्र कहने से क्या लाभ है, जब तक कि तू माया से पूर्ण रूप से नहीं निकल जाता। इसके पहले भी अनेक विद्वानों ने स्वयं को जाग्रत करने के सम्बन्ध में काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। तुमने उनकी अपेक्षा कुछ

विशेष अच्छी रचना कर दी है।

पण सांचो तो जो समझे जीव, तो वाणी भले मुखथी कही पीउ।
ए वाणी नथी कांई किवना जेम, मारा जीवने खीजवा कहया में एम।।१७।।

मेरे जीव! भले ही धाम धनी ने यह तारतम वाणी तुम्हारे तन से कही है, किन्तु यथार्थ रूप में तू सच्चा तभी कहा जा सकता है, जब आत्म-जाग्रति की इस यथार्थता को तू समझ जाये। तारतम वाणी को अन्य काव्य-ग्रन्थों की तरह नहीं समझना चाहिये। माया की नींद में सोये रहने के कारण ही मेरे जीव को फटकार कर जगाने के लिये (परोक्ष में सुन्दरसाथ को) धाम धनी ने इस प्रकार की बातें (मेरे तन से) कही हैं।

जीव छे मारो अति सुजाण, ते धणीना चरण नहीं मूके निरवाण।
पण सांचो तो जो करे प्रकास, जोत जई लागी आकास।।१८।।

मेरे जीव! मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ कि तू बहुत ज्ञानवान है और किसी भी स्थिति में प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ेगा। किन्तु तू तभी धनी का सच्चा प्रेमी कहलायेगा, जब श्रीमुखवाणी का इतना प्रसार कर दे कि धरती से लेकर आकाश तक तारतम वाणी का ही प्रकाश दिखायी दे अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी फैल जाये।

आंणी जोगवाईए तो एम थाय, चौद भवनमां जोत न समाय।
एम अमें न करूं तो बीजो कोण करे, धणी अमारे काजे बीजी दाण देह धरे।।१९।।

इस समय तो ऐसा होना चाहिए कि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ही तारतम वाणी का प्रकाश फैला हो।

यह कार्य यदि मैं न करूँ, तो भला और कौन करेगा। धाम धनी ने तो हमारे लिये ही यह दूसरा (श्री मिहिरराज जी का) तन धारण किया है।

एणी केमे नव थाय सरम, एणी द्रष्टे केम न थाय नरम।
जीव छे मारो खरी वस्त, ते कां न करे अजवालूं अत।।२०।।

अपने कर्त्तव्य का बोध हो जाने पर भी उसे क्रियान्वित न कर पाने से मेरे जीव को लज्जा क्यों नहीं आ रही है? इसकी दृष्टि में कोमलता का अभाव क्यों है? वैसे तो मेरा जीव सत्य का अनुसरण करने वाला है। ऐसी अवस्था में यह भला तारतम वाणी के प्रकाश को सर्वत्र क्यों नहीं फैलायेगा?

श्री सुंदरबाईने चरणज थकी, वली मोसूं गुण कीधां बाई गुणवंती।
मारे माथे दया रतन बाईनी घणी, एणी कृपाए जोपे ओलखीस धणी।।२१।।

मेरे ऊपर सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्री श्यामा जी) के चरण-कमल की छत्रछाया है। गोवर्धन भ्राता जी का भी मेरे ऊपर बहुत उपकार है। बिहारी जी की भी मेरे प्रति बहुत अधिक दया है। इनकी कृपा से ही मुझे हब्शा में जाना पड़ा, जहाँ मुझे अपने प्राणेश्वर की पहचान हुई।

एहेनी दयाए जोत एम करीस, चरण धणीना चितमां धरीस।
इंद्रावती चरणे लागे आधार, सुफल फेरो करूं आवार।।२२।।

उपरोक्त ब्रह्मात्माओं की दया से प्रियतम के चरणों को अपने हृदय में धारण कर, मैं तारतम ज्ञान की ज्योति को सर्वत्र फैलाऊँगी। अपने जीवन के आधार प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में प्रणाम करती हुई श्री इन्द्रावती

जी कहती हैं कि अब मैं अपनी इस प्रकार की सेवा से इस जागनी ब्रह्माण्ड में आना सफल करूँगी।

प्रकरण ।।२१।। चौपाई ।।५४७।।

हवे दृष्ट उघाडी जो पोतानी, निरख धणी श्री धाम।

प्रेमल करी पोते आप संभारी, बांध गोली प्रेम काम।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरी आत्मा! तू अपनी अन्तर्दृष्टि को खोलकर अपने प्राणवल्लभ को देख। परमधाम के अपने मूल सम्बन्ध की सुगन्धि को याद कर और अपने धाम धनी के एकमात्र प्रेम की ही इच्छा करते हुए उनसे एकरूप हो जा।

प्रेमतणी गोली बांधीने, अमल करूं जो जो छाक।

चौद भवन मांहें किरण कुलांभी, फोडी जाऊं ब्रह्मांड पिउ पास।।२।।

मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि प्रियतम के अखण्ड प्रेम मार्ग को आत्मसात् करके मैं अखण्ड आनन्द में डूब जाऊँ। चौदह लोकों में तारतम वाणी का प्रकाश फैलाकर अपनी अन्तर्दृष्टि से इससे परे हो जाऊँ तथा बेहद

मण्डल को पार करके निजधाम में प्रियतम का साक्षात्कार कर लूँ।

हवे वाचा मुख बोले तूं वाणी, करजे हांस विलास।
श्रवणा तुं संभार तिहारी, सुंण धणीनों प्रकास।।३।।

मेरी जिह्वा! अब तू मुख से मात्र प्रियतम की मधुर वाणी को ही उच्चारित कर तथा मधुर हास–परिहास कर। रे कानों! अब तुम प्रियतम के मुखारविन्द से निकली हुई अमृतमयी वाणी का श्रवण करो।

जीवना अंग कहे परियाणी, तमे धणी देखाड्या जेह।
प्रले ब्रह्मांड जो थाय प्रगट, पण तोहे न मूकूं खिण एह।।४।।

जीव के सभी अंग विचार करके कहते हैं कि आपने हमें प्रियतम अक्षरातीत की पहचान करायी है, इसलिये इस

ब्रह्माण्ड का प्रलय होने के पश्चात् भी हम एक पल के लिये भी धाम धनी का प्रेम नहीं छोड़ेंगे।

हवे जाग जीव सावचेत थई, वालो ओलख आंख उघाड़ी।
कर अस्तुत विनती वल्लभसूं, नाख अंतर पट टाली।।५।।

अब हे जीव! तू सावचेत होकर जाग्रत हो जा और अपने अन्तःचक्षुओं को खोलकर प्रियतम को पहचान। प्रियतम के गुणों की स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना कर, और अपने तथा धनी के बीच का मायावी बन्धन समाप्त कर दे।

आटला दिवस में नव ओलख्या मारा वालैया, में कीधूं अधम नूं काम।
महाचंडाल अकरमी अबूझ, में न ओलख्या धणी श्री धाम।।६।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं– मेरे प्रियतम! आज दिन

तक मैं आपकी पहचान नहीं कर पायी थी। मैंने यह भयंकर पाप कर्म किया है। मेरे महाचाण्डाल, निष्क्रिय, एवं नादान जीव! यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपने प्राणेश (प्राणनाथ) को ही नहीं पहचान पायी।

धिक धिक पडो मारा जीव अभागी, धिक धिक पडो चतुराई।
धिक धिक पडो मारा गुण सघलाने, जेणे नव जाणी मूल सगाई।।७।।

मेरे भाग्यहीन जीव! तुझे धिक्कार है। तेरी बौद्धिक चातुर्यता को भी धिक्कार है। मेरे उन सभी गुणों को धिक्कार है, जिन्होंने मूल सम्बन्ध की ही पहचान नहीं की।

धिक धिक पडो ते तेज बलने, धिक धिक पडो रूप रंग।
धिक धिक पडो ते गिनानने, जेहेने नव लाधो प्रसंग।।८।।

मेरे तेज, बौद्धिक एवं शारीरिक बल, रूप, तथा रंग को भी धिक्कार है। मेरे हृदय में विद्यमान उस ज्ञान को भी धिक्कार है, जिसने प्रियतम के आने के स्वर्णिम अवसर को नहीं पहचाना।

धिक धिक पडो मारी पांचो इन्द्री, धिक धिक पडो मारी देह।
श्री धाम धणी मूकी करी, संसारसूं कीधूं सनेह।।९।।

इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जिह्वा, तथा त्वचा) सहित मेरे इस नश्वर शरीर को भी धिक्कार है, जिसने धाम धनी से स्वयं को विमुख कर लिया और संसार के मिथ्या स्नेह में फँसाये रखा।

धिक धिक पडो मारा सर्वा अंगने, जे न आव्या धणीने काम।
में ओलखी नव बावरया, मारा धणी सुंदर श्री धाम।।१०।।

मेरे उन सभी अंगों को धिक्कार है, जो धाम धनी की सेवा के काम में नहीं आ सके। यह मेरा दुर्भाग्य है कि अपने प्राणवल्लभ धाम धनी की पहचान करके भी मैं उनके प्रेम में गलितगात नहीं हो सकी।

तमे तमारा गुण नव मूक्यां, में कीधी घणी दुष्टाई।
हूं महा निबल अति नीच थई, पण तमे नव मूकी मूल सगाई।।११।।

यद्यपि मैं आपके प्रति दुष्टता भरे कार्य करती रही, फिर भी आपने अपने प्रेम दर्शाने वाले गुणों को नहीं छोड़ा। मेरे प्राणेश्वर! मैं तो अत्यन्त अल्प शक्ति वाली हूँ और अत्यन्त निम्न स्तर के (नीचता भरे) कार्यों में लिप्त रही, किन्तु आपने परमधाम के मूल सम्बन्ध को निभाना नहीं छोड़ा।

प्रकरण ।।२२।। चौपाई ।।५५८।।

इस प्रकरण में चाकला मन्दिर (श्री गाँगजी भाई के घर) तथा वर्तमान खीजड़ा मन्दिर के पूर्व उस स्थान का वर्णन है, जहाँ सद्गुरू धनी श्री देवचन्द्र जी ने बाग में पर्णकुटी बनायी थी।

हवे वारी जाऊं वनराय वल्लभनी, जेहेनी सकोमल छाया।
गुण जोजो तमे ए वन ओखदी, दीठडे दूर जाय माया।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी द्वारा बनायी गयी उस पर्णकुटी के पास स्थित उन वृक्षों पर बलिहारी जाती हूँ, जिनकी अति सुन्दर छाया है। हे साथ जी! आप उन वृक्षों की विशेषता तो देखिये। ये वृक्ष भवसागर की औषधि हैं। इनके दर्शन मात्र से मेरे हृदय में, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी द्वारा वहाँ होने वाली लीला की याद आती है, और हृदय प्रेम-

रस में डूब जाता है जिससे माया दूर भाग जाती है।

हवे वारणां लऊं आंगणियो वेलूं, जिहां बेसो छो संझा समे साथ।
परियाण करो धाम चालवा, घर वाटडी देखाडो प्राणनाथ।।२।।

मैं उस आँगन की रेती पर बलिहारी जाती हूँ, जहाँ सन्ध्या समय धाम धनी (श्री देवचन्द्र जी) सुन्दरसाथ के मध्य बैठा करते थे और धाम चलने (आत्म–जाग्रति) की चर्चा करके परमधाम का मार्ग दिखाते थे।

वली वारणा लऊं आंगणियां, अने आस पास सहु साज।
जिहां बेसो उठो ऊभा रहो, वल्लभ मारा श्री राज।।३।।

मेरे प्राणप्रियतम श्री राज! मैं पुनः उस आँगन पर तथा वहाँ पर रखी सब सामग्रियों के ऊपर बलिहारी जाती हूँ। इसी आँगन में आप उठते–बैठते थे और खड़े रहते थे।

घणी विधे हूं घोली घोली जाऊं, मंदिर ने वली द्वार।

भामणा लऊं ते भोमतणां, जिहां वसो छो मारा आधार।।४।।

विशेष रूप से उस मन्दिर एवं उसके द्वार पर मैं बारम्बार समर्पित होती हूँ। मैं उस धरती पर न्योछावर होती हूँ, जहाँ मेरे जीवन के आधार धाम धनी रहा करते थे।

वारी जाऊं पलंग पाटी ओसीसा, तलाई सिरख ओछाड।

वली वारी जाऊं चंद्रवा, जिहां पोढो सुख सेज्याए।।५।।

वहाँ पर निवार से बुना हुआ पलंग था, जिस पर तकिये, गद्दे, रजाई, और बिछायी जाने वाली चादर रखी रहती थी। चन्द्रवा युक्त इस सुख शय्या (पलंग) पर मेरे धाम धनी विश्राम किया करते थे। मैं इन पर बलिहारी जाती हूँ।

हवे घोली घोली जाऊं झीलाने चाकला, घोली जाऊं मंदिरना थंभ।
जेणे थंभे करे धणी पोताने, जुगते वाल्या बंध।।६।।

अब मैं वहाँ पर बिछे हुए गलीचे, आसनी, एवं मन्दिरों के थम्भों पर बार–बार न्योछावर होती हूँ। इन थम्भों के बन्धों को स्वयं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपने हाथों से युक्तिपूर्वक बाँधा था और पर्णकुटी बनायी थी।

बेसो छो जिहां बलवंत बलिया, जाऊं बलिहारी तेणे ठाम।
साथ सकल सवारो आवी बेसे, वरणवो धणी श्री धाम।।७।।

जिस स्थान पर मेरे सर्वशक्तिमान प्राणेश्वर बैठा करते थे, मैं उस स्थान पर बार–बार समर्पित होती हूँ। सब सुन्दरसाथ प्रातःकाल आकर धाम धनी के पास बैठ जाया करते थे और वे युगल स्वरूप तथा परमधाम की मनोहारी शोभा का वर्णन किया करते थे।

मंदिर मांहें अनेक विध दीसे, जोगवाई पूरण सर्वे।

अनेक वार लऊं तेना भामणा, मारी वारी नाखूं जीवसूं देह।।८।।

उस मन्दिर में अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली सभी प्रकार की सामग्री विद्यमान है। इन सभी सामग्रियों पर मैं अनेक बार अपने तन, मन, और जीव को न्योछावर करती हूँ।

भले तमे देह धरया मुझ कारण, करी अजवालूं टाल्यो भरम।

जीव मारो घणो कठण हतो, तमे नेत्रे गाली कीधो नरम।।९।।

मेरे प्राण प्रियतम! यह तो बहुत ही अच्छा हुआ, जो आपने मेरे लिये माया का तन धारण किया और मेरे हृदय में ज्ञान का उजाला कर मुझे संशयों से रहित कर दिया। मेरा जीव तो बहुत कठोर हृदय वाला था, किन्तु आपकी प्रेम-भरी दृष्टि ने इसे भी अति कोमल बना दिया।

हवे चरण कमलना लऊं भामणियां, अने भामणां लऊं सर्वा अंग।
हस्त कमलने वारणे, वारी जाऊं मुखार ने विंद।।१०।।

मैं आपके चरणकमलों तथा सभी अंगों पर बार–बार समर्पित होती हूँ। आपके हस्तकमल एवं मुखारविन्द पर मैं पल–पल न्योछावर होती हूँ।

वस्तर ऊपर वारी वारी जाऊं, भामणां लऊं भूखण।
नेत्र निरमलने वारणे, जेहेनी दृष्टें फल पामिए ततखिण।।११।।

मैं धाम धनी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के वस्त्रों एवं आभूषणों के प्रति बारम्बार बलिहारी जाती हूँ। उन स्वच्छ नेत्रों के ऊपर भी न्योछावर होती हूँ, जिनसे दृष्टि मिलते ही उसी क्षण प्रेम रूपी अमृत–फल प्राप्त होता है।

जाऊं बलिहारी नासिका पर, अने दुखणां लऊं श्रवणा।
सुंदर सरूप सकोमल ऊपर, जीव लिए भामणा घणा घणा।।१२।।

प्रियतम अक्षरातीत की सुन्दर नासिका एवं कानों पर मैं बारम्बार समर्पित होती हूँ। उनके अति कोमल एवं सुन्दर स्वरूप पर मेरा जीव बहुत अधिक बलिहारी होता है।

सेवा करे छे बाई हीरबाई, ओछव रसोई जांहें।
अंतरगते तमे नित आरोगो, हूं लऊं भामणा घणा घणा तांहें।।१३।।

उत्सव के रूप में भोजन बनाने की सेवा हीरबाई जी करती हैं, जो खेता भाई की धर्मपत्नी रही हैं। जिस स्थान पर विराजमान होकर आप प्रतिदिन भोजन करते थे, मैं उस स्थान पर बार–बार बहुत अधिक न्योछावर होती हूँ।

घोली घोली जाऊं ते वाणी ऊपर, जे वचन कहो छो रसाल।
साथ सकलने चरणे राखी, सागर आडी बांधो छो पाल।।१४।।

आप अपने मुख से जो अमृतमयी वाणी सुनाते थे, उस पर मैं बार-बार समर्पित होती हूँ। आप चर्चा के माध्यम से सब सुन्दरसाथ को अपने चरणों में रखकर इस भवसागर के सामने चारों ओर से बाँध बनाते थे (माया से छुड़ाते थे)।

हवे सेवा करीस हूं सर्वा अंगे, दऊं प्रदखिणा रात ने दिन।
पल न वालूं निरखूं नेत्रे, वालपण करूं जीव ने मन।।१५।।

अब मेरे मन में एकमात्र यही इच्छा है कि मैं अपने सभी अंगों से आपकी सेवा करूँ तथा दिन-रात (निरन्तर) आपकी परिक्रमा करूँ। पल-भर के लिये भी अपने नेत्रों की दृष्टि को आपसे न हटाऊँ, और अपने जीव तथा मन

द्वारा पूर्ण रूप से आपसे प्रेम करूँ।

मूं जेहेवा अजाण अबूझ दुष्ट होय अप्रीछक, अधम नीच मत हीन।
ते एणे चरणे आवी थाय जाण सिरोमण, सुघड सुप्रीछक प्रवीन।।१६।।

श्री इन्द्रावती जी का जीव कहता है कि यदि कोई व्यक्ति मेरे जैसा अज्ञानी, नासमझ, दुष्ट, मूढ़, पापी, नीच, तथा बुद्धिहीन हो, किन्तु आपके चरणों में आ जाये, तो आपकी कृपा-दृष्टि से निश्चित ही सर्वश्रेष्ठ, मनोहर स्वभाव वाला, बुद्धिमान, एवं प्रत्येक क्षेत्र में प्रवीण बन जाता है।

तेना जीवने जगावी निध देओ छो निरमल, करो छो वासना प्रकास।
ते जीव वचिखिण वीर थई, चौद भवन करे अजवास।।१७।।

आप उस जीव को भी जगाकर तारतम ज्ञान के रूप में

परमधाम की निर्मल निधि देते हैं और उसकी आत्मा को उसकी पहचान बताते हैं। इस प्रकार, आपकी छत्रछाया में रहकर वह जीव ज्ञान क्षेत्र का विलक्षण योद्धा बन जाता है और चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान का उजाला करता है।

हवे गुण केटला कहूं मारा वालैया, जे अमसूं कीधां आवार।
आणी जोगवाई ए न केहेवाय, पण लखवां तोहे निरधार।।१८।।

मेरे प्रियतम! इस जागनी ब्रह्माण्ड में आपने हमारे प्रति जो प्रेम किया है (गुण दर्शाये हैं), उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? इन संसाधनों (मन, बुद्धि आदि) से उसका वर्णन नहीं हो सकता। फिर भी कुछ न कुछ तो लिखना ही पड़ेगा।

हवे आहीं उपमा केही दऊं मारा वालैया, ए सब्द न पोहोंचे तमने।
वचन कहूं ते ओरूं रहे, तेणे दुख लागे घणूं अमने।।१९।।

मेरे प्राणधन! अब यहाँ के शब्दों से आपकी उपमा कैसे दी जा सकती है? इस नश्वर जगत के शब्द आप तक पहुँचते ही नहीं हैं। मैं जो भी शब्द कहती हूँ, वे इस संसार में ही रह जाते हैं, जिससे मुझे बहुत अधिक दुःख होता है।

एक वचने मारी दाझ भाजे छे, ज्यारे कहूं छूं धणी श्री धाम।
एक एणे वचने मारो जीव करारयो, भाजी हैडानी हाम।।२०।।

जब मैं अपने मुख से भाव-विह्वल होकर "मेरे धाम धनी" कहती हूँ, तो इसी वचन से मेरे हृदय की धधकती हुई विरह की अग्नि बुझ (ठण्डी हो) जाती है। इसी कथन से मेरे जीव को आनन्द मिलता है और हृदय की सम्पूर्ण

इच्छायें भी पूर्ण हो जाती हैं।

कहे इंद्रावती अति उछरंगे, फोडी ब्रह्मांड करूं प्रकास।
विगते वाट देखाडूं घरनी, जेम सोहेलो आवे मारो साथ।।२१।।

अत्यधिक उमंग में भरकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि चितवनि के रूप में इस ब्रह्माण्ड से परे जाकर परमधाम की शोभा देखने का जो वास्तविक मार्ग है, उसका मैं सुन्दरसाथ के हृदय में प्रकाश करूँगी, जिससे मेरे सभी सुन्दरसाथ बहुत सरलता से धाम धनी के चरणों में आ जायेंगे।

प्रकरण ।।२३।। चौपाई ।।५७९।।

हवे अस्तुत ऊपर एक विनती कहूं, चरण तमारा जीवने नेत्रे ग्रहूं।
एणे चरणे मूने थई छे सिध, पेहेली निध मूने सुंदरबाईए दिध।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे धाम धनी! पूर्व प्रकरण की स्तुति के पश्चात् मैं आपसे एक विनती (प्रार्थना) करती हूँ कि मैं आपके चरणकमलों को अपने जीव के हृदय (नेत्रों) में सदा ही बसाये रखना चाहती हूँ। आपके चरणों की कृपा से ही मेरे सभी कार्य सिद्ध हुए हैं। श्यामा जी ने तारतम ज्ञान के रूप में मुझे पहली निधि प्रदान की है।

ए बंने सरूपमां जोतज एक, ते में जोयूं करी विवेक।
इंद्रावती करे विनती, तमे निध दीधी मूने तारतम थकी।।२।।

अपनी विवेक दृष्टि से मैंने यह अनुभव किया है कि इन दोनों स्वरूपों (श्री राज जी के आवेश स्वरूप तथा

श्यामा जी) में एक ही अक्षरातीत की ज्योति है। मैं आपसे प्रार्थना करते हुए यह बात कह रही हूँ कि आपने तारतम ज्ञान के रूप में परमधाम की अनमोल निधि प्रदान की है।

मारो आसरो कांई न हतो मारा धणी, पण मूने बंने सरूपे दया कीधी घणी।
सेवा मां हूं न हती सरीख, नव जाणूं मूने निध दीधी केम करीस।।३।।

मेरे प्राणवल्लभ! इस संसार में मेरा कोई भी सहारा नहीं था, किन्तु आप युगल स्वरूप ने मेरे ऊपर बहुत अधिक कृपा की है। मैं तो आपकी सेवा में भी सम्मिलित नहीं थी, किन्तु पता नहीं आपने यह निधि (धाम-हृदय में विराजमान होना) मुझे किस प्रकार दे दी।

क्रतव चितवणी जे सेवा करे, अवला गुण निध मोहजल परहरे।
ते पण मनसा वाचा करमणा करी, अने दोड करे घणूं वालपण धरी।।४।।

यदि कोई सुन्दरसाथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए चितवनि और सेवा करता है। वह माया से उत्पन्न होने वाले उल्टे गुणों को छोड़ देता है। इसके अतिरिक्त वह मन, वाणी, एवं कर्म से प्रियतम के प्रेम में भी बहुत अधिक दौड़ लगाता है।

पण जिहां लगे दया तमारी नव थाय, तिहां लगे सर्व तणाणूँ जाय।
ते पारखूं में जोयुं निरधार, साथ सकलना वचन विचार।।५।।

तो भी जब तक आपकी दया न हो, तब तक ये सब निरर्थक ही सिद्ध होते हैं। इस बात को मैंने बहुत अच्छी तरह से परख कर देखा है। अन्य सब सुन्दरसाथ के कथन एवं विचार भी ऐसा ही दर्शाते हैं।

जे खरो थई जीव जुओ मन करे, कपट रत्ती रदे नव धरे।
एम थैने जे तमने सेवे, अने वचन विचारी तमारा ग्रहे।।६।।

हे धाम धनी! जो सुन्दरसाथ अपने जीव एवं मन को पवित्र करके कार्य करे, अपने हृदय में नाम मात्र (रत्ती-भर) भी कपट न रखकर आपकी सेवा करे, तथा आपके अमृतमयी वचनों का विचार करके उन्हें आत्मसात् करे।

साचो सनकूल करे जे तमारो चित, अने भ्रांत मेली करे जीवने हित।
चित ऊपर खरो चालसे जेह, सोभा घेर साथमां लेसे तेह।।७।।

आपके चित्त को सच्चाई के साथ प्रसन्न करे, अपने जीव के कल्याण के लिये अपनी भ्रान्तियों को मिटाकर आपके चित्त के पूर्णतया अनुकूल होकर ही अपने आचरण को क्रियान्वित करे, वह निश्चित रूप से परमधाम में जाग्रत होने पर सुन्दरसाथ में बहुत बड़ी शोभा का अधिकारी

होगा।

ए निद्रा उडाडीने कहया वचन, श्री धाम धणी जीव जाणी मन।
वली जां जोऊं तमने जोपे करी, तां हजीमें निद्रा नथी मूकी परहरी।।८।।

हे धाम धनी! अपने जीव एवं मन द्वारा आपकी पहचान करके मैंने ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होकर ये बातें कही हैं। किन्तु जब मैं अपनी आत्मिक दृष्टि से आपको देखती हूँ, तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैंने तो अभी तक माया की नींद का परित्याग किया ही नहीं है।

आ वचन कहया में निद्रा मंझार, जां जोपे करी जोऊं मारा जीवना आधार।
नहीं तो एह वचन केम कहूं मारा धणी, पण कांईक तासीर दीसे अस्थानक तणी।।९।।

मेरे जीवन के आधार! मेरे प्राण प्रियतम! यदि मैं और गहराई से देखती हूँ, तो यह स्पष्ट होता है कि ये बातें मैंने

नींद में ही कही हैं, अन्यथा मेरे प्राणेश्वर! मैं इस प्रकार की बातें कैसे कह सकती हूँ? ऐसा प्रतीत होता है कि मायावी भूमिका के प्रभाव से ही मैंने ऐसा कह दिया।

वली जोऊं ज्यारे घरनी दिस तमने, त्यारे वली एम थाय अमने।
आ धामनां धणी ने में किहा कहया वचन, त्यारे जीव विचारी दुख पामें मन।।१०।।

पुनः जब मैं आपको परमधाम की (परात्म की) दृष्टि से देखती हूँ, तो मुझे पुनः ऐसा अनुभव होता है कि मैंने अपने प्राणप्रियतम को कैसी बातें कह दी हैं? तब मेरा जीव इस बात का विचार करके अपने मन में दुःखी होता है।

पण केम कहूं सब्द न पोहोंचे तमने, मारी जिभ्या थई माया अंगने।
वाला तमे थया छो सब्दातीत, मारी माया देह ऊभी सरीख।।११।।

किन्तु, मेरे प्राणधन! मैं अपने मन की बात आपसे कैसे कहूँ? मेरे शब्द आप तक पहुँचते ही नही हैं। मेरी जिह्वा मायावी अंगों की है। प्रियतम! आप तो शब्दातीत हैं, जबकि कहने वाला मेरा यह तन माया का है।

धणी लगतां वचन कहीस आवी धाम, त्यारे भाजीस मारा जीवनी हाम।
आ तां वचन में साथ माटे कहया, ए वचन जोई साथ मूकसे माया।।१२।।

अपने मन की बात आप तक पहुँचाकर ही मैं परमधाम आना चाहती हूँ, तभी मेरे जीव की चाहना पूर्ण हो सकेगी। ये बातें तो मैंने सुन्दरसाथ के लिये कही हैं, जिससे कि वे इन वचनों का विचार करें और माया को सरलता से छोड़ देवें।

इंद्रावती कहे साथ ने तेडो तत्काल, ए माया कठण छे निताल।
आ दुस्तर मांहें दुख देखे घणुं, नव ओलखाय कांई आपोपणुं।।१३।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी! सब सुन्दरसाथ को शीघ्र परमधाम बुलाइये। यह माया बहुत ही प्रचण्ड है। कठिनता से पार हो सकने वाली इस माया में सुन्दरसाथ बहुत अधिक दुःख का अनुभव कर रहे हैं। कोई भी अपने स्वरूप की पहचान नहीं कर पा रहा है।

में तां ए लवो कहयो मायाने सनमंध, हूं देखीती नव देखूं अंध।
एम कहिए तेने जे नव लिए सार, तमे ततखिण खबर लेओ छो आधार।।१४।।

माया के सम्बन्ध में मैंने ये थोड़ी सी बातें कही हैं। मैं तो अन्धे की तरह इसे देखते हुए भी यथार्थ रूप में नहीं देख पा रही हूँ। मेरे धाम धनी! हमें माया से निकालने के लिये इस प्रकार की बात तो केवल उससे कहनी चाहिए, जो

हमारी सुधि न रखता हो। आप तो उसी क्षण हमारी सुधि लेने वाले हैं।

ते माटे वचन कहया में एह, रखे अधखिण साथ विसारो तेह।
अधखिण रखे तमारी थाय, तो तेहेमां कै कलपांत वही जाय।।१५।।

प्राणप्रियतम! इसलिये मैंने यह बात कही है कि अब आधे क्षण के लिये भी सुन्दरसाथ को न भुलाइये। यह आधा क्षण कहीं आपका परमधाम वाला नहीं होना चाहिए, अन्यथा वहाँ के आधे क्षण में ही इस मायावी जगत के कई कल्प बीत जाते हैं।

मारा धणी हूं तो कहूं जो तमे अलगा हो, एक पाव पल अमारो विछोडो न सहो।
में एम तां कहयूं जो मारी ओछी मत, तमे अम माटे केटला करो छो खप।।१६।।

किन्तु ऐसा तो मैं तब कहती, यदि आप हमसे अलग

होते। मेरे प्रियतम! आप तो चौथाई पल का भी हमारा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार का मेरा कथन भी मेरी अल्प बुद्धि के ही कारण है। आप तो हमारे लिये बहुत अधिक (कितनी) सुख की चाहत रखते हैं।

तमे आंही आव्या अम माटे देह धरी, दया अम ऊपर अति घणी करी।
तमे सामा आव्या आगल अम माट, लई आव्या तारतम देखाडी घर वाट।।१७।।

आपने मात्र हमारे लिये ही इस संसार में आकर माया का तन धारण किया है और हमारे ऊपर दया की है। आप हमसे भी पहले इस संसार में आये और तारतम ज्ञान लाकर सबको परमधाम का मार्ग दर्शाया है।

साथे माया मांगी ते थई अति जोर, तमे साद कीधां घणा करी बकोर।
पण केमे न वली अमने सुध, त्यारे व्रह देवा सरूपजी अद्रष्ट किध।।१८।।

सुन्दरसाथ ने परमधाम में जिस माया का खेल देखने की इच्छा की थी, वह बहुत शक्तिशाली हो गयी। आपने ज्ञान–चर्चा द्वारा बहुत अधिक पुकार लगाकर परमधाम की याद दिलायी, किन्तु हमें किसी भी प्रकार से आपकी सुधि नहीं हो सकी। तब हमें विरह का अनुभव कराने के लिये आप हमारे मध्य से अदृश्य हो गये।

पण तोहे न वली अमने सार, त्यारे वली बीजो देह धरयो तत्काल।
ततखिण आवी अम भेला थया, वली वचन सागरना पूर ल्यावया।।१९।।

इतना कुछ होने पर भी हमें आपकी पहचान नहीं हुई। तब आपने उसी क्षण पुनः दूसरा (मिहिरराज जी का) तन धारण किया और मेरे (श्री इन्द्रावती जी के) धाम–हृदय में विराजमान होकर सुन्दरसाथ से मिले। पुनः सागर की लहरों के प्रवाह की तरह ज्ञान का अवतरण

किया।

में साथने कह्यूं ते केम तमने केहेवाय, कहिए तेहेने जे अलगां थाय।
एटलूं घणुए हूं जाणूं सही, ए वचन धणीने केहेवाय नहीं।।२०।।

मैंने सुन्दरसाथ से जो कुछ भी कहा है, वह आपसे कैसे कह सकती हूँ? कहा तो उससे जाता है, जो अलग होता है। यह बात तो मैं बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ कि ये वचन धाम धनी के लिये नहीं कहे जाते।

मारा मन मांहें एम आवी थयूं, साथ रखे जाणे अम माटे कां नव कह्यूं।
जो एम न कहूं तो खबर केम पडे, जे धणी साथ ऊपर दया एम करे।।२१।।

मेरे मन में ऐसा अनुभव हुआ कि कहीं सुन्दरसाथ ऐसा न समझ लें कि हमारे लिये कुछ भी क्यों नहीं कहा है? यदि मैं ऐसा न कहूँ तो आप सुन्दरसाथ के ऊपर जो

इतनी कृपा करते हैं, उसकी जानकारी सबको कैसे होगी?

साथने जणाववा माटे कहया ए वचन, धणी तमारी दया हूं जाणूं जीवने मन।
साथ चरणे छे ते तां वचिखिण वीर, वली भले वचन विचारे दृढ धीर।।२२।।

मेरे धाम धनी! आपकी अपार दया (प्रेममयी कृपा) को मैं अपने जीव तथा मन में अच्छी प्रकार से जानती हूँ। मैंने यह बात सुन्दरसाथ को भी बताने के लिये ही कही है। आपके चरणों में जो भी सुन्दरसाथ आ चुके हैं (जाग्रत हो चुके हैं), वे ज्ञान दृष्टि से विलक्षण वीर हैं। पुनः वे इन वचनों का दृढ़तापूर्वक धैर्य से विचार करेंगे।

पण घणो खप करूं साथ पाछला माट, साथ जोई वचन आवसे आणी वाट।
साथ जो जो तमे दया धणीतणी, ए दयानी वातों छे अति घणी।।२३।।

परन्तु जो सुन्दरसाथ आत्म–जाग्रति में पीछे रह गये हैं, उन्हें जगाने के लिये ही मैं बहुत अधिक प्रयास कर रही हूँ। वे सुन्दरसाथ तारतम वाणी के इन वचनों को देखकर (विचार कर) धनी के चरणों में आयेंगे। हे साथ जी! आप प्रियतम की दया को तो देखिये। उनकी अपार दया की बातें बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

ए दयानी विध हूं जाणूं सही, पण आणी जिभ्याए केहेवाय नहीं।
जो जीवसूं वचन विचार सो प्रकास, तो ततखिण जीवने थासे अजवास।।२४।।

प्राणेश्वर अक्षरातीत की अपार दया की वास्तविकता को मैं जानती हूँ, किन्तु मेरी इस जिह्वा से उसका वर्णन नहीं हो सकता। जो भी सुन्दरसाथ अपने जीव में प्रकाश वाणी के वचनों पर विचार करेंगे, तो उसी क्षण उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा।

इंद्रावती सुंदरबाईने चरणे, श्री वालाजी नी सेवा करीस वालपण घणे।
सेवा जेहेवो बीजो पदारथ नथी, जाण जोई लेसे वचनज थकी।।२५।।

श्री श्यामा जी के चरणों में प्रणाम करके इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं प्रियतम श्री राज जी की सेवा बहुत अधिक प्रेम से करूँगी। सेवा के समान कोई भी दूसरा पदार्थ नहीं है। जो तारतम वाणी के वचनों का विचार करेगा, वही इस रहस्य को जान सकेगा।

प्रकरण ।।२४।। चौपाई ।।६०४।।

कत्तण जो द्रष्टांत

खुई सा निद्रडी रे, जे अजां न छडे जीव।

तोहे नी सांगाए न वरे, जे पसां मथे हेडी भाइयां।।१।।

शब्दार्थ– खुई–आग, सांगाए–पहचान, पसां–दिखाई, हेडी–ऐसी।

अर्थ– माया की उस नींद को आग लग जाये, जो अभी भी जीव को नहीं छोड़ रही है। हमें अभी तक इसकी पहचान नहीं हो सकी है, इसलिये हमारे शिर पर ऐसी बीत रही है।

आंके निद्र उडाणके अदियूं मूजियूं, आंके डियां हिकमी साख।

अंईं अगईं पर पसी करे, हांणे मान सांगायो रे साथ।।२।।

शब्दार्थ– आंके–आपकी, अदियूं–साथ जी, बहन, मूजियूं–मेरे, डियां–देती हूँ, हिकमी–एक, अंईं–आप।

अर्थ– मेरे सुन्दरसाथ जी! आपकी इस मायावी नींद को उड़ाने के लिये मैं आपको एक दृष्टान्त देती हूँ। हे साथ जी! आप पहले इसके विषय में विचार करना और अपनी गरिमा का ध्यान रखना।

आतण मंझे जे आवयो, जेडियूं हेरे मिडी।

किंनीनी कीझो कत्तयो, किन न भगी रे भींडी।।३।।

शब्दार्थ– कीझो–बारीक, भगी–खोली, भींडी–पुनियों की गाँठ।

अर्थ– सूत कातने के लिये आँगन में परमधाम से जो भी सखियाँ मिलकर आयी हैं, उनमें से किसी ने तो बहुत सुन्दर बारीक सूत (प्रेम का) काता और किसी ने रुई

की पूनियों की गाँठ को ही नहीं खोला।

कपाइतियूं आवयूं, कतण कोड करे।

केहे केहे संनो कत्तयो, घणो नेह धरे।।४।।

शब्दार्थ– कपाइतियूं–काटने वाली, कोड–उत्साहपूर्वक, संनो–बारीक।

अर्थ– सूत कातने वाली सखियाँ उत्साहपूर्वक आयीं। उनमें से किसी–किसी ने बहुत प्रेमपूर्वक अति सुन्दर (बारीक) सूत काता।

के बेठियूं मय विच थेई, पण नाडी तंद न चढे।

कत्तणके जे विसरयूं, से उथियूं ओराता धरे।।५।।

शब्दार्थ– नाडी–तकला, तंद–तांत, ओराता–

पश्चाताप।

अर्थ– कई सखियाँ अहंकार में मग्न होकर चुपचाप बैठी रहीं और उन्होंने तकले पर सूत भी नहीं चढ़ाया। जो यहाँ कातना भूल गयीं, वे परमधाम में अपने तनों में पश्चाताप करते हुए उठेंगी।

किंनी कतया सोहागजा, सूतर भरया सेर।
के बेठियूं मय विच थेई, पेर मथे चाडे पेर।।६।।

किसी–किसी ने अपने प्राणेश्वर को रिझाने के लिये सेर–भर सूत काता। कई अहंकार में मग्न होकर पैर पर पैर चढ़ाये बैठी रहीं।

के तंदू चाडीन तकडूं, लधाऊं ही वेर।
के नारीदयूं भूं अडूं, के मथे चढ्यूं सिर मेर।।७।।

शब्दार्थ– नारीदयूं–देखती हैं, भूं अडूं– धरती की ओर।

अर्थ– कई सखियों ने समय पाकर अपने तकले पर शीघ्रतापूर्वक सूत चढ़ाया। कई निष्क्रिय होकर धरती की ओर देख रही हैं, तो कई अहंकार में मग्न होने के कारण पर्वत के समान अपना शिर उठाये चुपचाप बैठी हैं।

हिक तंदू नारींदे वियनज्यूं, जमारो सभे वेई।
हिक फेरा डींदे फुटरयूं, पण हथ न छुताऊं पई।।८।।

शब्दार्थ– जमारो–समय, हिक–एक, फुटरयूं–व्यर्थ में, पई–पूनी।

अर्थ– कुछ तो ऐसी भी सखियाँ हैं, जो दूसरों का सूत देखकर अपना सम्पूर्ण समय नष्ट कर देती हैं। कुछ ऐसी भी हैं, जो व्यर्थ में घूमती रहती हैं और अपने हाथों से

रुई की पूनी को भी नहीं छूती हैं।

के अची आतण मंझा, सुतियूं सुख करे।

उथियूं से उचाटमें, जडे सूतर संभारे।।९।।

कई सखियाँ तो संसार (सूत कातने के स्थान) में आकर सुखपूर्वक सोती रहती हैं। सोते–सोते जब उन्हें अचानक सूत कातने की याद आयेगी, तो वे घबराकर उठ बैठेंगी।

जिनीनी कीझो कतयो, तनके ता डेई।

सा जोर करे महें जेडिए, मरके मंझ बेही।।१०।।

शब्दार्थ– कीझो–बारीक, ता–कष्ट, डेई–देकर, मरके–मुस्कराते हुए, बेही–बैठी।

अर्थ– जिन्होंने अपने शरीर को कष्ट देकर बारीक सूत काता है, वे मूल मिलावा में बैठी हुई सखियों के मध्य बहुत अधिक हँसती हुई उठेंगी।

जिंनी जाचो कतयो, फारी फुकारे।

सा माले मंझ सरतिए, सुहाग लधाई घरे।।११।।

शब्दार्थ– जाचो–श्रेष्ठ, बारीक, फारी फुकारे–हाथ पर पानी लगाकर रुई के मुख पार लगाना (विनम्रतापूर्वक कष्टों को सहन करना), माले–प्रसन्नता, सरतिए–होड़ लगाने वाली (तामसी सखियाँ), लधाई–पायेगी।

अर्थ– जिन्होंने रुई पर पानी फुफकारकर अर्थात् विनम्रतापूर्वक प्रेम का बारीक सूत काता है, वे होड़ लगाने वाली (तामसी) सखियों के मध्य परमधाम में प्रियतम का आनन्द पायेंगी।

जडे सूतर सभनी न्हारयो, वीयन हथ पाए।

जिंनी मूर न कतयो, पोएसे मोंहों लिकाए।।१२।।

शब्दार्थ– वीयन–दूसरों के, मूर–थोड़ा भी, पोएसे–लज्ञा से, लिकाए–छिपाकर।

अर्थ– जब धाम धनी सबके सूत को अपने हाथ में लेकर देखेंगे, तब जिन्होंने कुछ भी सूत नहीं काता है, वे लज्ञा से अपना मुख छिपा लेंगी।

सूतरवारियूं सुहागण्यूं, न्हारीन कर खणी।

हिक डिंनी स्याबासी जेडिए, व्यो मान लधाऊं धणी।।१३।।

शब्दार्थ– सूतर वारियूं–सूत कातने वाली, खणी–उठाकर, डिंनी–देंगी, लधाऊं–पायेंगी।

अर्थ– जिन सखियों ने बारीक सूत काता है, उन्हें उठाकर एक–एक सखी देखेगी और उन्हें शाबासी देंगी।

धाम धनी भी उन्हें प्रेम–भरा सम्मान देंगे।

हिक फेरीन अरट उतावरो, तनके ता डेई।

राती कन उजागरा, सुत्र कतींदियूं पण सेई।।१४।।

एक सखी शरीर को कष्ट देकर चरखे को तेजी से घुमाती है और रात्रि में इस कार्य के लिये जागती भी है। इस प्रकार, वह सूत कातने में सफल होती है।

जे कन गाल्यूं विचमें, तंद न उकले तिन।

पई रही तिन हथमें, पोए बेठ्यूं फेरीन मन।।१५।।

जो सूत कातने के समय निरर्थक बातें करती रहती हैं, उनसे सूत नहीं काता जाता। पूनी उनके हाथ में रखी ही रहती है। ऐसी सखियाँ बाद में (परमधाम में) उदास मन से बैठी रहेंगी।

सभा विच सरतिए, गाल्यूं कंदियूं बेही।

पण जिंनी की न कतयो, तिंनी पर केही।।१६।।

शब्दार्थ– सरतिए–सखियाँ, कंदियूं– करेंगी।

अर्थ– सूत कातने वाली सखियाँ सभा में (मूल मिलावा में) बैठकर आपस में सूत के सम्बन्ध में बातें करेंगी, किन्तु जिन्होंने कुछ भी सूत नहीं काता, उनकी क्या अवस्था होगी?

न की कत्यो रात में, न की कत्यो डींह।

से सांणे मंझ सरतिए, मोंह खणदियूं कीह।।१७।।

शब्दार्थ– साणें–परमधाम, खणदियूं–उठायेंगी।

अर्थ– जिन्होंने न तो रात में सूत काता और न दिन में काता, वे परमधाम में जाग्रत होने पर सखियों के सामने अपना मुख कैसे उठायेंगी?

अदी रे संनो थूलो अघयो, जे की कत्याऊं।

पण किंनी विचथी विसरयो, पई हथ न छुताऊं।।१८।।

शब्दार्थ– अदी–सखी, संनो–बारीक, थूलो–मोटो, अघयो–अधिक, पई–पूनी।

अर्थ– किसी सखी ने बारीक सूत काता, तो किसी ने मोटा, और किसी ने अधिक मात्रा में काता। कुछ तो संसार में कातना ही भूल गयीं। यहाँ तक कि उन्होंने अपने हाथों से पूनी को छुआ तक नहीं।

तिंनी सांणे विच सरतिए, पोए मिहीणां लधाऊं।

न तां चेताणवारिए बंग लाथा, परी परी करे धाऊं।।१९।।

शब्दार्थ– मिहीणां–ताने, बंग–कर्त्तव्य, परी परी–बार बार।

अर्थ– वे परमधाम में सखियों के बीच तरह–तरह के

ताने सुनेंगी, इसलिये मैं चेतावनी देकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही हूँ और बार–बार पुकार रही हूँ।

आंके धांऊं सुणंदे धणीज्यूं, जमारो सभे वेई।

अंईं अगियां थींदियूं अणसरयूं, अंईं कतो को न बेही।।२०।।

शब्दार्थ– आंके–आपको, जमारो–आयु, अंईं–आप, अणसरयूं–पछताओगी।

अर्थ– धाम धनी की वाणी को सुनते–सुनाते आपकी सम्पूर्ण उम्र बीत गयी, आगे चलकर आप पछताओगी। आप यहाँ बैठकर सूत क्यों नहीं कातती हो?

जिंनी अज न कतयो, सा रींदियूं सेई।

जडे गाल्यूं कंदयूं पाणमें, जेडियूं सभे बेही।।२१।।

शब्दार्थ– रींदियूं–रोयेंगी, पांण में–अपने बीच में, जेडियूं–सखियों।

अर्थ– जिसने इस समय सूत नहीं काता है, वह परमधाम में अपनी सभी सखियों के बीच में बैठकर जब सूत कातने की बातें करेंगी तो रोयेंगी।

हिक गिनंदयूं सुहाग सुलतानजा, सुहागणियूं सेई।
से कर खणी गालियूं, कंदयूं विच बेही।।२२।।

शब्दार्थ– गिनंदयूं–लेगी, खणी–उठाकर, कंदयूं–करेगी।

अर्थ– एक सखी सूत कातकर प्रियतम के प्रेम का सुख लेगी और सुहागिन (अँगना) की शोभा को धारण करेगी। वह सभी सखियों के बीच बैठकर शिर उठाकर बातें करेगी।

जिंनी की न जाण्यो, तेहे हथ न छुती पई।

कोड करे घणवे आवई, पण उनी हाम रही।।२३।।

शब्दार्थ– जिंनी–जिसने, कोड–प्रसन्नता।

अर्थ– जिन्होंने अपने धाम धनी को कुछ भी नहीं पहचाना, उन्होंने अपने हाथों से पूनी को भी नहीं छुआ। वे बहुत प्रसन्नता के साथ इस संसार में सूत कातने के लिये आयी थीं, किन्तु उनकी चाहत अधूरी ही रह गयी।

प्रकरण ।।२५।। चौपाई ।।६२७।।

खुईसो भरम जो घेंण, जे लाथो लहे न कीय।

अंख उघाडे सओ कुछण, पुण वरी तींय ज्यूं तींय।।१।।

इस मोह की नींद को आग लग जाये, जो उतारने पर भी नहीं उतरती है। आँखें (ज्ञान की) खोलने पर थोड़ा सा दिखायी देता है, पुनः पूर्ववत् ही स्थिति हो जाती है।

हिक त्रकू झोरीन ताव में, फोकट फेरा डींन।

हिक झोडा लगाईन पाणमें, अदी रे उनी न जातो कीन।।२।।

एक सखी क्रोध में आकर तकले को तोड़ देती है और व्यर्थ में घूमती रहती है। एक ऐसी भी होती है, जो आपस में झगड़े ही कराती रहती है। हे सखी! वह सोचती है कि उसका क्या जाता है (क्या हानि होती है)?

हिक पाण त्रकू सारीन वियन ज्यूं, हकले कताईंन।

हिक जेडियूं जाणे जोर करे, पाण आयतूं कराईंन।।३।।

शब्दार्थ– सारीन–सहायता करना, वियन ज्यूं–दूसरे की, हकले–शीघ्रता से, आयतूं–इच्छा।

अर्थ– एक ऐसी सखी है, जो दूसरों के तकले को ठीक कर देती है, जिससे कि वह शीघ्रतापूर्वक कात सके। अपनेपन की भावना से एक सखी दूसरे पर जल्दी–जल्दी कातने के लिये दबाव डालती है।

हिक खोटी करीन पाण वियनके, त्रके पाईन वर।

जडे उथींदियूं आतण मंझा, तडे गाल्यूं थिंदयूं घर।।४।।

शब्दार्थ– खोटी–नष्ट, पाईन वर– टेढ़ा कर देती है।

अर्थ– एक ऐसी है जो अपना समय तो नष्ट करती ही है, दूसरों के तकले को भी टेढ़ा कर देती है। जब इस

संसार (सूत कातने के स्थान) को छोड़कर परमधाम चलेंगी, तो वहाँ पर ये सारी बातें करेंगी।

हिक त्रकू झोरीन वियनज्यूं, ते पर थींदी कीय।
कतंण उनी पूरो थेई, पण मिहीणां लेहेंदियूं नींय।।५।।

एक ऐसी है, जो दूसरी के तकले को तोड़ देती है। ऐसी स्थिति में उसकी मानसिक अवस्था क्या होगी? उसका कातना तो सम्भव ही नहीं रहा। उसे तो दूसरों के ताने सुनने ही पड़ेंगे।

जो झोडा लगाय पांणमें, सा कंदी उचाट घणी।
मनसे भाय कोय न पसे, पण महे बेठो सुणे धणी।।६।।

शब्दार्थ– कंदी–करेगी, उचाट–दुःखी, भाय–समझती है, महे–हृदय में।

अर्थ– जो आपस में विवाद कराती रहती हैं, वह बहुत अधिक दुःखी रहेंगी। वह अपने मन में सोचती हैं कि मुझे कौन देख रहा है, किन्तु धाम धनी तो सबके हृदय में बैठकर सब कुछ देखते–सुनते रहते हैं।

जीव करे मनसे गालडी, सा सभे थींदी घर।
पाय न रहेंदी तिर जेतरी, अंईं जिन विसरो इन पर।।७।।

जीव अपने मन में जो भी सोचता है (बातें करता है), उसकी भी बातें परमधाम में होंगी। हे साथ जी! इस बात को भूलिये नहीं कि तिल मात्र भी कोई बात छिपी नहीं रहेगी।

हिक कतंण महे माठ थेई, सेहन भिंने रे वेंण।
तंदू चाडीन तकड्यूं, नीचा ढारे नेंण।।८।।

शब्दार्थ– माठ–मौन, भिंने–व्यंग्यात्मक, चाडीन–चढ़ाती है।

अर्थ– एक सखी चुपचाप सूत कातती है। उसे दूसरों के व्यंग्य–भरे वचन सुनने पड़ते हैं। प्रत्युत्तर में वह अपने नेत्रों को नीचा कर लेती है तथा शीघ्रता से तकले पर तांत (सूत) चढ़ाने लगती है।

सा गिनंदी सुहाग धणीजा, जेडिए विच बेही।

सा उथींदी आतन मंझा, पेर पडतारो डेई।।९।।

वह सखियों के मध्य (संसार में भी) धनी का सुख लेगी तथा अपने पैरों से पड़ताल देती हुई (नृत्य करती हुई) सूत कातने के स्थान (आतन) से परात्म में उठेगी।

घणो सा गेहेंदी हथडा, जा चुकंदी हेर।

निद्र लथे ओरातवी, पण वरी हथ न ईंदी हीय वेर।।१०।।

शब्दार्थ– गेहेंदी–मलना, ओरातवी–उतार सकी।

अर्थ– जो सखी सूत कातने के इस अवसर को गँवा देगी, उसे बहुत अधिक हाथ मलना (पछताना) पड़ेगा। इस प्रकार वह अपनी नींद नहीं हटा सकेगी। ऐसा अवसर बार–बार हाथ में नहीं आने वाला है।

हित अंख उघाडींदी जोरसे, नसूं चढाए निलाड।

जा हित थींदी निद्र खरी, सा घर उथींदी ओलाड।।११।।

शब्दार्थ– निलाड–मस्तक, ओलाड–ऊँघती हुई।

अर्थ– जो अपनी आँखों को यहाँ बलपूर्वक खोली रहेंगी, उनके जाग्रत होने पर उनके मस्तक की नसें चढ़ी रहेंगी अर्थात् वे सबकी दृष्टि में सम्मानित होंगी। जो यहाँ

पर गहरी नींद में सो रही हैं, वे परमधाम में भी ऊँघती हुई (खुमारी लेते हुए) उठेंगी।

जा हित लाहिंदी निद्रडी, सा घर उथींदी छिडकाय।
हिन आतण संदियूं गालियूं, कंदीसा कोड मंझाय।।१२।।

जो माया की नींद को यहाँ छोड़ देती हैं, वे परमधाम में हँसते हुए उठेंगी और सबके बीच में इस संसार की बातें हँसते हुए करेंगी।

अंख भुसींदी जा उथींदी, केही गाल कंदीसा।
कोड करे घणवे आवई, पण निद्र न कढई नेंण मंझा।।१३।।

जो परमधाम में आँखें मलते हुए उठेंगी, वे कौन सी बातें करेंगी? वे सूत कातने के लिये बहुत प्रसन्नतापूर्वक इस संसार में आयी थीं, किन्तु अपनी आँखों की नींद नहीं

हटा सकी।

इंद्रावती चोएनी अदियूं, अंईं को करयो ईंय।
कोड करे अंईं आवयूं, अदी हांणे को अंईं हींय।।१४।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! तुम ऐसा क्यों करती हो (माया में सो रही हो)? तुम प्रसन्नतापूर्वक सूत कातने के लिये संसार में आयी थी, किन्तु अब यहाँ पर ऐसी क्यों हो गयी हो?

साणें सिपरियन से, अंई गाल्यूं कंदियूं कीय।
पाण संभारे न्हारयो, आंके ही वेर न रेहेंदीय।।१५।।

परमधाम में अपने प्रियतम से तुम किस प्रकार बातें करोगी? अपने मूल स्वरूप को याद करो और अपनी आत्मिक दृष्टि से देखो। तुम्हें पुनः समय नहीं मिलने

वाला है।

कतण के उतावरयूं, अंईं आतण आवयूं।

कतण निद्रडी विसारयो, हाणें लूडो लाड गेहेलियूं।।१६।।

शब्दार्थ– लूडो–झोंका, लाड–प्रेम, गेहेलियूं–आनन्द में मग्न।

अर्थ– संसार में सूत कातने के लिये उतावली होकर आयी थीं, किन्तु माया की नींद में कातना तो भूल ही गयी हैं और अब माया की आसक्ति के कारण नींद के झोंकों के आनन्द में डूबी हुई हैं।

पिरी कोठणके आवया, सुणियो सजण वेंण।

को न सुजाणो सिपरी, मथे खणी नेंण।।१७।।

प्रियतम तुम्हें बुलाने के लिये आये हैं। उनके वचनों को सुनो। न तो तुम अपने प्रियतम को पहचान पा रही हो और न शिर उठाकर उनकी ओर देख रही हो।

ही आतण थींदो अलखामणो, जडे हलंदा सजण साणे।
निद्र लहाए न्हारयो, हिन वलहे जे वेंणे।।१८।।

जब तुम अपने प्रियतम के घर जाओगी, तो यह संसार दुःखदायी हो जायेगा। इसलिये माया की नींद को समाप्त करके धाम धनी के कहे हुए वचनों का विचार करो।

खुई करयो ही निद्रडी, ही हंद ओखो घणूं आय।
जे हिंनी वेंणे न उथियूं, त केही पर कंदियूं ताय।।१९।।

इस मायावी नींद को आग में डाल दो। यह स्थान (संसार) बहुत ही दुःखदायी है। इन वचनों को सुनकर

भी जो जाग्रत नहीं होंगी, उनकी क्या स्थिति होगी, यह सोचनीय है।

पर पसो पिरियनजी, पाणसे के के पर करे।

इंद्रावती चोए अदियूं, अंईं हांणे हलो नी घरे।।२०।।

प्रियतम के प्रेम को तो देखो। वे हमसे किस प्रकार प्रेम-भरी बातें कर रहे हैं। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखियों! अब तुम अपने घर (परमधाम) चलो।

धणी मंझ अची करे, आंके बेठा वेंण चाय।

वियनके मतू डिए, पण तो पर केही आय।।२१।।

शब्दार्थ- अची-आकर, आंके-तुम्हें, मतू-उपदेश, तो-तुम्हारी, पर-अवस्था।

अर्थ– धाम धनी हमारे (मेरे) मध्य विराजमान होकर तुम्हें परमधाम के वचन सुना रहे हैं। तू दूसरों को तो ज्ञान दे रही है, किन्तु यह नहीं सोचती कि तुम्हारी स्थिति क्या है?

प्रकरण ।।२६।। चौपाई ।।६४८।।

हाणे तूं म भूलज रे, भोरडी सुजाणें तूं सेण।

साणे तो डिठां सिपरी, भोरी तोहेनी तोहजडे नेण।।१।।

शब्दार्थ– भोरडी–सखी (आत्मा), तोहेनी–तो भी, तोहजडे–तुम्हारे अपने।

अर्थ– हे मेरी आत्मा! अब तो तू अपने प्रियतम को न भूल, उनकी पहचान कर। परमधाम में तो तूने अपने प्राणवल्लभ (प्राणनाथ) को देखा ही है।

वेंण वडानी मोंहें कढे, भोरी तूं ता तोहेनी जाग।

कीझो नी कत तूं धणीजो, अंईं तंद पेराईंदी आघ।।२।।

शब्दार्थ– मोंहें–मुख से, कीझो नी–बारीक, अंईं–तुम, तंद–सूत, पेराईंदी–पायेगी, आघ–अधिक।

अर्थ– तू अपने मुख से बड़ी–बड़ी बातें अवश्य करती है, किन्तु पहले तुम तो स्वयं जागो। तू प्रियतम के लिये

बारीक सूत कात। इस सूत से तू धनी का बहुत अधिक प्रेम पायेगी।

तें ता पा न कतयो, हुत घुरवो सेर।

जडे उथींदी आतण मंझां, तडे घणूं घुरंदी ही वेर।।३।।

शब्दार्थ– घुरवो–चाहेगी, घुरंदी–माँगेगी।

अर्थ– तूने तो अभी तक पाव–भर भी सूत नहीं काता है, वहाँ तो सेर–भर सूत चाहिये। इस स्थिति में जब संसार को छोड़कर तू परमधाम जायेगी, तो पुनः आने की बहुत अधिक इच्छा करेगी।

हे जे डींह वंजाइयां, भोरी विसरी विच बेही।

हांणे हलंण संदा डींहडा, भोरी आया से पेही।।४।।

शब्दार्थ– डींह–दिन, वंजाइयां–गँवा दिया, हलंण–चलना है।

अर्थ– मेरी आत्मा! इस संसार में आकर तूने प्रियतम को भुला दिया और इतने दिन व्यर्थ में खो दिये। अब घर चलने के दिन निकट आ गये हैं। प्रियतम स्वयं लेने के लिये संसार में आये हुए हैं।

रे कते जे उथिए, त तो पर केही।
कां कंनी ही निद्रडी, भोरी घरे साथ नेई।।५।।

यदि बिना सूत काते ही परात्म में उठोगी, तो तुम्हारे ऊपर क्या बीतेगी? मेरी आत्मा! क्या तू इस नींद को भी अपने साथ परमधाम ले चलेगी?

अंजा न जागे जोर करे, जे हेडी मथां थेई।

पिरी वभेरकां आइया, तोजी सिध को ईं वेई।।६।।

शब्दार्थ– को–कहाँ, ईं–ऐसा, इस तरह, वेई–चली गयी।

अर्थ– तुम्हारे साथ ऐसा हुआ, फिर भी तू पूरी शक्ति लगाकर अभी भी जाग्रत नहीं हो रही है। प्रियतम तुम्हें जगाने के लिये पुनः आये हैं। तुम्हारी सुधि कहाँ चली गयी है?

त्रक तूं सारे सई कर, जोपे कर जोत्रा।

माल तूं बंध मूरडे करे, पई म छड हथां।।७।।

शब्दार्थ– त्रक–तकला, सई–सीधा, जोपे–अच्छी तरह, जोत्रा–अदवान, मूरडे–मरोड़कर या लपेटकर।

अर्थ– तू अपने तकले को सीधा कर और अदवान को

कसकर बाँध। इसके अतिरिक्त माल को मरोड़कर गाँठ लगा तथा रुई की पूनी को अपने हाथ से न छोड़।

अरट फेर उतावरो, तन के डेई ता।

तू तां गिनंदी सुहाग धणीयजो, तोजे संने हिन सुत्रा।।८।।

शब्दार्थ– डेई–देकर, गिनंदी–पायेगी, संने–बारीक, सुत्रा–सूत।

अर्थ– अपने शरीर से पूरी शक्ति लगाकर चरखे को तेजी से घुमा। इस प्रकार तू बारीक सूत कातकर अपने प्रियतम का सुख पायेगी।

कतण रेहेंदो अधविच, आए डींह मथां।

कतण वारयूं हलयूं, डिसे न तूं पासां।।९।।

घर चलने का समय आ जाने पर तेरा कातना अधूरा ही रह जायेगा। तुम्हारे साथ सूत कातने वाली सखियाँ चली गयी हैं (जाग गयी हैं)। तू अपनी ओर क्यों नहीं देखती (अपनी आत्म–जाग्रति के सम्बन्ध में विचार क्यों नहीं करती)?

हांणे जिन थिए विसरी, कत तूं कोड मंझां।

सुहाग संदो सुत्रडो, संनो थींदो तो हथां।।१०।।

शब्दार्थ– कोड–उत्साह, मंझां–में, संदो–का, थींदो–होगा।

अर्थ– तू एकाग्र चित्त से उत्साहपूर्वक सूत कात। ऐसा करने पर तेरे हाथ में प्रियतम के प्रेम का बारीक सूत अवश्य होगा।

हांणे तूं म किज निद्रडी, निद्रडी डेरे दुहाग।

तूं तां जागी जोर करे रे, गिंन तूं वंजी रे सुहाग।।११।।

शब्दार्थ– दुहाग–दुःख, गिंन–पाना, वंजी–दौड़कर।

अर्थ– मेरी आत्मा! अब तू नींद में सोती न रह। यह मायावी नींद दुःखदायी है। तू पूरी शक्ति लगाकर जाग जा और दौड़कर (प्रेम में) अपने प्राणेश्वर का सुख ले।

ही सुत्र घणो सुहामणो, मोघो थींदो जोर।

सुजाणी तूं सिपरी, जीव मथांई घोर।।१२।।

शब्दार्थ– मोघो–महंगा, मथांई–ऊपर, घोर–पूर्णतया।

अर्थ– तुम्हारे द्वारा काता हुआ यह सूत बहुत सुन्दर है। इसका मूल्य बहुत अधिक होगा। तू अपने प्रियतम की पहचान कर तथा अपने जीव को उनके ऊपर पूर्णतया समर्पित कर दे।

गिंन स्याबासी जेडिऐं, कर कां एहेडी पर।

हांणे को थिए विसरी, जे तो पिरी सुजातां घर।।१३।।

तू कुछ ऐसा कर कि सखियों में तुझे शाबासी मिले। अब क्यों भूल रही है? प्रियतम तुझे घर ले जाने के लिये आये हुए हैं।

प्रकरण ।।२७।। चौपाई ।।६६१।।

श्री इन्द्रावती जी स्वयं को सम्बोधित करती हुई कहती हैं।

भोरी तूं म भूल इंद्रावती, हीं वेर एहेडी आय।

पिरी पांहिंजडो गिंनी करे, भोरी वीए तूं कां मसलाय।।१।।

शब्दार्थ– एहेडी–ऐसा, पांहिंजडो–अपने, गिंनी–लेकर, मसलाय–सलाह लेना।

अर्थ– हे इन्द्रावती! प्रियतम का ऐसा सुन्दर समय पाकर तू भूल न कर। अपने धाम धनी को अपने हृदय में बसा ले और इस सम्बन्ध में किसी से भी विचार–विमर्श न कर।

ही पिरी तोके कडे मिडंदा, गिन तूं सुजाणी सुहाग।

एहेडी एकांत तूं कडे लेहेनी, आए तोहेजडो लाग।।२।।

ये प्रियतम भला तुझे पुनः कब मिलेंगे? उनकी पहचान कर उनका सुख ले। ऐसा एकान्त तुझे कब मिलेगा? तुम्हें यह स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है।

ही वेर घणूं सुहामणी, जा पिरिए डिंनी तोके पांण।
जगायाऊं जोर करे, सुहागणियन के सुलतांन।।३।।

तुम्हारे प्रियतम ने स्वयं ही यह जो अवसर (समय) दिया है, वह बहुत सुन्दर है। ब्रह्मात्माओं के प्रियतम श्री राज जी ही तुम्हें जगाने के लिये इतनी शक्ति लगा रहे हैं।

अंख उघाडे ढकजे, भोरी जिन चूके हितरी वेर।
रातो डींहा राजजो, सुत्र संनो कत सवा सेर।।४।।

आँखें खोलकर बन्द करने में जो समय लगता है, तू उतना भी समय नष्ट न कर। रात-दिन अपने प्रियतम श्री

राज जी के प्रेम का सवा सेर, बारीक सूत कात।

नेणे सेनी नेह धर, मूंजे चस्मे से कतां।
सुत्र संनो हीं कती करे, मूंजी अंखिए भर अचां।।५।।

तू अपने आत्मिक नेत्रों (हृदय) में अपने प्राणेश्वर का प्रेम भर ले तथा अपनी आत्मिक दृष्टि (चितवनि) से प्रेम का सूत कात। इस प्रकार, तू अपने आत्मिक नेत्रों से प्रेम का बारीक सूत काता कर।

भले सो कतंदी हीं सुत्रडो, अदी भले लधिम हीं वेर।
भले सो भगी हीं निद्रडी, मूंके भले धणी मिड्या हेर।।६।।

यह बहुत ही अच्छा हुआ जो तुमने सुन्दर सूत काता और इसके लिये तुझे सुन्दर अवसर भी मिला। यह कितना अच्छा हुआ कि तुम्हारी मायावी नींद भी भाग

गयी तथा धाम धनी भी बहुत अच्छी तरह से मिले।

धणी धारा हीं निद्रडी, व्यो ल्हाए ईं केर।

पिरी उतां जिंदुओ अदी, आऊं घोरे वंजां हिन वेर।।७।।

शब्दार्थ– धारा–बिना, व्यो–दूसरा, उतां–ऊपर (प्रति), जिंदुओ–जीव को, घोरे वंजां–अर्पण करती हूँ।

अर्थ– प्रियतम के अतिरिक्त इस मायावी नींद से मुझे जगाने (निकालने) वाला भला और दूसरा कौन हो सकता है। ऐसे प्राणेश्वर पर मैं इस समय अपने जीव को समर्पित करती हूँ।

मूंनी कारण मूंजी अंदियूं, पिरी डिंना हित पेर।

जिंनी पेरे आया अंदियूं, आऊं घोरे वजां हिन सेर।।८।।

शब्दार्थ– हित–यहाँ, पेर–चरण, अंदियूं–सखियों।

अर्थ– मेरे कारण मेरे प्रियतम इस संसार में (यहाँ) अपने पैरों से चलकर (स्वयं) आये हैं। जिन चरणों से वे चलकर आये हैं, मैं उन पर स्वयं को समर्पित करती हूँ।

अदी तूं धणी गिंनी बेठी मूहजो, बेओ न पसे कोय।
पस तूं गिंना धणी पांहिजो, अदी त तूं भाइज जोय।।९।।

शब्दार्थ– भाइज–जानी जाये, जोय–अर्धांगिनी।

अर्थ– मेरी बहन रतन बाई! तू मेरे प्रियतम (गादी) को लेकर बैठी है। इस बात को मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता। यदि तू अपने धनी को पहचान लेती है, तो तू सुहागिन कहलायेगी।

द्रष्टव्य– गादी में अक्षरातीत खोजने वाले सुन्दरसाथ के लिये इस चौपाई का कथन विचारणीय है।

इंद्रावती चोए अदी मूंहजी, मूंके मिड्या मूजा पिरी।
जिंनी कोडे आऊं आवई, से पूरण केआं उंनी।।१०।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरी बहन! मेरे प्रियतम मुझे मिल गये हैं। मैंने जो भी इच्छा की थी, उसे उन्होंने पूर्ण कर दिया है।

रतनबाई अदी मूंहजी, आऊं करियां आंसे गाल।
सुहाग मूके डिनाऊं घणों, अदी थेईस आऊं निहाल।।११।।

मेरी सखी रतन बाई (बिहारी जी)! मैं तुमसे यह बात कहती हूँ। मेरे प्राणवल्लभ ने मुझे बहुत अधिक सुख दिया है, जिससे मैं निहाल हो गयी हूँ।

मूं पर मंगई हिकडी, पिरी सुख डिंना घणी पर।

हिंनी सुखे संदियूं गालियूं, अदी कंदासी वंजी घर।।१२।।

मैंने प्रियतम से हब्शा में केवल एक ही बात (उनका मधुर दर्शन) माँगी थी, किन्तु उन्होंने कई प्रकार से सुख दिया। हे बहन! परमधाम चलकर मैं तुमसे इन सुखों की बातें करूँगी।

प्रकरण ।।२८।। चौपाई ।।६७३।।

श्री लखमीजीनूं द्रष्टांत

हूं जाणूं निध एकली लऊं, धणी तणां सुख सघला सहूं।
ए सुख बीजा कोणे नव दऊं, वली वली तमने स्या ने कहूं।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं प्रियतम के सभी सुखों की निधि का अकेले ही रसपान करूँ और इसे अन्य किसी को भी न देऊँ। बार-बार आपको जाग्रत होने के लिये क्यों कहूँ?

ए वचन कांई एम न केहेवाय, जीव मारो मांहें दुखाय।
मूने घणूं विमासण थाय, पण जाक्यो मारो नव जकाय।।२।।

तारतम वाणी के ये वचन ऐसे ही नहीं कह दिये जाते हैं। इसे कहने में मेरा जीव आन्तरिक रूप से बहुत दुःखी होता है। इसे व्यक्त करके मुझे बाद में पछताना पड़ता है,

किन्तु मेरे द्वारा रोकने का प्रयास करने पर भी इसका अवतरण रुकता नहीं है।

धणी कहावे तो हूं कहूं, नहीं तो ए निध कांई एम न दऊं।
देतां मारो जीव निसरे, ए वचन कांई मूने न विसरे।।३।।

तारतम वाणी की इस निधि को धाम धनी ही मेरे तन से कहलवा रहे हैं, अन्यथा मैं इसे इस प्रकार प्रकट कर ही नहीं सकती थी। इस वाणी को कहने पर ऐसा लगता है कि जैसे मेरे प्राण ही निकल जायेंगे। मैं इन वचनों की महत्ता को किसी भी प्रकार से भूल नहीं पाती हूँ।

में लीधा कठणाई करी, श्री धणी तणे चरणे चित धरी।
हूं घणुंए राखूं अंतर, पण सागर पूर प्रगट करे घर।।४।।

मैंने तारतम वाणी रूपी इस निधि को हब्शा में विरह की

गहन अवस्था में डूबकर प्राप्त किया है। इसके लिये मुझे प्राणवल्लभ अक्षरातीत के चरणों में एकनिष्ठ भाव से अपने चित्त को लगाना पड़ा है। यद्यपि मैं इसे गोपनीय ही रखना चाहती हूँ, किन्तु धाम धनी सागर के प्रवाह की तरह परमधाम की बातों को मेरे हृदय से प्रकट कर रहे हैं।

धणी कहावे अंतरगत रही, कहयानी सोभा कालबुतने थई।
नहीं तो ए वचन केम प्रगट थाय, केहेतां घणूं कालजु कपाय।।५।।

मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर स्वयं अक्षरातीत ही इस वाणी को कह रहे हैं तथा मेरे इस नश्वर तन को कहलाने की शोभा दे रहे हैं। अन्यथा, ये वचन तो किसी भी प्रकार से कहे ही नहीं जा सकते। इन्हें कहने में मेरा हृदय बहुत अधिक फटने लगता है (दुःखी होने लगता

है)।

रखे जाणो वचन कह्या अचेत, केहेतां जीवे दुख दीठां अनेक।
ज्यारे जीवसूं विचारी जोयूं मन, जे आ हूं केहा कहूं छूं वचन।।६।।

ऐसा भी नहीं समझना चाहिए कि तारतम वाणी के इन वचनों को मैंने अचेतावस्था (बेहोशी) में कहा है। इसे कहने में उस समय मेरे जीव को बहुत अधिक दुःख का अनुभव होता है। जब मैं जीव के मन से विचार करके देखती हूँ कि अरे, मैंने परमधाम की यह कैसी रहस्यमयी बात संसार में कह दी है।

एक लवो मारी बुधे न निसरे, पण धणी आपोपूं प्रगट करे।
हवे जो साथ करो कांई बल, तो पूरण सोभा लेओ नेहेचल।।७।।

मेरी बुद्धि से तो इस ब्रह्मवाणी का एक शब्द भी नहीं

कहा जा सकता, किन्तु प्रियतम प्राणनाथ मेरे तन से स्वयं ही कहला रहे हैं। हे साथ जी! अब यदि अपनी आत्म–जाग्रति के लिये कुछ बल लगाइये (पुरुषार्थ कीजिए), तो उस पूर्ण परमधाम की अखण्ड शोभा का आप अनुभव कर सकते हैं।

भारे वचन छे जो घणूं, जो कांई ग्रहसो आपोपणूं।

ए वचन ऊपर एक कहूं विचार, सांभलो साथ मारा धामना आधार।।८।।

तारतम वाणी के वचन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। उन्हें आप अपनत्व की भावना से ही ग्रहण कीजिएगा। इस बात के अतिरिक्त मैं अपना एक विचार भी व्यक्त कर रही हूँ। मेरे परमधाम के सुन्दरसाथ जी! आप इसे ध्यानपूर्वक सुनिए।

धडथी मस्तक कोई अलगूं करे, तो अर्ध वचन मुखथी नव परे।
जो कोई सारे सघला संधाण, तो अर्ध लवो न केहेवाय निरवाण।।९।।

इस वाणी को कहने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये तामसिक तप के नाम पर यदि कोई व्यक्ति अपने शिर को तलवार द्वारा धड़ से अलग कर देता है, तो भी उसके मुख से एक शब्द का आधा उच्चारण भी नहीं हो सकता। यदि कोई अपने शरीर के प्रत्येक जोड़ को अलग-अलग कर दे, तो भी उसके मुख से निश्चित रूप से तारतम वाणी के समानान्तर किसी आधे शब्द का भी उच्चारण नहीं हो सकता।

साथ माटे कहूं सगाई जाणी, धणी ओलखजो घर रूदे आणी।
एम हाथ झालीने बीजो कोई नव दिए, अने एम देतां अभागी नव लिए।।१०।।

हे साथ जी! परमधाम के मूल सम्बन्ध से ही मैं आपसे

ऐसा कह रही हूँ कि आप अपने हृदय में धाम धनी एवं परमधाम की शोभा बसाकर उनकी पहचान कीजिए। इस प्रकार किसी का हाथ पकड़कर कोई ज्ञान नहीं देता है। इस प्रकार देने पर भी जो ग्रहण नहीं करता है, वह भाग्यहीन है।

तमे साथ मारा सिरदार, हवे आ द्रष्टांत जो जो विचार।
पाधरो एक कहूं प्रकास, सुकजी पाए पुरावुं साख।।११।।

आप मेरे महान विचारों वाले (प्रमुख) सुन्दरसाथ हैं। अब इस दृष्टान्त के ऊपर विचार कीजिए। मैं आपसे एक सीधी बात कहती हूँ और इस सम्बन्ध में शुकदेव जी की साक्षी भी देती हूँ।

एह जोईने टालो भरम, जीव कांईक हवे करो नरम।

वचन जीवसूं करो विचार, त्यारे ततखिण जीव ओलखसे आधार।।१२।।

इसे देखकर अब अपने मन के संशय मिटाइये और अपने जीव के हृदय को कुछ कोमल बनाइये। जब आप इन वचनों का अपने जीव के हृदय में विचार करेंगे, तो उसी क्षण जीव अपने प्राणों के आधार अक्षरातीत की पहचान कर लेगा।

ओलखीने टालो अंतर, आपोपूं संभारो घर।

हवे घर तणी केही कहूं वात, वचन विचारी जो जो प्रकास।।१३।।

प्रियतम की पहचान करके माया के आवरण को हटा दीजिए। अपने मूल स्वरूप (परात्म) एवं परमधाम को याद कीजिए। अब मैं परमधाम के विषय में क्या कहूँ? आप तारतम वाणी के वचनों का विचार कर ज्ञान दृष्टि से

देख लीजिएगा।

हवे सांभलो आ पाधरू द्रष्टांत, जीव जगवी जो जो एकांत।
चौद भवननो कहिए धणी, लीला करे वैकुंठ विखे घणी।।१४।।

अब मैं आपको एक सीधा सा दृष्टान्त देती हूँ, उसे सुनिए। इसके विषय में एकान्त में विचार कर अपने जीव को जाग्रत कीजिए। विष्णु भगवान चौदह लोकों के स्वामी कहे जाते हैं और वे बैकुण्ठ में अपनी लीलायें किया करते हैं।

लखमीजी सेवे दिन रात, ऐहेनी छे मोटी विख्यात।
जे जीव वांछे पोते हेत घर, ते सेवे श्री परमेस्वर।।१५।।

लक्ष्मी जी दिन–रात भगवान विष्णु की सेवा करती हैं। इन लक्ष्मी जी की भी संसार में बड़ी महिमा है। जिन

जीवों को अपने घर वैकुण्ठ की इच्छा होती है, वे विष्णु भगवान को ही परमात्मा मानकर उनकी भक्ति करते हैं।

ब्रह्मादिक नारद छे देव, बीजा सुर नर अनेक करे एनी सेव।
ब्रह्मांड विखे केटला लऊं नाम, सहु कोई सेवे श्री भगवान।।१६।।

नारद तथा ब्रह्मा आदि देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवता तथा अनेक मनुष्य भी इन्हीं की सेवा करते हैं। इनसे ऊपर ब्रह्माण्ड में और कौन है जिनके मैं नाम बताऊँ? वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड के प्रायः सभी लोग भगवान विष्णु की ही सेवा करते हैं।

विशेष– उपरोक्त कथन श्रीमद्भागवत् के अनुसार दर्शाया गया है। शिव पुराण तथा देवी भागवत् आदि में भगवान विष्णु की निन्दा भी की गयी है।

सेवता न पामे पार, ए लीला एहनी छे अपार।

आगे सेवा कीधी छे घणे, ते जो जो वचन सुकजी तणें।।१७।।

इनकी लीला इतनी अनन्त है कि सेवा करने वाले भक्तजन भी उसका पार नहीं पाते हैं। पहले बहुत से भक्तों ने भगवान विष्णु की सेवा की है। शुकदेव जी के वचनों में इसे देखिये।

एह छे एवो समरथ, सेवकना सारे अरथ।

हवे एह तणो जो जो गिनांन, मोटी मतनो धणी भगवान।।१८।।

ये भगवान विष्णु इतने शक्तिशाली हैं कि सेवकों के सभी अभिप्राय पूर्ण कर देते हैं। भगवान विष्णु बड़ी बुद्धि के स्वामी कहे जाते हैं। अब इनके ज्ञान की स्थिति देखिए।

एक समे करि बेठा ध्यान, विसरी सरीर तणी सुध सान।
ए सदीवे चितवणी करे, पण बाहेर केहेने खबर न पडे।।१९।।

एक बार वे इतने गहन ध्यान में बैठ गये कि उन्हें अपने शरीर की जरा भी सुधि नहीं रही। ये हमेशा ही चितवनि (ध्यान) करते थे, किन्तु अन्य किसी को भी इसकी जानकारी नहीं होती थी।

एणे समे ध्यान थयो अति जोर, प्रेम तणी चंपाणी कोर।
लखमीजी आव्या एणे समे, मन अचरज पाम्या विस्मे।।२०।।

इस समय उनका ध्यान इतनी गहराई में पहुँच गया कि उनका प्रेम छिपा न रह सका। इसी समय लक्ष्मी जी भी आ गयीं और अपने पति को ध्यान करते देख बहुत ही आश्चर्यचकित हो गयीं।

आवी लखमीजी ऊभा रहया, श्री भगवानजी तिहां जाग्रत थया।
लखमीजी करे विनती, अमे बीजो कोई देखतां नथी।।२१।।

वहाँ लक्ष्मी जी आकर खड़ी हो गयीं। कुछ समय के पश्चात् विष्णु भगवान ध्यान से उठे। लक्ष्मी जी ने उनसे प्रार्थना करके पूछा कि इस ब्रह्माण्ड में मैं आपसे श्रेष्ठ अन्य किसी भी व्यक्ति को नहीं देखती हूँ।

केहेनो तमे करो छो ध्यान, ते मूने कहो श्री भगवान।
मारा मनमां थयो संदेह, कही प्रीछवो मूने एह।।२२।।

हे भगवान! आप कृपा करके मुझे यह बताइये कि अभी आप किसका ध्यान कर रहे थे? मेरे मन में इस विषय में सन्देह हो गया है। कृपा करके मुझे इसके विषय में समझाइये।

किहां वसे ने कीहो ठाम, ते मूने कहो श्री भगवान।
ए लीला सांभलूं श्रवणे, वली वली लागूं चरणे।।२३।।

हे भगवान्! मैं आपके चरणों में बार-बार प्रणाम करते हुए यह प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे यह बताने का कष्ट करें कि जिनका आप ध्यान करते हैं, वे कहाँ रहते हैं? मैं उनके धाम की लीला के विषय में अपने कानों से सुनना चाहती हूँ।

सांभलो लखमीजी कहूं तमने, ए आगे सिवे पूछ्यूं अमने।
पण ए लीलानी मूने खबरज नथी, तो केम कहूं तमने मुख थकी।।२४।।

यह सुनकर भगवान विष्णु जी ने उत्तर दिया कि लक्ष्मी जी मेरी बात सुनिये। भगवान शिव जी ने भी मुझसे यह बात पहले पूछी थी, किन्तु इस लीला की मुझे कोई भी जानकारी नहीं है। ऐसी अवस्था में मैं आपसे कैसे कह

सकता हूँ?

कहूं तमने सांभलो मारी वात, ए वचन रखे मुखथी करो प्रकास।
लखमीजी तमे कहो तेम करूं, म्हारू आप नथी कांई तमथी परूं।।२५।।

मैं आपसे जो बात कह रहा हूँ, उसे सुनिए। आप अपने मुख से इस प्रकार की बात न कहें। लक्ष्मी जी! आप जैसा कहें, मैं वैसा ही करने के लिये तैयार हूँ। मैं आपसे कोई अलग नहीं हूँ।

मुखथी वचन रखे ओचरो, नहीं तो घणूं थासे खरखरो।
चौद भवननी पूछो वात, ते तमने कहूं विख्यात।।२६।।

आप अपने मुख से यह बात न कहें, अन्यथा आपको बहुत अधिक दुःख होगा। यदि आप चौदह लोकों की कोई बात पूछती हैं, तो उसे मैं विस्तारपूर्वक बता सकता

हूँ।

रखे आसंका आणो एह, एह रखे राखो संदेह।

लखमीजी तमे करो करार, मारा मुखथी वचन न आवे बहार।।२७।।

लक्ष्मी जी! इस विषय में कोई संशय न रखिये और शान्तिपूर्वक रहिये। मेरे मुख से उस लीला के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा जा सकता। मेरे इस कथन पर आप नाम मात्र भी संशय न करें कि मैं आपसे कुछ छिपा रहा हूँ।

त्यारे लखमीजी दुखाणा घणूं, मनसूं जाणे हूं केही पेर करूं।

मोसूं तां राख्यो अंतर, हवे करीस हूं केही पर।।२८।।

यह सुनकर लक्ष्मी जी बहुत दुःखी हो गयीं। वे अपने मन में सोचने लगीं कि अब मैं क्या करूँ? मेरे प्रियतम

अवश्य ही मुझसे छिपाव रखते हैं। ऐसी अवस्था में मैं अब क्या करूँ?

नेणे आंसू बहु जल झरे, अने वली वली रमा विनती करे।
धणी ए अंतर तां में न खमाय, जीव मारो आकुल व्याकुल थाय।।२९।।

लक्ष्मी जी की आँखों से आँसू बहने लगे और वे बार-बार भगवान विष्णु से प्रार्थना करने लगीं कि प्रियतम! आप मुझसे जो भेद छिपा रहे हैं, वह सहन नहीं हो रहा है। व्याकुलता के कारण मेरा जीव बहुत दुःखी हो रहा है।

ए दुखतां में सहयो न जाय, अने कालजडूं मारूं कपाय।
कंपमान थई कलकले, करे निस्वास अंतस्करन गले।।३०।।

अब मुझसे यह दुःख सहा नहीं जा रहा है। मेरा हृदय दुःख से फटा जा रहा है। यह कहते-कहते लक्ष्मी जी

का शरीर काँपने लगा और वे रोने लगीं। उनके हृदय की पीड़ा से गहरी साँसों के साथ आँसू बहने लगे।

हवे जो धणी करो मारी सार, तो ए वचन केहेवुं निरधार।
तमे घणवे मूने वारया सही, अनेक पेरे सिखामण कही।।३१।।

लक्ष्मी जी कहती हैं कि हे धनी! यदि आप मेरी सुधि लेना चाहते हैं, तो आपको वह भेद मुझे निश्चित रूप से बताना होगा। आपने मुझे जानने से बहुत अधिक रोका है और तरह-तरह की सिखापन दी है।

पण मारो जीव केमे नव रहे, लखमीजी वली वली एम कहे।
त्यारे वली बोल्या श्री भगवान, लखमीजी तूं निस्चे जाण।।३२।।

किन्तु, वह रहस्य जाने बिना मेरा जीव किसी भी प्रकार से नहीं रह सकता है। लक्ष्मी जी यही बात बार-बार

कहती रहीं। तब विष्णु भगवान कहने लगे कि लक्ष्मी जी! आप यह बात निश्चित रूप से जान लीजिए।

जो कोटाण कोट करो प्रकार, तो एटलूं तमे जाणो निरधार।
मारी जिभ्याए न वले एह वचन, ए दृढ करो जीव ने मन।।३३।।

भले ही आप करोड़ों उपाय क्यों न कर लें, फिर भी मेरी जिह्वा उस अखण्ड लीला के विषय में एक शब्द भी नहीं कह सकती है। इस बात को आप अपने जीव के मन में दृढ़ कर लीजिए तथा इस अटल सत्य को मान लीजिए।

हवे लखमीजी कहे सांभलो राज, मारा जीवने उपनी अति दाझ।
स्यो वांक तमारो धणी, कांई अप्राप्त दीसे अम तणी।।३४।।

अब लक्ष्मी जी कहती हैं कि मेरे प्रियतम! मेरी बात

सुनिए। मेरे जीव में वहाँ की लीला के विषय में जानने की इच्छा रूपी प्रचण्ड अग्नि धधक रही है। इसमें आपका कोई भी दोष नहीं है। मुझमें ही उसे जानने की पात्रता नहीं है।

हवे सरीर मारो केम रहे, जीव मारो मूने घणूं दहे।
हवे अग्यां मागूं मारा धणी, करूं आरंभ तपस्या तणी।।३५।।

अब मेरा यह शरीर कैसे रह सकता है। अपनी इच्छा रूपी अग्नि में मेरा जीव जलन की भयंकर पीड़ा को झेल रहा है। मेरे प्रियतम! अब मैं आपसे यह आज्ञा माँगती हूँ कि अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये अब मैं तपस्या करूँ?

त्यारे भगवानजी बोल्या तत्काल, लखमीजी म लावो वार।
त्यारे कलप्यो जीव दुख अनंत करी, उपनो वैराग सोक मन धरी।।३६।।

तब विष्णु भगवान तुरन्त बोले कि लक्ष्मी जी! देर न कीजिए। तब लक्ष्मी जी बहुत अधिक दुःख का अनुभव करने लगीं। उनके मन में संसार से वैराग्य एवं प्रियतम से अलग होने का दुःख उत्पन्न हो गया।

जीवने आसा पूरण हती घणी, जाणुं मूने छेह नहीं दिए मारो धणी।
चरणे लागी लखमीजी चाल्या, अने रूदन करे जाय पाला पल्या।।३७।।

लक्ष्मी जी के मन में ऐसी धारणा थी कि मेरे प्रियतम मुझे कभी अपने से अलग नहीं होने देंगे। किन्तु परिस्थिति को विपरीत देखकर उन्होंने अपने पतिदेव के चरणों में प्रणाम किया और रोते हुए पैदल ही चल पड़ीं।

एणे समे विरह कीधो अति जोर, ते हूं केटलो कहूं बकोर।
एक ठामे बेठा दमे देह, श्री भगवानजीसुं पूरण सनेह।।३८।।

इस समय उन्होंने अपने प्रियतम के लिये इतना अधिक विरह और रुदन किया कि उसका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ। वे तप करने के लिये एक स्थान पर बैठ गयीं और भगवान विष्णु के प्रति पूर्ण प्रेम रखते हुए तपस्या से शरीर को कष्ट देने लगीं।

वाए तडको टाढक नव गणे, करे तपस्या जोर अति घणे।
सनेह धरी बेठा एकांत, एटले सात थया कल्पांत।।३९।।

उन्होंने अपनी अति कठिन तपश्चर्या में वायु, धूप, तथा शीत के कष्टों की जरा भी चिन्ता नहीं की। वे एकान्त में अपने प्रियतम के प्रति प्रेम में तप करती रहीं। इस प्रकार, सात कल्पान्त (सात दिन) बीत गये।

त्यारे ब्रह्मा ने खीर सागर मली, आव्या वैकुंठ भगवानजी भणी।
एवडो स्वामीजी स्यो उतपात, लखमीजी तप करे कल्पांत सात।।४०।।

तब ब्रह्मा जी और क्षीर सागर दोनों मिलकर वैकुण्ठ में भगवान विष्णु के पास आये और बोले कि हे स्वामी जी! आप दोनों के मध्य यह कैसा विवाद चल रहा है कि लक्ष्मी जी को तप करते हुए सात कल्पान्त (सात दिन) व्यतीत हो चुके हैं।

त्यारे भगवानजी एम बोल्या रही, जे वांक अमारो कांइए नहीं।
स्वामी तोहे वचन तमने केहेवाय, जे लखमीजी घणूं दुखी थाय।।४१।।

तब भगवान विष्णु ने कहा कि इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है। तब ब्रह्मा जी और क्षीर सागर ने कहा कि हे स्वामी जी! फिर भी आपसे हम यह बात कहते हैं कि लक्ष्मी जी बहुत अधिक दुःखी हैं।

एवडो रोष तमे मां धरो, लखमीजी पर दया करो।

तमे स्वामी मोटा दयाल, लखमीजी दुख पामे बाल।।४२।।

आप इस प्रकार क्रोध न करके लक्ष्मी जी पर दया करें। हे स्वामी जी! आप तो अति दयालु हैं। आपकी अर्धांगिनी लक्ष्मी जी अबोध होने से बहुत अधिक दुःख उठा रही हैं।

अधखिण एक म लावो वार, लखमीजी तेडो तत्काल।

चरण ग्रह्या तिहां खीर सागरे, वली वली ब्रह्मा विनती करे।।४३।।

अब आप आधे क्षण की भी देरी किये बिना लक्ष्मी जी को बुलाकर यहाँ (अपने पास) लायें। यह कहते हुये क्षीर सागर ने भगवान विष्णु के चरण पकड़ लिये। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा जी भी बारम्बार प्रार्थना करते रहे।

लखमीजी लगे चालो सही, तेडी आविए तिहां लगे जई।
त्यारे आव्या चाली श्री भगवान, लखमीजी बेठा जेणे ठाम।।४४।।

उन दोनों ने भगवान से निवेदन किया कि जहाँ पर लक्ष्मी जी हैं, वहाँ आप अवश्य चलिये। हम उन्हें वहाँ से बुलाकर लायें। तब भगवान विष्णु उनके साथ चलकर वहाँ आये, जहाँ लक्ष्मी जी विराजमान थीं।

त्यारे लखमीजीए कीधां परणाम, त्यारे वली बोल्या श्री भगवान।
लखमीजी तमे चालो घरे, त्यारे वली रमा वली ओचरे।।४५।।

लक्ष्मी जी ने उन सभी को प्रणाम किया। तब भगवान विष्णु ने उनसे कहा– "लक्ष्मी जी! आप घर चलिये।" प्रत्युत्तर में लक्ष्मी जी ने पुनः वही बात कही।

म्हारा धणी तमे कहो तेज वचन, जीव घणूं दुख पामे मन।
जो तप करो कल्पांत एकवीस, तोहे न वले जिभ्या एम कहे जगदीस।।४६।।

मेरे धनी! आप मुझे उसी लीला एवं धाम धनी की बात बतायें, जिसका आप ध्यान करते हैं। इसके बिना मेरा मन बहुत दुःखी हो रहा है। यह सुनकर भगवान विष्णु ने कहा कि यदि आप इक्कीस कल्पान्त (२१ दिन) तक भी तप करें, तो भी मेरी जिह्वा वहाँ के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकती है।

पण देखाडीस हूं चेहेने करी, त्यारे तमे लेजो चित धरी।
त्यारे ब्रह्मा ने खीर सागर बे, लखमीजीने वचन कहे।।४७।।

किन्तु मैं आपको लीला करके दिखाऊँगा, उस समय आप उसे अपने हृदय (चित्त) में बसा लीजिएगा। तब ब्रह्मा जी और क्षीर सागर दोनों ने ही लक्ष्मी जी से ये

बातें कहीं।

लखमीजी उठो तत्काल, दया कीधी स्वामी दयाल।
हवे रखे तमे हठ करो, आनंद मनमां अति घणो धरो।।४८।।

लक्ष्मी जी! अब तुम तुरन्त उठो। भगवान ने अपार दया की है। अब तुम किसी भी प्रकार का हठ न करके अपने मन में अत्याधिक आनन्दित होओ।

त्यारे लखमीजी लाग्या चरणे, एम तेडी आव्या आनंद अति घणे।
ब्रह्मा ने खीर सागर वल्या, चरणे लागी अस्थानक आव्या।।४९।।

तब लक्ष्मी जी ने भगवान के चरणों में प्रणाम किया। इस प्रकार, विष्णु भगवान अति आनन्दपूर्वक लक्ष्मी जी को अपने निवास पर लेकर आये। ब्रह्मा एवं क्षीर सागर भी भगवान विष्णु के चरणों में प्रणाम करके अपने-अपने

निवास स्थान पर चले गये।

हवे एह विचारी तमे जो जो साथ, न वली जिभ्या वैकुंठ नाथ।

ग्रही वस्त भारे करी जाण, नेठ वचन नव कहया निरवाण।।५०।।

हे साथ जी! अब आप इस घटनाक्रम के सम्बन्ध में विचार करके देखिए कि बेहद की उस अखण्ड लीला के सम्बन्ध में वैकुण्ठ के स्वामी विष्णु भगवान भी कुछ नहीं कह सके। बेहद के ज्ञान को अति गरिमामयी मानकर उन्होंने मात्र अपने हृदय में ही ग्रहण किये रखा, किन्तु उसके सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा।

नहीं तो वैकुंठ नाथने केही खबर, विना तारतम सूं जाणे मूलघर।

बीजिए खबर कांइए नव कही, तो पण निध भारे करी ग्रही।।५१।।

अन्यथा तारतम ज्ञान के बिना भगवान विष्णु न तो

अपने मूल घर बेहद के विषय में कुछ जान सकते हैं और न किसी अन्य माध्यम से उन्हें इसकी जानकारी भी मिल सकती है। अक्षर ब्रह्म की सुरता होने से उन्हें जो कुछ भी थोड़ा सा अनुभव था, उसे भी उन्होंने किसी से कहा नहीं, अपितु उसे बहुत ही महत्वपूर्ण मानकर अपने हृदय में बसाये रखा।

भारे बिना भार न उपडे, मुखथी वचन जुआ केमे नव पडे।
ज्यारे थयो कृष्ण अवतार, रूकमणी हरण कीधूं मुरार।।५२।।

बिना सम्बन्ध के (ईश्वरी या ब्रह्मसृष्टि के बिना) अखण्ड ज्ञान रूपी निधि का बोझ न तो उठाया जा सकता है और न मुख से उसके विषय में कुछ कहा ही जा सकता है। जब श्री कृष्ण जी का अवतार हुआ और उन्होंने रुक्मिणी जी का हरण किया।

माधवपुर परण्या रूकमणी, धवल मंगल गाए सुहागणी।
गातां गातां लीधूं वृज नूं नाम, त्यारे पाछा भोम पड्या भगवान।।५३।।

माधवपुर में उनसे विवाह किया। विवाह के समय जब स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं, तो अचानक ही व्रज लीला का भी प्रसंग आ गया, जिसे सुनकर भगवान श्री कृष्ण मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े।

त्यारे सहु कोई पाम्यो मन अचरज, एम लखमीजीने देखाड्यूं वृज।
समा थई बेठा भगवान, लखमीजीनी एम भाजी हाम।।५४।।

यह दृश्य देखकर सबके मन में गहन आश्चर्य हुआ। इस प्रकार, श्री कृष्ण रूपधारी भगवान विष्णु ने रुक्मिणी अर्थात् लक्ष्मी जी को दर्शाया कि वे अखण्ड व्रज के स्थान (अव्याकृत के महाकारण) में स्थित प्रतिबिम्बित व्रज लीला में ध्यान किया करते हैं। तत्पश्चात् विष्णु

भगवान मूर्च्छारहित होकर बैठ गये और इस लीला द्वारा उन्होंने लक्ष्मी जी की प्रबल इच्छा को पूर्ण किया।

ए विचार तमे जो जो रही, ए लीला सुकजीए कही।
जे लीला कीधी जगदीस, ते मांहें आपण हुता सरीख।।५५।।

हे साथ जी! मेरे इस कथन पर विचार कीजिए। रुक्मिणी जी के हरण एवं विवाह की लीला का वर्णन शुकदेव जी ने किया है। धाम धनी ने श्री कृष्ण जी के जिस तन में विराजमान होकर व्रज लीला की थी, उसे भगवान विष्णु ने ही धारण किया था। उस व्रज लीला में हम आत्मायें ही गोपियों के तनों में थीं।

तो वचन तमने केहेवाय, नहीं तो अर्ध लवो नव प्रगट थाय।
आ वृजवालो वालो ते एह, वचन आपणने कहे छे जेह।।५६।।

यही कारण है कि आपको ये बातें कही जा रही हैं, अन्यथा इनका आधा शब्द भी किसी के मुख से कहा नहीं जा सकता है। मेरे (श्री इन्द्रावती जी के) धाम-हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी के इन वचनों को जो कह रहे हैं, वे वही धाम धनी हैं, जिन्होंने व्रज में हमारे साथ लीला की थी।

रास मांहें रमाड्या जेणे, प्रगट लीला आ कीधी तेणे।
श्री धाम तणा धणी छे जेह, तेड़वा आपण ने आव्या तेह।।५७।।

श्री राज जी के जिस आवेश स्वरूप ने नित्य वृन्दावन में हमारे साथ रास लीला की थी, वे ही अब मेरे धाम-हृदय में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर ज्ञान की यह लीला कर रहे हैं। परमधाम में विराजमान हमारे प्रियतम ही हमें बुलाने के लिये आये हैं और मेरे अन्दर बैठकर तारतम

ज्ञान के प्रकाश में सबको जगा रहे हैं।

ते माटे तमने कह्यूं द्रष्टांत, जीवसूं वचन विचारो एकांत।
ठेकाणूं बैकुण्ठ विश्राम, केहेवा वालो श्री भगवान।।५८।।

हे साथ जी! यह दृष्टान्त मैंने इसलिये कहा है। एकान्त में बैठकर इसका अपने हृदय में विचार कीजिए। इस दृष्टान्त में ज्ञान का कथन करने वाले विष्णु भगवान हैं जो वैकुण्ठ में रहते हैं।

लखमीजी तिहां श्रोता थया, केटलू खप करीने रहया।
तोहे न पाम्या एक वचन, अने तमे कीहू लई बेठा छो धन।।५९।।

लक्ष्मी जी श्रोता हैं, जो अथक प्रयास करने पर भी बेहद के ज्ञान का एक शब्द (वचन) भी नहीं सुन पाती हैं। क्या आपने कभी सोचा भी है कि आपके पास कौन

सा धन है?

हजिए न टालो तमे भरम, अने जीव कांय नव करो नरम।
आ नौतनपुरी कहिए नगरी, जिहां श्री देवचंदजीए लीला करी।।६०।।

आप अभी भी अपने संशयों को क्यों नहीं मिटा रहे हैं और अपने जीव को कोमल हृदय वाला क्यों नहीं कर रहे हैं? इस नवतनपुरी नगरी में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने लीला की है।

आ प्रगट वचन कीधां अपार, तोहे न वली तमने सार।
अमल उतारो तमे जोपे करी, अने जीव जगाओ वचन चित धरी।।६१।।

अनन्त परमधाम का ज्ञान देने वाले वचनों को उन्होंने कहा है, फिर भी आपको सुधि नहीं हुई। इन वचनों का विचार कर माया के नशे को दूर कीजिए और इन वचनों

को आत्मसात् करके अपने जीव को जाग्रत कीजिए।

माया जुओ तमे अलगां थई, तारतमने अजवाले रही।
जे वाणी श्री धणिए कही, ते जीवने वचन केम दीजे नहीं।।६२।।

तारतम ज्ञान के अलौकिक प्रकाश में अपने निज स्वरूप को माया से सर्वथा अलग देखिए। धाम धनी ने मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर यह जो तारतम वाणी कही है, उसे आप अपने जीव के हृदय तक क्यों नहीं पहुँचाते हैं?

हवे गुण सघलाने करो हाथ, अने ओलखो प्राणनो नाथ।
हवे एटलो जीवसूं करो विचार, जे केहा वचन आ कहया आधार।।६३।।

हे साथ जी! आप माया के सभी गुणों को अपने वश में कर लीजिए तथा अपने जीवन के आधार अपने प्राणधन

अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की पहचान कीजिये। अब अपने जीव के हृदय में इस बात का विचार कीजिए कि हमारे धाम धनी ने हमारे लिये तारतम वाणी में क्या कहा है।

जिहां लगे जीव न विचारे मन मांहें, तो चोपडे घडे जेम छांटो थाए।
हवे इंद्रावती कहे सांभलो वात, चरणे लागूं मारा धामना साथ।।६४।।

जिस प्रकार चिकने घड़े पर छींट (किसी रंग का निशान) नहीं लगती है, उसी प्रकार जब तक जीव तारतम वाणी के वचनों का विचार करके अपने संशय रूपी विकारों को दूर नहीं करता, तब तक उसके हृदय में प्रियतम के लिये अटूट विश्वास एवं समर्पण पैदा नहीं हो सकता। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे परमधाम के सुन्दरसाथ जी! मैं आपके चरणों में प्रणाम करके एक

बात कहती हूँ, उसे सुनिये।

वली वली नहीं आवे ए अवसर, रखे हाम लई जागो घर।
थोडा मांहें कहयूं छे अति घणूं, अने जाण्यूं धन कां निगमो आपणूं।।६५।।

यह स्वर्णिम अवसर बार–बार प्राप्त नहीं होने वाला है। अपनी इच्छा पूरी कर जाग्रत होइये तथा परमधाम चलिए। थोड़े शब्दों में ही मैंने बहुत अधिक कह दिया है। आप अपने अखण्ड धन को जानकर भी क्यों खो रहे हैं?

आगे आपण विहिला थया, तो श्री देवचन्दजीए वंचया।
नहीं तो केम वंचे आपणने एह, जो राख्यो होत कांई आपणे सनेह।।६६।।

पहले भी हम सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से विमुख हो चुके हैं, जिसके कारण वे हमसे ओझल हो गये। यदि हमने परमधाम के सम्बन्ध से उनसे यथार्थ रूप में प्रेम

किया होता, तो भला वे हमें छोड़कर जाते ही क्यों?

हवे वली आव्या बीजी देह धरी, आपण ऊपर दया अति करी।
चेतन करी दीधो अवसर, लई लाभ ने जागिए घर।।६७।।

अब प्रियतम प्राणनाथ ने हमारे ऊपर अपार दया की है और दूसरी बार श्री मिहिरराज के कलेवर (तन) में आ गये हैं। इस अवसर पर तारतम वाणी द्वारा उन्होंने हमें सावचेत भी कर दिया है। इसका लाभ लेकर अब हमें जाग्रत होना है तथा एकसाथ निज घर चलना है।

मनोरथ सर्वे पूरण थाए, जो आ द्रष्टांत जुओ जीव मांहें।
ते माटे इंद्रावती कहे फरी फरी, जो धणिए कृपा तमने करी।।६८।।

हे साथ जी! यदि आप इस दृष्टान्त को अपने जीव के हृदय में विचार कर देखें, तो आपको यह विदित होगा कि

आपकी जो भी इच्छायें हैं, वे सभी धनी के चरणों में अवश्य पूर्ण होती हैं।

प्रकरण ।।२९।। चौपाई ।।७४१।।

प्रगटवाणी प्रकासनी – राग सामेरी

प्रकाश की प्रकटवाणी

सुईने सुई सूता सूं करो रे, आ विखम ठिकाणा मांहें जी।
जागीने जुओ उठी आप संभारी, एणी निद्राए लेवाणां कांय जी।।१।।

हे साथ जी! माया के इस दुःखमयी संसार में सोते रहकर आप क्या करेंगे? तारतम वाणी के प्रकाश में आप जाग्रत होकर अपने मूल स्वरूप का चिन्तन कीजिए। इस मायावी निद्रा में भला कौन सी वस्तु लेने (ग्रहण करने) योग्य है?

एणी निद्राए जे कोई लेवाणा, नहीं ते आपणा साथी जी।
एणी रे भोमे घणां छेतरिया, तमे उठो इहां थकी जी।।२।।

नींद के इस मायावी ब्रह्माण्ड से जो कुछ भी (लौकिक वस्तु) लेना चाहते हैं, वे अपने परमधाम के सुन्दरसाथ नहीं है। इस मायावी भूमिका में बहुत से लोग ठगे जा चुके हैं, इसलिये आप इसके मोह का परित्याग कीजिए और जाग्रत होइये।

नहीं रे निद्रा कोई घेण घारण, निद्रा होय तो जगव्यो जागे जी।
उठाडी जीवने ऊभो कीजे, वली न मूके पोतानो माग जी।।३।।

यह कोई सामान्य सी नींद नहीं है, बल्कि एक प्रकार का गहरा नशा है। यदि सामान्य सी नींद होती, तो जगाने पर कोई जाग भी जाता। तारतम वाणी द्वारा जीव को नींद से उठाकर प्रियतम के अटूट विश्वास पर दृढ़ कीजिए और जागनी के अपने उस पुनीत मार्ग को कभी भी न छोड़ें।

तेज गेहेन ने तेहज घारण, तेज घूटन अधको आवे जी।
एणी भोंमने ए निद्रा मांहेंथी, धणी बिना कोण जगावे जी।।४।।

यह मूर्च्छित सा कर देने वाला गहरी निद्रा का ब्रह्माण्ड है, जिसमें जीव को घुटन होने लगती है। मायावी नींद के इस संसार में भला धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कौन है, जो हमें जगाये?

एणे ठेकाणे तां कोई न उगरियो, तमे सूता तेणे ठाम जी।
ए ठाम घणूं विखम लागसे, प्रगट कहूं गत भोम जी।।५।।

इस मायावी ब्रह्माण्ड से कोई भी जीव बाहर नहीं निकल सका है, जबकि आप इसी में सो रहे हैं। इस संसार की वास्तविकता के विषय में मैं प्रत्यक्ष रूप से यही कहूँगी कि आपको यह जगत बहुत ही दुःखदायी लगेगा।

विखनी भोम अने विख पाथरियूं, आहार करे विख वेल जी।
सरीर विखनूं मांहेंली जोगवाई विखनी, एक मांहें ते जीव नेहे केवल जी।।६।।

यहाँ विष की धरती है और विष की ही शय्या है। आहार भी विष की बेल का ही है। शरीर भी माया के विष का है तथा इसके सभी अंग-प्रत्यंग विष के ही हैं। इनमें से केवल जीव ही ऐसा है, जो चेतन होने से विषरहित है।

विखनी तलई ने विखना ओढना, विखनो ढोलियो ढलाए जी।
विखनो ओसीसो ने विखनो ओछाड, वली विजणे ते विखनो वाए जी।।७।।

इस संसार में बहुत प्रिय लगने वाले गद्दे एवं रजाई विष के हैं। पलंग एवं उस पर बिछाया जाने वाला बिछौना भी विषमयी है। कोमल तकिया एवं चद्दर भी विष की है। यहाँ तक कि पँखा तथा उससे निकलने वाली शीतल हवा भी विष से ही परिपूर्ण है।

जागतां विखने सुपने विख रे, निद्रामां विख निरवाण जी।
बाहेर तणो विख केही पेरे कहूं रे, तेतां वाए ते विख उधाण जी।।८।।

चाहे हमारी जाग्रत अवस्था हो या स्वप्नावस्था अथवा सुषुप्ति की अवस्था, सबमें विष का ही एकछत्र साम्राज्य फैला होता है। इस शरीर से परे बाहर के विष का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? ऐसा लगता है जैसे विषैली हवा की आँधी चल रही है।

वस्तर विखने भूखण विख रे, सर्वा अंगे विख साज जी।
ए विख जीवने गेहेन घारण रे, ते केम टले विना श्रीराज जी।।९।।

शरीर को सजाने वाले वस्त्र एवं आभूषण सभी विषमयी हैं। शरीर को सजाने की सम्पूर्ण सामग्री विष की ही है। माया के इस विष ने जीव को अज्ञानता की गहरी निद्रा में सोने के लिये विवश कर दिया है। यह तो निश्चित है कि

बिना श्री राज जी की कृपा के माया का विष हमसे नहीं हट सकता।

जोर करी तमे जगवो रे जीवने, नहीं सूतानी आ भोम जी।
जेमने सुइए तेम वाधे विस्तार, पछे नहीं उठाय केमे जी।।१०।।

हे साथ जी! आप अपने जीव को अपनी पूरी शक्ति लगाकर जाग्रत कीजिए। यह संसार माया में सोने के लिये नहीं बना है। आपका जीव जितना ही सोयेगा, उतना ही उसके अन्दर मायावी विष का विस्तार बढ़ता जायेगा। बाद में उसे किसी भी प्रकार से जाग्रत कर उठा पाना सम्भव नहीं होगा।

ए भोमलडी तमे कांय न मूको, हजी नथी घारण जाती जी।
एणी भोमे दुखडा दीसे घणा रे, ते तमे जुओ कां आघी जी।।११।।

इस मायावी ब्रह्माण्ड को आप छोड़ क्यों नहीं रहे हैं? आपकी नींद अभी भी जा नहीं रही है। इस संसार में बहुत अधिक दुःख दिखायी दे रहे हैं। उन्हें आप (दूर रहकर) क्यों नहीं देखते?

आघी जुए दुख अनेक उपजसे, ते माटे उठो तत्काल जी।
जल ना जीवनो घर जल मांहें, जेम रहे करोलियो मांहें जाल जी।।१२।।

दूर रहकर देखने पर भी अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न हो जायेंगे, इसलिये आप इसी क्षण जाग्रत हो जाइये (उठ जाइये)। जल के जीव का घर जल में वैसे ही होता है, जैसे मकड़ी अपने बनाये जाल को ही अपना घर मानकर रहा करती है।

सहु कोई जाली गूंथे पोतानी, अने मांहेना मांहें मुझाय जी।
मुझाणा पछी दुख अनेक देखे, घणूं दुखे जीवड़ो जाय जी।।१३।।

मकड़ी की तरह सभी जीव अपने मायावी जाल को स्वयं बनाते हैं और पुनः उसी में फँस जाते हैं। उलझ जाने के पश्चात् उन्हें अनेक प्रकार के दुःखों का भोग करना पड़ता है और बहुत अधिक दुःख देखकर अपने शरीर का त्याग करना पड़ता है।

घणूं दुख देखे जीव जातां, वली ते गूंथे तत्काल जी।
केम दोष दीजे करोलियाने, एहेना घर थया मांहें जाल जी।।१४।।

शरीर छोड़ते समय जीव बहुत अधिक दुःख का अनुभव करता है, फिर भी वह तुरन्त माया का जाल बुनने की प्रवृत्ति का परित्याग नहीं करता। ऐसी अवस्था में उस मकड़ी को भला कैसे दोषी बनाया जा सकता है,

जिसका निवास ही जाल के अन्दर होता है?

आपणां घर तां नहीं एणे ठामे, चौद भवनमां क्यांहे जी।
ते माटे वालोजी करे रे पुकार, केहे स्या ने सूता छो आंहे जी।।१५।।

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी हमारा घर नहीं है। इसलिये धाम धनी तारतम वाणी से आपको पुकार–पुकार कर कह रहे हैं कि हे साथ जी! आप इस मायावी संसार में क्यों सो रहे हैं?

ओल्या दुखना घरतेपण मेले नहीं, तमे सुखना घर न संभारजी।
सघला ग्रन्थ पाए साख पुरावी, साथ हवे तो दोष तमारो जी।।१६।।

जब दुःख भोगने पर भी जीव अपने दुःखमयी घर को नहीं छोड़ते हैं, तो आप सुख का सागर कहे जाने वाले अपने मूल घर परमधाम को याद क्यों नहीं करते हैं? हे

साथ जी! सभी ग्रन्थों से आपको इस संसार के दुःखमयी होने की साक्षी मिल चुकी है। अब भी यदि आप इसे नहीं छोड़ते हैं, तो निश्चित रूप से आप ही दोषी कहे जायेंगे।

बेहद घर ने बेहद सुख रे, बेहद मारा श्री राज जी।
अविचल सुख अनंत देवाने, हूं जगवुं तमारे काज जी।।१७।।

योगमाया के ब्रह्माण्ड से परे अनन्त परमधाम ही हमारा मूल घर है। यहाँ के सुख अनन्त हैं और हमारे प्रियतम श्री राज जी की महिमा भी अनन्त है। परमधाम के अखण्ड एवं अनन्त सुखों का आपको रसास्वादन कराने के लिये ही मैं आपको जगा रही हूँ।

पिउजी पुकार करी करी थाक्या, तमे कांय न जागो मारा साथ जी।
ऊगीने दिन आथमवा आव्यो, अने पछेते पडसे आडी रात जी।।१८।।

मेरे जीवन के आधार सुन्दरसाथ जी! अतीत में श्री देवचन्द्र जी के तन से पुकार–पुकार कर मेरे धाम धनी थक गये, किन्तु अभी भी आप जाग्रत क्यों नहीं हो पा रहे हैं। वर्तमान समय में ज्ञान का जो दिन उगा हुआ है, वह अस्त भी होगा। इसके पश्चात् अज्ञानता की रात्रि का भी अन्धकार फैल जायेगा।

रात पडी त्यारे कोई नव जागे, कोई न करे पुकार जी।
निसाए निद्रा जोर थासे, पछे वाधसे ते विख विस्तार जी।।१९।।

रात्रि का समय आ जाने पर न तो कोई जाग्रत होगा और न कोई आपको जाग्रत होने के लिये पुकार ही लगायेगा (कहेगा)। रात्रि के समय नींद की अधिकता और बढ़ जायेगी, जिसके परिणाम स्वरूप हृदय में माया का विष भी और अधिक हो जायेगा।

संझा लगे रहया धणी आपण माटे, ते तमे कांय न संभारो जी।
ओलखी धणी ने सुखडा लीजिए, तमे आपोपूं वारणे वारो जी।।२०।।

सन्ध्या समय तक प्रियतम (प्राणनाथ) हमारे लिये प्रत्यक्ष रूप से साथ रहेंगे। इसलिये आप अपने स्वरूप को याद क्यों नहीं करते हैं? प्रियतम के स्वरूप की पहचान करके स्वयं को उनके ऊपर न्योछावर कर दीजिए तथा अपनी आत्मा का सुख लीजिए।

पुकार करतां रात पडी रे, वालो रात न रहे निरधार जी।
जेणे रे तमने एवा भोलवया, ते वेरीडा कां न अविधारो जी।।२१।।

पुकार करते-करते रात्रि का समय हो जायेगा। ऐसे समय में यह निश्चित है कि प्रियतम प्रत्यक्ष रूप से रात्रि में नहीं रहेंगे। जिस माया ने बैरी बनकर आपको इतना अधिक भटकाया है, आप उसकी पहचान क्यों नहीं

करते हैं?

आ भोम मूकतां जे आडी करे रे, घेर जातां जे कोई वारे जी।
ए वेरीडा तमारा प्रगट पाधरा, ते तां जुओने विचारी जी।।२२।।

इस मायावी संसार का मोह छोड़ने में जो बाधा उत्पन्न करे तथा सुरता द्वारा परमधाम जाने से जो रोकता है, उसे अपना प्रत्यक्ष शत्रु ही मानना चाहिये। हे साथ जी! आप इस सम्बन्ध में विचार करके देखिये।

ए वेरीडा घणूं विख भरियां रे, जेणे खाधो ते सर्व संसार जी।
ते तमने भूलवे छे जुई भांते, पण तमे रखे लेवाओ आवार जी।।२३।।

इस शत्रु में बहुत अधिक विष भरा हुआ है। इसने सारे संसार को निगल लिया है। यह शत्रु आपको अलग ही प्रकार से भुला रहा है, किन्तु आपको इस बार उसके

धोखे में नहीं आना चाहिये।

वली तमने देखाडूं दुरजन, जेणे न मूक्यो कोय जी।
ते तमने प्रकासूं रे प्रगट, तारा माहेला गुण तूं जोय जी।।२४।।

अब मैं आपको उस दुष्ट शत्रु की पहचान कराती हूँ, जिसने किसी को भी छोड़ा नहीं है। उसे मैं आपके सामने स्पष्ट रूप से दर्शाती हूँ। आप अपने अन्दर विद्यमान मायावी गुणों को देखिए।

वली गुण इंद्री जुओ रे जातां, जे अवला वहे संसार जी।
ए वेरीडा विसेखे आपणां, ते तमे कांए न मारो जी।।२५।।

माया के गुणों (लोभ, तृष्णा, क्रोध, मोह आदि) तथा इन इन्द्रियों को देखिए जो उल्टी दिशा में मायावी संसार की ओर भागी जा रही हैं। ये विशेष रूप से हमारे वैरी हैं।

आप इन्हें क्यों नहीं मार डालते हैं, अर्थात् इन्हें संसार से हटाकर प्रियतम परब्रह्म की ओर क्यों नहीं मोड़ देते हैं?

मारी ने मरडी भांजी करीने, वली जगवी करो तमे जोर जी।
गुण अंग इंद्री ज्यारे जीव जागसे, त्यारे करसे ते पाधरा दोर जी।।२६।।

इन शत्रुओं को तोड़-मरोड़कर और मारकर अर्थात् इन्हें शिथिल करके नष्ट प्राय कर दीजिये तथा स्वयं को जाग्रत करने के लिये शक्ति लगाइये (प्रयास कीजिए)। गुण, अन्तःकरण, तथा इन्द्रियों के साथ जब जीव भी जाग्रत हो जाएगा, तब वह धाम धनी की ओर लक्ष्य करके सीधे दौड़ने लगेगा।

वासना जाणीनें कहूं छूं वचन रे, आ जल ना जीवने कोण कहे जी।
वचन सुणी जे होय वासना, ते आणी भोमे केम रहे जी।।२७।।

हे साथ जी! मैं आपको परमधाम की आत्मा जानकर ही ये बातें कह रही हूँ। मोहजल के जीवों को भला ये बातें कौन कहेगा? मेरे इन वचनों को जो भी ब्रह्मात्मा सुन लेगी, भला वह इस मायावी संसार में क्यों रहेगी।

ए दुस्तर भोम घणूं रे दोहेली, वली ने वसेखे दुख रात जी।
ते माटे हूं करूं रे पुकार, मारो भली गयो मायामां साथ जी।।२८।।

कठिनाइयों से परिपूर्ण यह संसार बहुत ही दुःखमयी है। अज्ञानता की रात्रि में तो यह और कष्टमयी हो जाता है। इसलिये मैं यह बात पुकार-पुकारकर कह रही हूँ कि मेरा सुन्दरसाथ माया में डूब (मिल) गया है।

ततखिण रातडी आवी देखसो, मांहें प्रगट थासे अंधेर जी।
जीव अंधेर ज्यारे देखी मुझासे, त्यारे विखना ते आवसे फेर जी।।२९।।

अब आप शीघ्र ही उस रात्रि का आगमन देखेंगे, जिसमें अज्ञानता का भयंकर अन्धकार प्रकट हो जायेगा। उस अन्धकार में जीव उलझ जायेगा, परिणाम स्वरूप उसे माया के विष के चक्र का सामना करना पड़ेगा।

विख चढे फेर अनेक उपजसे, करम केरा जे दुख जी।
वली फरसे फेर अनेक काया, आखी रात चढसे फेर विख जी।।३०।।

हृदय में माया के विष का प्रवेश होने पर अनेक बार जन्म–मरण के चक्र में भटकना होगा, जिसमें अशुभ कर्मों के फलस्वरूप दुःख का भोग करना पड़ेगा। इस चक्र में अनेक बार शरीर धारण करने के कष्ट का कटु अनुभव होगा। सम्पूर्ण रात्रि भर माया के विष का प्रभाव

बना रहेगा।

मारो साथ होय ते तमे सांभलो, रखे आंही पाडो रात जी।
ए रातना दुख घणा रे दोहेला, पछे निद्रा उडसे प्रभात जी।।३१।।

जो परमधाम के मेरे सुन्दरसाथ हों, वे मेरी बात सुनें। इस जागनी लीला में रात्रि का अन्धकार आने ही न दीजिए। रात्रि में बहुत अधिक दुःख है। बाद में प्रातःकाल होने के बाद ही रात्रि समाप्त होगी।

प्रभात थासे अति वेगलो रे, रात छेडो केमे न आवे जी।
दुखनी रात घणूं जासे दोहेली, पछे वहाणू ते केमे न वाए जी।।३२।।

प्रातःकाल बहुत देर से होगा। रात इतनी लम्बी होगी कि ऐसा लगेगा जैसे अन्त ही नहीं है। दुःख की यह रात्रि बड़ी कठिनाई से व्यतीत होगी, जिसमें ऐसा अनुभव होगा

जैसे कि रात्रि के बाद प्रातःकाल आयेगा ही नहीं।

महाप्रले काल ज्यारे थासे, तिहां लगे रेहेसे अंधेर जी।
ते माटे पिउजी करे रे पुकार, तमे आवजो ते आणे सेर जी।।३३।।

महाप्रलय होने तक अज्ञानता की रात्रि का अन्धकार बना ही रहेगा। इसलिये धाम धनी आपको पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि हे साथ जी! आप परमधाम के सत्य मार्ग पर चलिये।

तारतमनूं अजवालूं लईने, वालो आव्या छे बीजी वार जी।
फोडी ब्रह्मांडने पाडयो मारग, आंही अजवालूं अपार जी।।३४।।

तारतम ज्ञान का उजाला लेकर अक्षरातीत दूसरे तन (श्री मिहिरराज जी) के अन्दर पुनः आ गये हैं। उन्होंने इस क्षर ब्रह्माण्ड से परे परमधाम का सीधा मार्ग दर्शाया

है। इसमें तारतम ज्ञान का अनन्त प्रकाश विद्यमान है।

पिउजी पधारया तेडवा तमने, तो थाय छे आटलो पुकार जी।
एम करतां जो नहीं मानो, तो वालो नहीं रहे निरधार जी।।३५।।

हे साथ जी! आपको परमधाम ले जाने के लिये ही धाम धनी स्वयं आये हैं, इसलिये आपसे इतना कहा जा रहा है। ऐसा करने पर भी यदि आप नहीं मानते हैं (माया में डूबे रहते हैं), तो निश्चित है कि प्रियतम हमारे मध्य से ओझल हो जायेंगे।

विखम वाट जल मांहें अंधेरी रे, तमने लागसे लेहेर निघात जी।
वलीने वसेके जीव बेसुध थासे, नहीं सांभलो ते घरनी वात जी।।३६।।

अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण इस भवसागर का मार्ग बहुत ही कष्टकारी है। इसकी लहरें आपको चोट

पहुँचायेंगी, जिससे आपका जीव बेसुध हो जायेगा और आप परमधाम की बातों को नहीं सुन सकेंगे। अतः यह आवश्यक है कि आप धाम धनी की पुकार को सुनें और उसके अनुसार ही अपना आचरण करें।

मछ गलागल मांहें छे सवला, अने पूरतणा प्रवाह जी।
दिस एके नव सूझे सागर मां, तमे रखे ते विहिला थाओ जी।।३७।।

इस भवसागर में बड़े-बड़े शक्तिशाली मगरमच्छ हैं और सागर का प्रवाह भी बहुत तेज है। इस भवसागर में कहीं कोई दिशा नहीं दिखायी पड़ती है। इसलिये हे साथ जी! आप अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत से कभी भी अलग न होइये।

तमे उठो ते अंग मरोडीने, म जुओ मायानो मरम जी।
धणी पधारया छे तम माटे, तमने हजी न आवे सरम जी।।३८।।

हे साथ जी! आप अपने अंगों को मरोड़कर अर्थात् आलस्य त्यागकर जाग्रत हो जाइए। माया के लुभावने रस (आनन्द) की ओर मत देखिए। आपको जगाने के लिये ही प्रियतम अक्षरातीत श्री मिहिरराज जी के तन में पधारे हैं। यह जानकर भी आपको लज्जा नहीं लग रही है कि हम माया में अभी तक क्यों सो रहे हैं?

ए निद्रा तमे केम रे उडाडसो, जिहां नहीं करो कोई पर जी।
ओलखी धणी तमे आप संभारी, जागी जुओ तमे घर जी।।३९।।

जब तक आप कोई प्रयास नहीं करते हैं, तब तक आप माया की इस नींद को कैसे छोड़ सकते हैं? अपने प्राणवल्लभ की पहचान करके मूल स्वरूप को याद

कीजिए और जाग्रत होकर अपने मूल घर (परमधाम) को देखिए।

ए रे अमल तमने केम रे उतरसे, जे जेहेर चढ्यूं अति भारी जी।
जिहां लगे जीवने वाण न लाग्यो, थाक्या ते धणी पुकारी जी।।४०।।

धाम धनी आपको जगाने के लिये तारतम वाणी से पुकार लगाते-लगाते थक चुके हैं। जब तक उनके शब्दों के तीर आपके जीव के हृदय में चुभते नहीं हैं, तब तक आप अपने अन्दर विद्यमान माया के नशे को कैसे हटा सकते हैं? आपके अन्दर तो माया का विष बहुत गहराई तक प्रवेश कर चुका है।

हवे जो जाणो घर पामूं पोतानूं, तो राखजो वैरागनी सेर जी।
सर्वा अंगे सुध सेवा करजो, एम जागसो पोताने घेर जी।।४१।।

अब आप यदि अपने घर को पाना (दर्शन करना) चाहते हैं, तो आपको संसार से वैराग्य की राह अपनानी पड़ेगी। यदि आप अपने सभी अंगों (अन्तःकरण) से प्रियतम की पहचान करके सेवा करते हैं, तो आप अपने मूल घर में जाग्रत होंगे अर्थात् अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम को देख लेंगे।

जो जाणो जीवने जगवुं रे आहीं, तो तां जो जो ते रास प्रकास जी।
एम केहेजो जीवने आ कह्यूं सर्व तूंने, त्यारे जीवने थासे अजवास जी।।४२।।

यदि आप अपने जीव को संसार में जगाना चाहते हैं, तो आपको रास एवं प्रकाश ग्रन्थ के वचनों का चिन्तन करके उन्हें व्यवहार में चरितार्थ करना होगा। अपने जीव को आप इस प्रकार समझाइये कि रास और प्रकाश ग्रन्थ में यह सब कुछ तुम्हारे लिये ही कहा गया है। यदि जीव

आपके इस निर्देश को मान लेता है, तो उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा।

एणे अजवाले जेहेर उतरसे, त्यारे जीव ते करसे जोर जी।
परआतम ने आतम जोसे, त्यारे टलसे ते तिमर घोर जी।।४३।।

तारतम ज्ञान (रास, प्रकाश) के उजाले में जीव के हृदय से माया का विष निकल जायेगा, तभी जीव स्वयं को जाग्रत करने के लिये अपनी पूरी शक्ति लगायेगा। ऐसा अवस्था में जब आत्मा अपने मूल तन परात्म को देखेगी, तो माया का घोर अन्धकार समाप्त हो जायेगा।

एणी पेरे तमे जीव जगवसो, त्यारे थासे ते जोत प्रकास जी।
प्रेमतणा पूर प्रघल आवसे, थासे ते अंधकारनो नास जी।।४४।।

इस प्रकार, जब आप अपने जीव को जाग्रत कर लेंगे,

तब आपके हृदय में प्रियतम की छवि की निर्मल ज्योति प्रकाशित होगी। हृदय में प्रेम की लहरें उछलने लगेंगी, जिसके परिणाम स्वरूप माया का अन्धकार पूर्णतया ही विनष्ट हो जायेगा।

कोमल चित करी वचन रूदे धरी, जो जो ते सर्व संभारी जी।
खरा जीवने वचन कहया छे, माया जीवने थासे ए भारी जी।।४५।।

हे साथ जी! आप अपने चित्त को कोमल बनाकर इन उपरोक्त वचनों को अपने हृदय में धारण कीजिए और इनका चिन्तन करके इन्हें याद कीजिए। ये बातें तो मात्र अखण्ड धाम की (ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि) आत्माओं के निर्मल जीवों के लिये ही कही गयी हैं। माया के कोरे जीवों के लिये इन वचनों को चरितार्थ करना (आचरण में उतारना) बहुत ही कठिन होगा।

माया जीव आंही टकी न सके रे, तेणे नहीं लेवाय ए वचन जी।
ए वचन घणुंऐ लागसे मीठा, पण रेहेवा न दे खोटानूं मन जी।।४६।।

माया के जीव हमारे बीच रह ही नहीं पाते, इसलिये वे इस ज्ञान को ग्रहण ही नहीं कर पाते हैं। यद्यपि उपरोक्त बातें बहुत मीठी लगेंगी, किन्तु यह पापी मन उन्हें हृदय में रहने ही नहीं देगा।

ब्रह्मांड माहेलो जीव जे होय रे, ते तां जो जो पोतानी वाटे जी।
बेहद जीव जे होय रे अमारो, आ वचन कहवाय ते माटे जी।।४७।।

यदि कोई इस क्षर ब्रह्माण्ड का जीव हो, तो वह अपनी वैकुण्ठ–निराकार की राह पर जा सकता है। जिन जीवों पर बेहद (ब्रह्मसृष्टियों तथा ईश्वरी सृष्टि) की हमारी सुरतायें बैठी हैं, यह ज्ञान उनके लिये ही कहा गया है।

वासनाने तां जीव न केहेवाय, घणुए दुख मूने लागे जी।
खोटानी संगते खोटू कहूं छूं, पण सूं करूं मान केमे जागे जी।।४८।।

परमधाम की आत्माओं को जीव नहीं कहा जा सकता। ऐसा कहने पर मुझे बहुत दुःख होता है। माया के जीव की संगति करने के कारण ही मुझे विवश होकर जीव (झूठा) कहना पड़ता है। किन्तु मैं क्या करूँ? ऐसा कहे बिना उसका स्वत्व बोध (आत्म–स्वरूप की भावना का संकल्प) कैसे जाग्रत होगा?

कठण वचन हूं तोज कहूं छूं, नहीं तो केम कहूं वासनाने जीव जी।
रखे दुख देखे वासना ते माटे, ए प्रगट वाणी हूं कही जी।।४९।।

यही कारण है कि मुझे इस प्रकार के कठोर वचन कहने पड़ रहे हैं, अन्यथा मैं ब्रह्मात्माओं को भला जीव कैसे कह सकती हूँ? परमधाम की आत्मायें माया के दुःख में

न फँसें, इसलिये मैंने यह प्रकटवाणी कही है।

प्रकास वाणी तमे जो जो जोपे करी, रखे मूको ते एक वचन जी।
द्रढ थई तमे देजो जीवने, लेजो ते मांहेलूं धन जी।।५०।।

हे साथ जी! आप इस प्रकाश ग्रन्थ की वाणी का अच्छी प्रकार से चिन्तन कीजिए। इसके एक वचन को भी न छोड़िए। इस प्रकाश ग्रन्थ में निहित धनी की पहचान रूपी आन्तरिक धन को ग्रहण कीजिए तथा उसे दृढ़तापूर्वक जीव को भी दीजिए।

ए धननो ते लेजो अर्थ, त्यारे प्रगट थासे प्रकास जी।
एणे अजवाले जीव जागसे, त्यारे वृथा न जाए एक स्वांस जी।।५१।।

जब आप अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की पहचान का वास्तविक अभिप्राय समझ जायेंगे, तब आपके हृदय में

प्रियतम के प्रति अटूट श्रद्धा, समर्पण, एवं प्रेम का प्रकाश प्रकट होगा। इसी प्रकाश में जब जीव जाग्रत होगा, तब वह अपनी एक भी श्वांस को माया के लिये प्रयोग नहीं करेगा।

प्रगट वाणी प्रकास कही छे, इंद्रावती चरणे लागे जी।
ते लाभ लेसे बंने ठामनो, जेहेनो जीव आंहीं जागे जी।।५२।।

धाम धनी के चरणों में प्रणाम करती हुई श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मैंने इस प्रकरण के रूप में प्रकाश ग्रन्थ की इस प्रकट वाणी को व्यक्त किया है। इस संसार में जिसका जीव जाग्रत हो जायेगा, वह यहाँ भी प्रियतम का सुख पायेगा तथा अखण्ड धाम में भी अखण्ड के अनन्त सागर में क्रीड़ा करेगा।

प्रकरण ।।३०।। चौपाई ।।७९३।।

बेहद वाणी

बेहदी साथ तमे सांभलो, बोली बेहद वाणी।

मोटा मोटेरा थई गया, कोणे नव जाणी।।१।।

बेहद में रास की लीला करने वाले परमधाम के हे सुन्दरसाथ जी! अब आप उस बेहद मण्डल के ज्ञान की बातें सुनिए। यद्यपि इस संसार में बड़े-बड़े ज्ञानी हो गये हैं, किन्तु किसी को भी बेहद का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका।

अनेक उपाय कीधां घणे, केमे न कलाणी।

कोणे न ओलखांणी ए निध, बुध बिना कोणे न जाणी।।२।।

सभी ने अनेक प्रकार से प्रयत्न किया, किन्तु किसी को भी बेहद वाणी प्राप्त नहीं हुई। जाग्रत बुद्धि न होने से

आज दिन तक किसी को भी बेहद वाणी की पहचान नहीं हो सकी थी।

आव्या ते बुधना सागर, बुध रूदे भराणी।
भगवानजी ने महादेवजी, पूछे बेहद वाणी।।३।।

यद्यपि बुद्धि के सागर कहे जाने वाले ज्ञान से भरपूर बड़े–बड़े ज्ञानीजन इस संसार में हो चुके हैं, किन्तु उन्हें भी बेहद का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका। यहाँ तक कि स्वयं भगवान शिव ने भी भगवान विष्णु से बेहद मण्डल के ज्ञान के सम्बन्ध में पूछा था।

ब्रह्मांड कोट वही गया, कोणे न सुणाणी।
चौद भवनना जे धणी, खंते खोलाणी।।४।।

इस सृष्टि में अब तक अनन्त (करोड़ों) ब्रह्माण्ड हो चुके

हैं, किन्तु इनमें से किसी में भी किसी ने बेहद के सम्बन्ध में नहीं बताया। चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान विष्णु ने भी बहुत तीव्र इच्छा से इसकी खोज की।

सुकजी सनकादिक ने कबीर, रहया घणुए ताणी।
कोणे न आवी एणी प्रेमल, रहया रूदेमां आणी।।५।।

शुकदेव जी, सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन, तथा सनत्कुमार), कबीर आदि ने भी इसे पाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु किसी को भी इसकी सुगन्धि तक नहीं मिली। उनकी यह चाहत उनके हृदय में ही रह गयी।

एक लवाने कारणे, लखमी जी राणी।
सात कल्पांत लगे तप करया, तोहे न केहेवाणी।।६।।

बेहद के विषय में एक शब्द भी जानने के लिये लक्ष्मी जी ने सात कल्प (सात दिन) तक तप किया, फिर भी भगवान विष्णु उन्हें बेहद का ज्ञान नहीं दे सके।

ए रसनी जे वासना, केहेने न अपाणी।
ते वृज सुन्दरी सुखमां, अणजाणे माणी।।७।।

बेहद के रस की इच्छा करने वालों में से किसी को भी यह प्राप्त नहीं हुई। उस रस को व्रज की गोपियों ने सुखपूर्वक अनजाने में ही प्राप्त कर लिया।

ए निध पोताना घरतणी, एम बोले वाणी।
श्री धाम धणी सूं रामत, रमे धणियाणी।।८।।

तारतम वाणी कहती है कि यह निधि अपने घर परमधाम की है। परमधाम की आत्माओं ने अपने प्रियतम

के साथ प्रेममयी लीलायें की।

अणू चोंच पात्र एह विना, बीजा कोणे न देवाणी।
दोड कीधी मोटे घणी, कोणे न लेवाणी।।९।।

इन ब्रह्मात्माओं के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अणु मात्र भी बेहद का रस नहीं दिया गया। इसे पाने के लिये बड़े–बड़े तपस्वियों तथा ज्ञानियों ने बहुत अधिक प्रयास किया, किन्तु कोई भी इसे प्राप्त नहीं कर सका।

साथ सुपने आवियो, इछा रामत जाणी।
बेहद धणी पधारिया, बेहद वात वंचाणी।।१०।।

इस स्वप्न के संसार में सुन्दरसाथ माया का खेल देखने की इच्छा से आये हैं। उनके साथ नित्य वृन्दावन (बेहद) में लीला करने वाले धाम धनी परमधाम से आये हैं और

उन्होंने ही बेहद की उस लीला की बातें बतायी हैं।

तेडी सिधावसे साथने, प्रगट थासे वाणी।
बुधतणो अवतार कहिए, मोटी बुध जणाणी।।११।।

धाम धनी के इस स्वरूप से तारतम वाणी का प्रकटन होगा, जिसके द्वारा वे सब सुन्दरसाथ को परमधाम ले जायेंगे। इस स्वरूप (सत्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) को जाग्रत बुद्धि का अवतार कहा गया है। इन्होंने ही जाग्रत बुद्धि की पहचान बतायी है।

जेणे ए निध खोली खंत करी, रूदयामां आणी।
धंन धंन कहिए मोटी बुध, निध ए निरखाणी।।१२।।

जिन्होंने अत्यन्त तीव्र चाहना से बेहद वाणी रूपी अनमोल निधि की खोज की और अपने हृदय में धारण

किया। जाग्रत बुद्धि के स्वरूप सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी धन्य-धन्य हैं। उन्होंने ही हमें बेहद वाणी रूपी अनमोल निधि की पहचान करायी है।

नौतनपुरी मां ए निध, सारी सनंधे गोताणी।
निरखी गोती ने नेहकरी, साथमां संभलाणी।।१३।।

नवतनपुरी में श्री देवचन्द्र जी ने बेहद वाणी रूपी इस निधि को हर प्रकार (चितवनि, सेवा, श्रवण आदि) से खोजा। निरख-परखकर इसकी खोज करने के पश्चात्, उन्होंने बहुत प्रेमपूर्वक सुन्दरसाथ को सुनाया।

बेहद केरी वाटडी, जो जो तमे साथ।
तारतम तेज छे निरमल, जोत अति अजवास।।१४।।

हे साथ जी! बेहद के इस मार्ग को देखिए। तारतम ज्ञान

का प्रकाश अत्यन्त निर्मल है। इसमें परमधाम की शोभा एवं लीला के ज्ञान (ज्योति) का अत्याधिक उजाला है।

प्रगट थासे पाधरी, जो जो रास प्रकास।

ग्रन्थ सघलानी उतपन, वाणी वेद व्यास।।१५।।

यदि आप रास एवं प्रकाश ग्रन्थ का चिन्तन करें, तो आपको बेहद का सीधा मार्ग प्राप्त हो जायेगा। श्रीमद्भागवत् के अनुसार वेदव्यास जी द्वारा वेद का आधार लेकर प्राय सभी पौराणिक ग्रन्थों की रचना की गयी है।

रूदे एहना सुत तणे, भागवत अभ्यास।

बेहद वाटे आवियो, सुकजी पूरवा साख।।१६।।

इनके पुत्र शुकदेव जी के हृदय में भागवत का गुह्य ज्ञान

प्रकट हुआ। बेहद के मार्ग की साक्षी देने के लिये शुकदेव जी आगे आये।

ब्रह्मांड विखे वाणी घणी, केहेना नाम लेवाय।

साख पूरे सहु ए वाटनी, जो जीवे जोवाय।।१७।।

इस ब्रह्माण्ड में बहुत से ग्रन्थ हैं, जिनके नामों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। यदि हम अपने जीव की अन्तर्दृष्टि से देखें, तो यह स्पष्ट होता है कि ये सभी धर्मग्रन्थ बेहद की साक्षी देते हैं।

ए वाणी ए वाटडी, कहींए प्रगट न थई।

धणी ब्रह्मांड ने खप करया, रहया जोई जोई।।१८।।

इस सृष्टि में आज दिन तक न तो कहीं बेहद वाणी प्रकट हुई और न बेहद का मार्ग प्रकट हुआ। इस ब्रह्माण्ड

के स्वामी खोजते-खोजते थक गये। इस लक्ष्य को पाने के लिये उन्होंने बहुत परिश्रम किया।

ए वाट वाणी जोई घणे, केहेने हाथ न आवी।
नाम ब्रह्मांडना धणी कहया, बीजा सूं करूं सुणावी।।१९।।

बेहद वाणी तथा बेहद मार्ग की खोज करने का प्रयास तो बहुतों ने किया, किन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली। जब ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाने वाले भगवान विष्णु को यह प्राप्त नहीं हुई, तो अन्यों का नाम क्यों सुनाऊँ?

ते वाट प्रगट पाधरी, कीधी आवार।
धंन धंन ब्रह्मांड ए थयो, धंन धंन नर नार।।२०।।

अब इस जागनी लीला में प्रियतम अक्षरातीत ने बेहद

की प्राप्ति का स्पष्ट मार्ग प्रकट किया है। इससे यह ब्रह्माण्ड धन्य-धन्य हो गया है तथा इसमें रहने वाले सभी मनुष्य (नर-नारी) भी धन्य-धन्य हो गये हैं।

धंन धंन जुग ते कलजुग, जेमां ए निध आवी।
धंन धंन खंड ते भरथनो, लीला ए पधरावी।।२१।।

यह २८वाँ कलियुग धन्य-धन्य है, जिसमें बेहद वाणी का ज्ञान अवतरित हुआ। यह भरतखण्ड भी धन्य-धन्य है, जिसमें यह जागनी लीला हुई।

धंन धंन गोकुल जमुना त्रट, धंन धंन वृजवासी।
अग्यार वरस लगे लीला करी, चौद भवन प्रकासी।।२२।।

वह गोकुल तथा यमुना का तट धन्य-धन्य है, जहाँ स्वयं अक्षरातीत ने अपने आवेश स्वरूप से ११ वर्ष ५२

दिन तक लीला की है। इस प्रकार, वहाँ के सभी व्रजवासी भी धन्य-धन्य हैं। प्रियतम ने इसका सम्पूर्ण ज्ञान बेहद वाणी के माध्यम से चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में प्रकट कर दिया है।

चौद भवन सुपन तणा, जोवा आव्यो छे साथे।
ए ब्रह्मांड मुक्त पामसे, सोणो जागे समासे।।२३।।

चौदह लोक के इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ माया का खेल देखने के लिये आया हुआ है। ब्रह्मसृष्टियों के जाग्रत होने पर स्वप्न समाप्त हो जायेगा तथा यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अखण्ड मुक्ति को प्राप्त कर लेगा।

वली जोगमायानो ब्रह्मांड, कीधो रमवा रास।
रामत रमे श्री राज सूं, साथ सकल उलास।।२४।।

व्रज लीला के पश्चात् रास लीला करने के लिये योगमाया के ब्रह्माण्ड में नित्य वृन्दावन की रचना की गयी, जिसमें सभी सुन्दरसाथ ने अत्यधिक उमंग से धाम धनी के साथ रामतें की।

रास रामत छे नित नवी, केमे नव थाय भंग।
साथ रमे सुपनमां, जोगमाया ने रंग।।२५।।

नित्य वृन्दावन में होने वाली रामतें अभी भी नित्य हैं, अखण्ड हैं, और नवीन हैं। वे किसी भी प्रकार से भंग नहीं होती हैं। आनन्द योगमाया के ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ ने स्वप्नावस्था, अर्थात् कुछ नींद और कुछ जाग्रति जैसी अवस्था, में रास की लीला की।

जुओ साथ सुपन विखे, रामत रमे छे जेम।

एक पखे साथ जागियो, रामत तेमनी तेम।।२६।।

हे साथ जी! देखिए कि हमने स्वप्नावस्था में जिस प्रकार की रामतें खेली थीं, वे अभी भी जैसी की तैसी हो रही हैं। इस प्रकार, हम रास के पश्चात् परमधाम में जाग्रत हुए।

वली ते ब्रह्मांड उपनो, जेमां आपण आव्या।

धाख रही जोया तणी, आपण तेहज लाव्या।।२७।।

पुनः यह नया ब्रह्माण्ड बना, जिसमें हम माया का खेल देखने आये हैं। हमारे अन्दर माया का खेल देखने की इच्छा बाकी रह गयी थी, उसी इच्छा की पूर्ति के लिये हम पुनः इस खेल में आये हैं।

ब्रह्मांड त्रणे दीठा अमे, रामत अलेखे।

जागीने करसूं वातडी, जे सुपन मांहें देखे।।२८।।

हमने व्रज, रास, एवं जागनी के तीनों ब्रह्माण्डों में तरह-तरह के इतने खेल खेले हैं कि उन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता। जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे, तो स्वप्न में देखी गयी इस सम्पूर्ण लीला की चर्चा करेंगे।

वली आ ते ब्रह्मांड उपनो, जेमां राख्यो छे सेर।

आंहीं पण कीधी वातडी, साथ सिधाव्यो घेर।।२९।।

पुनः यह नया ब्रह्माण्ड बना, जिसका रहस्य आज दिन तक छिपा ही रहा। व्रज-रास की लीला के पश्चात् सुन्दरसाथ परमधाम पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने यहाँ की सारी बातें की।

जेम हरया ब्रह्माए वाछरू, गोवाल संघाते।

ततखिण नवा निपना, आपोपणी भांतें।।३०।।

जिस प्रकार ब्रह्मा जी द्वारा ग्वाल–बालकों सहित बछड़ों का अपहरण कर लेने पर उसी क्षण धाम धनी ने जैसा का तैसा बना दिया था, उसी प्रकार प्रियतम के आदेश से यह ब्रह्माण्ड भी जैसा का तैसा पूर्ववत् बना दिया गया।

गोकुल मांहें आप आपणे, घेर सहु कोई आव्या।

खबर न पडी केहेने, एवी रची माया।।३१।।

इस नये ब्रह्माण्ड के गोकुल में सभी ग्वाल–बाल अपने–अपने घर आ गये, किन्तु किसी को भी यह ज्ञात नहीं हो सका कि माया ने किस प्रकार पूर्ववत् यह नया ब्रह्माण्ड बना दिया है।

एणे द्रष्टांते प्रीछजो, सेर राख्यो ए भांते।

माया तणो ए बल जुओ, केवो रच्यो छे खांते।।३२।।

हे साथ जी! आप इस दृष्टान्त से समझ लीजिए कि इस नये ब्रह्माण्ड के बनने का रहस्य किस प्रकार गोपनीय रहा है। माया की इस विलक्षण शक्ति को भी देखिए कि इसने किस प्रकार सखियों (प्रतिबिम्ब एवं वेद ऋचा) की इच्छा की पूर्ति के लिये इस ब्रह्माण्ड की रचना कर दी।

साथ सकल सिधावियो, श्रीकृष्ण जी संघाते।

ते रमे छे रामत रासनी, आंही उठ्या प्रभाते।।३३।।

श्री कृष्ण जी के तन में विराजमान श्री राज जी के आवेश के साथ सब सुन्दरसाथ परमधाम चले गये। उनके अखण्ड तन आज भी योगमाया के ब्रह्माण्ड में रास की रामतें कर रहे हैं, जबकि इस नये ब्रह्माण्ड में

प्रातःकाल वैसी ही गोपियाँ और श्री कृष्ण जी दृष्टिगोचर हो गये।

तेहज गोकुल जमुना त्रट, जाणे ते वृजवासी।
जाणे रामत रास रमी करी, सहु उठ्या उलासी।।३४।।

इस नये ब्रह्माण्ड के सभी व्रजवासी यही समझने लगे कि यह तो पहले वाला ही गोकुल है तथा वही यमुना जी का किनारा है। हमने ही रात्रि में रास की रामतें की हैं तथा उसी आनन्द में प्रातःकाल अपने घरों से उठे हैं।

द्रष्टव्य– नये ब्रह्माण्ड में गोपियों को यह ज्ञात नहीं था कि योगमाया में वास्तविक रास हुई है। वे इसी ब्रह्माण्ड की रास को वास्तविक मानती रहीं।

जाणे तेज ब्रह्मांड ते रामत, जेम रमतां सदाय।

आ ते ब्रह्मांड उपनूं, एणीं रे अदाय।।३५।।

वे यही जानते रहे कि यह उसी ब्रह्माण्ड की लीला है, जिसमें हम हमेशा ही खेलते रहे हैं। इस प्रकार से यह तीसरा ब्रह्माण्ड जागनी का बना है।

बंने ब्रह्मांड वचमां, सेर राख्यो छे सार।

खबर न पडी केहेने, बेहदनो बार।।३६।।

दोनों ब्रह्माण्डों (अखण्ड होने वाले तथा इस नये) के मध्य यह रहस्य छिपा ही रहा। इस प्रकार, किसी को भी बेहद में प्रवेश करने के मार्ग (प्राप्ति के ज्ञान) का पता नहीं चल सका।

बेहदी साथ आवियो, एणे दरवाजे।

आ ब्रह्मांड मायातणो, रामत जोवा काजे।।३७।।

इस प्रकार, बेहद में लीला कर चुके परमधाम के सुन्दरसाथ इस जागनी ब्रह्माण्ड में आये हैं, जिससे कि वे माया का खेल अच्छी प्रकार से देख सकें।

सूं जाणे हदना जीवडा, बेहदनी वाते।

मांहें रमे ते रामत रातडी, आंहीं उठियां प्रभाते।।३८।।

भला हद के जीव बेहद की बातों को क्यों जान सकते हैं? प्रतिबिम्ब की सखियों (कुमारिकाओं के जीवों) का यही मानना है कि महारास की लीला भी हमने ही की है तथा प्रातःकाल भी हम ही अपने घरों से उठी हैं।

पाछला साथमां रामत, दिन अग्यार कीधी।

अक्रूर तेडी सिधावियो, जई मथुरा लीधी।।३९।।

श्री कृष्ण जी ने पिछले साथ अर्थात् प्रतिबिम्ब एवं वेदऋचा सखियों के साथ ११ दिन (७ दिन गोकुल और ४ दिन मथुरा) लीला की। सात दिन की लीला के पश्चात् अक्रूर जी श्री कृष्ण–बलराम को लेकर मथुरा गये।

द्रष्टव्य– वस्तुतः श्री कृष्ण जी ने ७ दिन ही गोपियों के साथ लीला की। ४ दिन गोपियों ने श्री कृष्ण जी के विरह में व्यतीत किया।

तिहां लगे वेख वालातणो, मुक्त कंसने दीधी।

रास पाछली रामत, लीला जाणजो बीजी।।४०।।

कंस का वध कर उसे अखण्ड मुक्ति देने तक श्री कृष्ण जी की वेशभूषा व्रज वाली ही थी। इस ब्रह्माण्ड में होने

वाली रास की लीला के पश्चात् अब मथुरा में होने वाली दूसरी लीला के विषय में जानिये।

टीलू दई उग्रसेंनने, वेख सहित सिधाव्या।
इहांथी लीला अवतारनी, वसुदेव वधाव्या।।४१।।

वसुदेव जी को कारागार से मुक्त कराकर श्री कृष्ण जी ने उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाया। इसके पश्चात् उन्होंने अपना ग्वालों का भेष हटाकर जैसे ही राजसी वस्त्र धारण किया, वैसे ही अखण्ड बेहद की शक्ति उनके तन से चली गयी। यहाँ से विष्णु भगवान के अवतार की लीला का प्रारम्भ होता है।

हवे एह लीला हदतणी, तेतां सहु कोई केहेसे।
पण बेहद वाणी अम बिना, बीजो कोंण देसे।।४२।।

अब यह लीला हद की है जिसका वर्णन सभी करेंगे, किन्तु बेहद वाणी को हमारे अतिरिक्त भला और कौन देने वाला है।

एणी वाटे ऊभो नरसैयो, लीला बेहद गाय।

जोर करे बलियो घणो, रासमां ना पेसाय।।४३।।

बेहद के मार्ग पर चलकर नरसैंया ने बेहद की लीला का गायन किया है। उसने बहुत प्रयास किया, किन्तु रास में प्रवेश नहीं कर सका।

जे बल कीधूं नरसैए, एवो करे न कोय।

हदनो जीव बेहदनी, ऊभो लीला जोय।।४४।।

नरसैंया ने जितना प्रयास किया, उतना अन्य कोई भी नहीं कर पाता है। यद्यपि वे हद के जीव थे, किन्तु

उन्होंने अपने प्रेम के बल पर (खड़े होकर) बेहद की लीला को अपने आत्मिक नेत्रों से देखा।

ए रस काजे दोड्यो नरसैयो, वाणी करे रे पुकार।
रस थयो मांहेंली गमां, आडा दरवाजा चार।।४५।।

नरसैंया की वाणी से यह स्पष्ट होता है कि बेहद का रस पाने के लिये नरसैंया ने बहुत प्रयास किया (दौड़ लगायी)। बेहद का आनन्द उसके हृदय में तो प्रविष्ट अवश्य हुआ, किन्तु उसके द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन में बन्धन रूप चार दरवाजे आड़े आ गये।

बारणे इन बेहद तणे, लेहेर टाढक आवे।
प्रेमल कांईक रसतणी, बारणे रे जणावे।।४६।।

बेहद के द्वार पर प्रेम और आनन्द की शीतल लहरें आ

रही थीं, जिसका रसपान नरसैंया ने किया।

एणे बारणे नरसैयो, घणूं टाढक पाम्यो।

लीला पाछला साथमां, सुख लईने जाम्यो।।४७।।

इस द्वार पर खड़े होकर नरसैंया ने प्रेम की बहुत अधिक शीतलता का अनुभव किया। उन्होंने प्रतिबिम्ब तथा वेद-ऋचा सखियों के साथ होने वाली अखण्ड लीला के सुख-सागर में डुबकी लगायी।

सुकजीए लीला वरणवी, वृज रास वखाण्यो।

बेहदनी वाणी विना, ठाम ठाम बंधाण्यो।।४८।।

शुकदेव जी ने बेहद की लीला के रूप में व्रज और रास का वर्णन किया। तारतम ज्ञान का प्रकाश न होने से उन्हें बेहद का यथार्थ ज्ञान नहीं था, परिणाम स्वरूप वे कई

स्थान पर सन्देहग्रस्त हो गये।

नहीं तो एम केम वरणवे, केम थाय पंच अध्याई।
स्कंध बारे भागवतना, तेथी थाय कोट सवाई।।४९।।

नहीं तो वे मात्र पाँच अध्यायों में ही इतना संक्षिप्त वर्णन कैसे करते? श्रीमद्भागवत् में १२ स्कन्ध हैं। महारास का वर्णन करने पर इससे करोड़ों गुना विस्तार हो सकता था।

न थई प्रगट पाधरी, मुख एहेने वाणी।
धाख रही रूदे घणी, कलप्या दुख आणी।।५०।।

शुकदेव जी के मुख से बेहद की वाणी प्रकट न हो सकी। उनके हृदय में बेहद का वर्णन करने की तीव्र चाहना थी, किन्तु असफल हो जाने से वे बहुत दुःखी

हुए।

कलकली कम्पमान थयो, रस टलियो एथी।

केम ते ए दुख खमी सके, ए रस जाय जेथी।।५१।।

बेहद के रस से वंचित हो जाने के कारण वे इतने दुःखी हुए कि रोते हुए काँपने लगे। बेहद के रस को जो खो देगा, भला वह इस दुःख को कैसे सहन कर सकता है?

रास वाणी कहया तणो, हुतो हरख अपार।

वाणी ब्रह्मांडनी सकलमां, रस रहयो ए सार।।५२।।

महारास का वर्णन करने के लिये उनके मन में अपार हर्ष था, क्योंकि इस ब्रह्माण्ड के सभी ग्रन्थों में रास का ज्ञान सर्वोपरि है, क्योंकि इसमें आत्मा एवं परब्रह्म की अनन्य प्रेम लीला का वर्णन है।

रासनी रातनो वरणव, कीधो जुओ रे विचार।

नारायणजी नी रातनो, कोईक पामे पार।।५३।।

हे साथ जी! शुकदेव जी द्वारा रास की रात्रि के वर्णन के सम्बन्ध में विचार करके देखिए कि नारायण जी की रात्रि का तो कोई–कोई ही पार पाता है।

पण पार नथी रास रातनो, ए तो बेहद कही।

ते मांहें लीला बेहदनी, पंच अध्याई थई।।५४।।

किन्तु रास की रात्रि की तो कोई सीमा ही नहीं है। वह अनन्त कही जाती है। ऐसी अवस्था में बेहद की इस लीला को मात्र पाँच अध्यायों में ही कैसे सीमित कर दिया गया है?

एनो अर्थ कहूं पाधरो, सुणजो तमे साथ।

रात एवी मोटी तो कही, जो लीला मोटी छे रास।।५५।।

हे साथ जी! आप सुनिये, मैं इसका अभिप्राय स्पष्ट करती हूँ। नित्य वृन्दावन में होने वाली लीला बहुत बड़ी है (अखण्ड रूप से निरन्तर हो रही है)। इसलिये रास की रात्रि को भी बहुत बड़ी (अनन्त) कह दिया गया है।

न थाय पंच अध्याई केमे, मारा मुनीजी नी वाण।

पण नेठ लेवाणों निध समे, रस आवे सुजाण।।५६।।

मेरे मुनि जी की वाणी मात्र पाँच अध्यायों में किसी भी प्रकार से सीमित नहीं हो सकती थी, किन्तु अखण्ड लीला का रस जैसे ही प्रवाहित हुआ, राजा परीक्षित के प्रश्न कर देने के कारण बीच में ही अटका रह गया।

कलकली दुख कीधो घणो, पण सूं करे जाण।
पात्र विना पामे नहीं, रस बेहद वाण।।५७।।

इस घटना से शुकदेव जी विलखते हुए बहुत दुःखी हुए, किन्तु वे कर भी क्या सकते थे। बिना पात्रता के भला बेहद की वाणी का रस कैसे पाया जा सकता है?

पात्र विना तमे पामियां, मुनीजी कां करो दुख।
आज लगे ए रस तणो, कोणे लीधो छे सुख।।५८।।

हे मुनि जी! आप दुःखी क्यों होते हैं? आपमें इसकी पात्रता नहीं थी, फिर भी आपने इसका इतना रस पा लिया है, यह क्या कम है? आज दिन तक इस ब्रह्माण्ड में बेहद के रस का सुख किसने लिया है?

ए कागल तां अम तणो, तम साथे आव्यो।

रामत जोवा ब्रह्मांडनी, विध सघली लाव्यो।।५९।।

यह भागवत हमारा कागज है, जो आपके साथ आया है। इसका उद्देश्य इस मायावी ब्रह्माण्ड का खेल देखने के लिये आयी हुई ब्रह्मसृष्टियों को सारी वास्तविकता का ज्ञान कराना है।

हद वेहदनी विगत, कागल मांहें विचार।

मुनीजी हाथ संदेसड़ो, आव्यो समाचार।।६०।।

इस भागवत के अन्दर हद और बेहद की वास्तविकता दर्शायी गयी है। शुकदेव मुनि जी के हाथ से बेहद की लीला का सन्देश हमारे पास आया है।

ए सुख सघली लई करी, वाले कहयो सर्व सार।

बीजाने ए कोहेडा, नव लाधे बार।।६१।।

सभी ग्रन्थों के सार रूप इस बेहद की सुधि, बेहद वाणी के रूप में, धाम धनी ने हमें दी है, जबकि दूसरों के लिये यह कुहासे (कुहरे) के समान है। किसी को इससे बेहद में जाने का मार्ग (द्वार) नहीं मिलता।

बीजा सूं जाणे बापडा, जेणो होय ते जाणे।

अम विना बार बेहद तणा, बीजो कोण उघाडे।।६२।।

बेचारे दूसरे लोग बेहद के विषय में क्या जान सकते हैं? जिन आत्माओं का यह धन है, एकमात्र वे ही जान सकती हैं। भला, हमारे अतिरिक्त बेहद का द्वार अन्य कौन खोल सकता है?

लाख वार जुए फरी, एक कडी नव लाधे।

ब्रह्मांडना धणियो मांहें, पग मूकतां बांधे।।६३।।

यदि कोई लाख बार प्रयास करे (देखे), तो भी वह एक कड़ी (गुत्थी) का भी रहस्य खोल नहीं पाता है। ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि भी बेहद के विषय में पग-पग पर बन्ध (रुक) जाते हैं अर्थात् असमर्थ हो जाते हैं।

ऐ रे कोहेडो हद तणो, बेहदी समाचार।

अमे देखाडूं पाधरा, बेहदना बार।।६४।।

यह श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ हद के जीवों के लिये कुहरा है, किन्तु इसमें बेहद का समाचार (महारास का ज्ञान) छिपा हुआ है। अब मैं आपको तारतम ज्ञान के प्रकाश में बेहद के मार्ग (द्वार) की पहचान कराती हूँ।

सुकजीनी वाणी सोहामणी, जोत बेहद ल्यावी।

फेर टालो तमे मांहेलो, जुओ आंख उघाडी।।६५।।

हे साथ जी! शुकदेव जी की वाणी बहुत मनोहर है। यह बेहद का ज्ञान देती है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में अपनी अन्तर्दृष्टि खोलकर आप अपने मन के संशयों को दूर कीजिए।

स्कंध बीजो मुनिए कहयो, चत्रस्लोकी जांहें।

ब्रह्मांडनी जिहां उतपन, अर्थ जुओ तांहें।।६६।।

शुकदेव जी ने दूसरे स्कन्ध में चतुर्श्लोकी भागवत का वर्णन किया है, जिसमें ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति दर्शायी गयी है। हे साथ जी! आप इसके अर्थ पर विचार कीजिए।

दीसे छे द्वार पाधरो, बेहदनो बार।

इंडाने कहयूं सुपन, सुपन संसार।।६७।।

इन श्लोकों में बेहद का द्वार (मार्ग) स्पष्ट दिखायी दे रहा हैं। इसमें ब्रह्माण्ड को तथा सांसारिक जीवों को स्वप्नवत् कहा गया है।

बेहद घरनी वाटडी, बेहदी जाणे।

हदनो जीव बेहदना, बार केम उघाडे।।६८।।

जिनका घर ही बेहद (परमधाम) है, एकमात्र वे ही बेहद के विषय में जानते हैं। भला, हद के जीव बेहद का द्वार कैसे खोल सकते हैं?

बार उघाडवा दोडियो, सुकजी सपराणो।

साथे परीछित चालियो, ते तां भारे चंपाणो।।६९।।

बेहद का द्वार खोलने के लिये शुकदेव जी दौड़े, किन्तु वे उलझ गये। उनके साथ परीक्षित भी चला, जिसके बोझ से वे स्वयं भी दब गये।

बल कीधूं बलिए घणूं, द्वार द्वार पछटाणो।

साथे संघाती हद तणो, ते तां पाछल तणांणो।।७०।।

शुकदेव जी ने बेहद का द्वार खोलने के लिये बहुत प्रयास किया। इसके लिये वे बेहद के द्वार-द्वार भटके, अर्थात् बहुत अधिक मानसिक दुःख उठाये। उनके साथ हद का जीव परीक्षित था, जिसने उन्हें पीछे खींच दिया।

रास तणो सुख सागर, ते तो नव केहेवाणो।

पाछल ताण थई घणी, अध वचे लेवाणो।।७१।।

रास के सागर समान अथाह सुख का वर्णन शुकदेव जी नहीं कर सके क्योंकि पीछे से परीक्षित ने अधिक खींच दिया, अर्थात् संशय उत्पन्न कर ध्यान भंग रूप बाधा खड़ी कर दी। परिणाम स्वरूप, शुकदेव जी अधबीच में ही रह गये।

पात्र विना रस केम रहे, आवतो ढोलाणो।

पात्र हुता ते पामियां, रस इहां बंधाणो।।७२।।

बिना पात्रता के रास का सुख किसी के हृदय रूपी बर्तन में कैसे रह सकता है? यदि आ भी जाये तो वह गिर जाता है। जिन ब्रह्मात्माओं में बेहद का रस लेने की पात्रता थी, उन्हें इस जागनी लीला में प्राप्त हुआ।

ए रस वरस ऐंसी लगे, सारी पेरे सचवाणो।

लीधो पीधो साथमां, वखतो वखत वेहेचाणो।।७३।।

अस्सी वर्ष (वि.सं. १६५५–१७३५) तक रस सुन्दरसाथ के बीच में ही बँटता रहा। जिस सुन्दरसाथ ने धनी की जैसी पहचान की, उसके अनुसार उन्हें सुख मिला।

विशेष– लगभग १७ वर्ष की उम्र में श्री देवचन्द्र जी हरिदास जी की सेवा में आये, तब से बेहद का रस आना शुरु हो गया। इस प्रकार (१६३८+१७+८०= १७३५) बेहद का रस सुन्दरसाथ में फैलता रहा।

एक टीपू ते बाहेर न निकल्यूं, साथ मांहें समाणो।

जेनो हतो तेणे माणियो, मांहोंमांहें गंठाणो।।७४।।

इतने समय तक बेहद का एक बूँद (नाम मात्र) भी रस

बाहर के (प्रवाही) लोगों को प्राप्त नहीं हुआ, केवल सुन्दरसाथ को ही प्राप्त होता रहा। यह जिनका था, उन्हें प्राप्त होता रहा। सबने आपस में प्रेमपूर्वक बाँट लिया।

ए रस वाणी अमतणी, आंहीं आवी छलकाणो।

छोल आवी जेम सागर, रस तो प्रगटाणो।।७५।।

बेहद वाणी का यह रस मुझसे वि.सं. १७३५ में छलक पड़ा। जिस प्रकार सागर में लहर आती है, उसी प्रकार मेरे हृदय से यह रस बाहर निकल पड़ा।

द्रष्टव्य– वि.सं. १७१८ में हरजी व्यास एवं वि.सं. १७३५ में हरिद्वार में जीवसृष्टि ने भी बेहद का ज्ञान प्राप्त किया।

जोर कीधो घणुंए अमे, रस केमे न रखाणो।

प्रगट थासे पाधरो, रस बाहेर नंखाणो।।७६।।

यद्यपि मैंने बहुत प्रयास किया कि यह रस बाहर न निकले, किन्तु मैं किसी भी प्रकार इसे छिपाकर नहीं रख सकी। अब यह रस बाह्य लोगों (जीवसृष्टि) में भी प्रकट हो गया है, इसलिये अब यह चारों ओर सरलता से फैल जायेगा।

ए रस आजना दिन लगे, क्यांहे न कलाणो।

लीला राखवा पाछल, जाण होय ते जाणो।।७७।।

आज दिन तक बेहद के रस को किसी ने भी नहीं पहचाना था। हमारे द्वारा की गई रास लीला (पिछली लीला) को इस बेहद वाणी के माध्यम से जिसे जानने की इच्छा हो, वह जान सकता है।

साथ एणी पेरे आवसे, एणे रसे तणाणो।

वचन सर्वे सांभली, आवसे बंधाणो।।७८।।

बेहद के रस में बन्धे हुए सुन्दरसाथ धनी के चरणों में आयेंगे। जब वे बेहद के ज्ञान का श्रवण करेंगे, तो निश्चय ही प्रियतम के चरणों से जुड़ जायेंगे।

ए वाणी बेहद प्रगटी, इंद्रावती मुख।

घणी विधे ए रस पिए, बेहदने सुख।।७९।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि धाम धनी ने मेरे मुख से इस बेहद वाणी को प्रकट किया है। हम सुन्दरसाथ ने इसके माध्यम से अनेक प्रकार से बेहद के सुख का रसास्वादन किया है।

ए वाणीने कारणे, घणे तपस्या कीधी।

ए वाणीने कारणे, घणे अगनज पीधी।।८०।।

इस बेहद वाणी को प्राप्त करने के लिये बहुत से लोगों ने घोर तपस्या की। कइयों ने अग्नि की लपटों का भी पान किया, किन्तु प्राप्त न हो सकी।

ए वाणीने कारणे, घणा देहज दमिया।

ए वाणीने कारणे, घणा कष्टज खमिया।।८१।।

इस बेहद वाणी को प्राप्त करने की इच्छा से बहुत से तपस्वियों ने अति अल्पाहार करके शरीर को जर्जर कर दिया, तो कइयों ने धूप, शीत, वर्षा आदि से अपने शरीर को बहुत कष्ट दिया।

ए वाणीने कारणे, घणा भैरव झंपावे।

ए वाणीने कारणे, तिल तिल देह कपावे।।८२।।

बेहद के अनुपम ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा से अनेकों ने पहाड़ों की चोटियों से छलांग लगाकर अपने शरीर का त्याग कर दिया, तो कइयों ने अपने शरीर को आरे से धीरे-धीरे चिरवाया।

ए वाणीने कारणे, घणा संधाण सारे।

ए वाणीने कारणे, सिर अगनज बारे।।८३।।

इस बेहद वाणी को प्राप्त करने के लिये बहुत से लोगों ने अपने शरीर के एक-एक जोड़ (सन्धि स्थानों) को अलग-अलग कर दिया। इसके अतिरिक्त, कइयों ने अपने शिर को तलवार से काटकर अग्नि में होम कर दिया (जला दिया)।

ए वाणीने कारणे, अनेक दुख देखे।

एणी विधे ए रसने, केटला कहूं रे अलेखे।।८४।।

इस प्रकार बेहद वाणी का रस प्राप्त करने के लिये अनेक लोगों ने तरह-तरह के कष्टों का अनुभव किया, जिनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। यह शब्दों की परिधि में नहीं आता।

एक टीपू ते कोय न पामियो, एहेना रस तणी।

नाथ चौद भवनना, जे ब्रह्मांडना धणी।।८५।।

इनमें से किसी ने भी बेहद के सुख-सागर की एक बूँद को भी प्राप्त करने में सफलता नहीं पायी। यहाँ तक कि चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान विष्णु भी बेहद के रस से वंचित रह गये।

बीजा नाम अनेक छे, पण लऊं केहेना।

ब्रह्मांडना धणी ऊपर, लेवाय नहीं तेहेना।।८६।।

बेहद वाणी की खोज में लगे रहने वाले तो बहुत हैं, मैं किस–किस के नाम बताऊँ। ब्रह्माण्ड के स्वामी विष्णु भगवान भी जब इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके, तो उनसे श्रेष्ठ और कौन हैं जिनके नाम बताए जायें।

ए रस आंहीं उभरयो, आवी अम मांहें।

नौतनपुरीमां जे निध, एहेवी नहीं क्यांहें।।८७।।

हम सब सुन्दरसाथ के अन्दर बेहद का रस नवतनपुरी में उतरा। यह निधि जिस प्रकार यहाँ अवतरित हुई, वैसी अन्य कहीं भी नहीं उतरी।

जे निध गोकुल प्रगटी, तेतां सुख अलेखे।

अणजाणे सुख माणिया, घर कोई ना देखे।।८८।।

गोकुल में प्रेम लीला का जो रस प्रवाहित हुआ, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह सुख हमने अनजानेपन में लिया। उस समय हमें अपने मूल घर परमधाम की कोई भी पहचान नहीं थी।

ए सुख माण्यां सुपनमां, साथ राज संघाते।

घर दीठे भाजे सुपना, जोईए केणी भांते।।८९।।

श्री राज जी के साथ यह सुख हमने स्वप्न की अवस्था में लिया। परमधाम देख लेने पर तो स्वप्न समाप्त हो जाता है, ऐसी स्थिति में व्रज लीला का सुख कैसे ले सकते थे?

सुपन भागे सुख केम थाय, माया केम जोवाय।
घर तणो सुख जोईए, निद्रा उडीने जाय।।९०।।

स्वप्न के नष्ट हो जाने पर सुख का अनुभव कैसे हो सकता है? ऐसी अवस्था में माया का खेल भी कैसे देखा जा सकता है? यदि परमधाम के सुखों को देखते हैं, तो माया की नींद रह ही नहीं सकती।

निद्रा उडे भाजे सुपन, त्यारे उथलो थाय।
सुख घेरनू ने सुपननू, बंने केम लेवाय।।९१।।

नींद के हटते ही स्वप्न समाप्त हो जाता है, तब स्थिति बदल जाती है। परमधाम के सुख तथा सपने के सुख एकसाथ कैसे लिये जा सकते हैं?

एणी विधे साथ प्रीछजो, सुख घणुए आण्यूं।
सुख सुपने गोकुल तणूं, अणजाणे माण्यूं।।९२।।

हे साथ जी! आप इस प्रकार से समझिये कि धाम धनी हमारे लिये बहुत सुख लेकर आये हैं। हमने गोकुल में स्वप्नावस्था की तरह अनजाने में प्रियतम का सुख लिया।

रास तणा सुख सूं कहूं, जाणे मूलगां होय।
ए सुख साथ धणी बिना, नव जाणे कोय।।९३।।

रास के सुख के सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ। यह तो ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे परमधाम का ही सुख हो। इस सुख को सुन्दरसाथ और श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान सकता।

नवलो सरूप धणी तणो, नवलो सिणगार।

नवलो नेह ते आपणो, नवलो आकार।।१४।।

नित्य वृन्दावन में प्रियतम अक्षरातीत ने नये श्रृंगार से युक्त योगमाया का नया स्वरूप (किशोरावस्था वाला) धरण किया। हमने भी योगमाया के नये तन धारण किये तथा विरह के पश्चात् हमारे अन्दर का प्रेम भी कुछ नये ही प्रकार का था।

नवलो वन सोहामणो, नवलो वा वाय।

नवला जल जमुनातणा, लेहेरों ले वनराय।।१५।।

योगमाया का वह नवीन–नित्य वृन्दावन अति सुन्दर है, जिसमें चैतन्य–नूतन हवा बह रही है। यमुना जी का जल भी अति नूतन है। उसके किनारे अति सुन्दर वृक्ष शोभायमान हैं, जो हवा के झोकों से झूम रहे हैं।

नवली प्रेमल वेलडी, नवी रेत सेत प्रकास।

नवलो पूनम चांदलो, सकल कला अजवास।।९६।।

सुगन्धि से भरपूर नयी-नयी बेलें हैं। यमुना जी की रेती नयी है, जो अत्यन्त उज्ज्वल है और श्वेत प्रकाश में जगमगा रही है। पूर्णमासी का नवीन चन्द्रमा है, जो अपनी सम्पूर्ण कलाओं से शीतल चाँदनी बिखेर रहा है।

नवला रंग पसु पंखी, वनमा करे टहुंकार।

नवला सुख श्री राजसुं, साथ लिए अपार।।९७।।

माया के संसार से भिन्न नये-नये रंगों के पशु-पक्षी हैं, जो वन में तरह-तरह की मधुर ध्वनियाँ कर रहे हैं। सुन्दरसाथ ने इस नित्य वृन्दावन में अपने प्रियतम से कुछ नये ही प्रकार का अपार सुख लिया।

ए सुख केरी वातडी, जीव रूदे जाणे।

ए सुख साथ धणी बिना, बीजो कोण माणे।।९८।।

सुख की इन बातों को हमारे जीव का हृदय ही जानता है। सुन्दरसाथ एवं धाम धनी के अतिरिक्त इस सुख को भला अन्य कोई कैसे प्राप्त कर सकता है?

पण सुख सहु सुपनना, नेठ निद्रा मांहें।

ए सर्व जोगमाया तणां, घर द्रष्ट न थाए।।९९।।

किन्तु ये सभी सुख (व्रज, रास के) निश्चित रूप से नींद के अन्दर स्वप्नावस्था में थे। रास के सभी सुख योगमाया के ब्रह्माण्ड के थे, जिसमें किसी को भी परमधाम की पहचान नहीं थी।

एक विध कही गोकुल तणी, आगल जोगमायानूं सुपन।
बंने सुख केम उपजे, विचारजो मन।।१००।।

हे साथ जी! मैंने आपको स्वप्नावस्था में व्रज के सुख की और योगमाया में रास के सुख की वास्तविकता बतायी है। अब आप अपने मन में इस बात का विचार कीजिए कि ये दोनों सुख किस प्रकार से उत्पन्न हुए?

ज्यारे सुख मायाना माणिए, घर ना आवे द्रष्ट।
ज्यारे घरतणा सुख जोइए, नहीं सुपननी सृष्ट।।१०१।।

जब माया के सुख में डूब जाते हैं तो उस समय परमधाम दिखायी नहीं देता है, और जब हम परमधाम के सुखों का अनुभव करते हैं तो उस समय हमारे हृदय में स्वप्न की इस सृष्टि का अस्तित्व नहीं रहता है।

एम सुख सुपने माणिया, अणजाणे एह।

बंने लीलामां घर तणी, खबर नहीं तेह।।१०२।।

एक प्रकार का स्वप्नावस्था का सुख वह है, जिसे हमने अनजाने में प्राप्त किया है। व्रज–रास की दोनों लीलाओं में हमें अपने मूल घर की कोई भी पहचान नहीं थी।

एणी विधे लीला बंने करी, घेर रे सिधाव्या।

आ त्रीजो ब्रह्मांड मायातणो, आपण लई आव्या।।१०३।।

इस प्रकार, धाम धनी ने व्रज एवं रास की ये दोनों लीलायें की और सबको लेकर परमधाम गये। उसके पश्चात् यह तीसरा ब्रह्माण्ड जागनी का है, जो माया का है। इसमें धाम धनी हमें माया का खेल दिखाने के लिये पुनः लेकर आये हैं।

इछा हुती जोयातणी, ते तां पूरण न थई।

अणजाणे सुख माणिया, धाख ऐणी पेरे रही।।१०४।।

हमारे अन्दर माया का खेल देखने की जो इच्छा थी, वह व्रज–रास में पूरी न हो सकी थी। हमने अनजाने में (पहचान रहित होकर) धनी का सुख लिया। इस प्रकार, हमारे अन्दर अभी माया का खेल देखने की इच्छा शेष रह गयी थी।

केम रहे धाख ते आपणी, त्रीजो ब्रह्मांड लाव्या।

साथे धणी पधारिया, तारतम लई आव्या।।१०५।।

हमारे अन्दर किसी भी प्रकार की इच्छा शेष न रह जाये, इसलिये प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने यह तीसरा "जागनी ब्रह्माण्ड" बनाया। इसमें हमारे साथ स्वयं धाम धनी भी पधारे हैं तथा हमें जाग्रत करने के लिये तारतम

ज्ञान का प्रकाश लेकर आये हैं।

तारतम जोत उद्योत छे, तेणे सूं थाय।

एकी द्रष्टे घर जोइए, बीजी माया जोवाय।।१०६।।

परमधाम के ज्ञान का उजाला ही तारतम है। इससे क्या लाभ होता है? इससे पहला लाभ तो यह होता है कि (चितवनि द्वारा) परमधाम का दर्शन होता है। दूसरा लाभ यह है कि इसको आत्मसात् करके द्रष्टा भाव से माया को देखा जाता है।

घर दीसे छे पाधरा, बीजी बे लीला जे कीधी।

ते ए सर्वे सांभरे, वली आ लीला त्रीजी।।१०७।।

तारतम ज्ञान से परमधाम की स्पष्ट पहचान होती है। इसके अतिरिक्त धाम धनी द्वारा की गयी पहले की दोनों

लीलाओं (व्रज एवं रास) तथा पुनः इस तीसरी जागनी लीला की भी सदा याद बनी रहती है।

सांभरे सर्वे वातडी, जीव द्रष्टे देखे।
आ तारतम जागी जोइए, ए तां बल अलेखे।।१०८।।

इस तारतम ज्ञान के प्रकाश में व्रज, रास, तथा परमधाम की सारी बातें याद आती हैं, तथा जीव अपनी अन्तर्दृष्टि से इन्हें प्रत्यक्ष देखता है। जब हम तारतम वाणी के ज्ञान से जाग्रत होकर देखते हैं (चिन्तन करते हैं), तो हमें इसके अपार बल का पता चलता है।

आ लीलानी वातडी, जिभ्याए कही न जाय।
सुख जागतां माणिए, मनोरथ पुराय।।१०९।।

इस जागनी लीला की महिमा को शब्दों से नहीं कहा जा

सकता। जाग्रत हो जाने पर धनी के सुखों का अनुभव होता है तथा अन्य लौकिक (धर्मानुकूल) इच्छायें भी पूर्ण होती हैं।

ए बल आ लीलातणो, सर्वे वचन केहेसे।
रास प्रकास सुणी करी, बेहद वाणी लेहेसे।।११०।।

तारतम वाणी के वचनों में जागनी लीला की सारी महत्ता (शक्ति) दर्शायी गयी है। सब लोग रास और प्रकाश ग्रन्थ का श्रवण कर बेहद की वाणी को आत्मसात् कर लेंगे।

धंन धंन ब्रह्मांड आ थयो, धंन धंन भरथ खंड।
धंन धंन जुग ते कलजुग, जेमां लीला प्रचंड।।१११।।

यह जागनी ब्रह्माण्ड, भरत खण्ड, तथा यह अट्ठाइसवाँ

कलियुग धन्य-धन्य है, जिसमें अनुपम (प्रचण्ड) महिमा वाली जागनी लीला चल रही है।

धंन धनं पुरी नौतन, जेमां ए लीला थई।
लीला बंने पाधरी, रास प्रकासे कही।।११२।।

वह नवतनपुरी धन्य-धन्य है, जिसमें जागनी लीला प्रारम्भ हुई। यहीं पर हब्शा में रास एवं प्रकाश ग्रन्थ का अवतरण हुआ, जिसमें दोनों लीलाओं (व्रज तथा रास) का स्पष्ट ज्ञान दर्शाया गया है।

धंन धनं धणी साथसो, बीजी वार जे आव्या।
धंन धंन तेज ते तारतम, प्रगट प्रकास लाव्या।।११३।।

धाम धनी धन्य-धन्य हैं, जो सुन्दरसाथ की जाग्रति के लिये दूसरी बार (श्री मिहिरराज जी के तन में) प्रत्यक्ष

आये हैं। तारतम ज्ञान धन्य-धन्य है, जिसमें धाम धनी एवं परमधाम का प्रत्यक्ष ज्ञान दिया गया है।

तारतमे रस बेहद तणो, सर्वे प्रगट कीधो।

घणी विधे सुख साथने, माया जोतां दीधो।।११४।।

तारतम ज्ञान ने बेहद मण्डल का सम्पूर्ण रस प्रकट कर दिया है। इस मायावी ब्रह्माण्ड में रहने पर भी तारतम ज्ञान ने सुन्दरसाथ को अनेक प्रकार का सुख दिया है।

तारतम रस वाणी करी, हूं पाऊं जेहेने।

जेहेर चढयूं होय भोमनो, सुख थाय तेहेने।।११५।।

तारतम वाणी का रस मैं जिसे भी पिला देती हूँ, उस व्यक्ति में भले ही कितना भी माया का विष क्यों न विद्यमान हो, उसे अखण्ड सुख का अनुभव होने लगता

है।

जे जीव निद्रा मूके नहीं, रस पाईए वाणी।

धणी लाव्या एटला माटे, माया बल जाणी।।११६।।

जो जीव माया की नींद को नहीं छोड़ना चाहता है, उसे तारतम वाणी का रस पिलाना चाहिए। माया की प्रचण्ड शक्ति को जानकर ही धाम धनी यह तारतम वाणी लेकर आये हैं।

जेहेर उतारवा साथनूं, लाव्या तारतम।

बेहद रस श्रवणे करी, अमे पाऊं एम।।११७।।

सुन्दरसाथ के हृदय में विद्यमान माया का विष उतारने के लिये ही धाम धनी तारतम वाणी लेकर आये हैं। मैं सब सुन्दरसाथ को बेहद वाणी का रस पिलाऊँगी।

ए रस श्रवणें जेहेने झरे, तेणे सूं करे जेहेर।

जागतां सुपन न उपजे, जोतां वेर।।११८।।

जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में स्वप्न का अस्तित्व नहीं होता, दोनों में स्वाभाविक वैर होता है, उसी प्रकार तारतम वाणी का रस जिसके कानों के माध्यम से हृदय तक पहुँच जाता है, उसे माया का यह विष क्या हानि पहुँचा सकता है।

सुपन होय निद्रातणो, बहु ब्रह्मांड अलेखे।

जेणी खिणे आंख उघाडिए, त्यारे कांई न देखे।।११९।।

स्वप्न नींद में ही बनता है। मन के स्वप्न में अनन्त ब्रह्माण्ड दिखायी देते हैं, किन्तु जिस समय हम अपनी आँखें खोलते हैं, उस समय कुछ भी दिखायी नहीं देता।

एम रस तारतम तणो, चढयूं जेहेर उतारे।
निरविखि काया करे, जीव जागे करारे।।१२०।।

इस प्रकार, तारतम वाणी का रस जीव के हृदय में विद्यमान माया के विष को समाप्त कर देता है और सम्पूर्ण शरीर को विषरहित (निर्विकार) कर देता है, जिससे जीव पूर्णतया जाग्रत हो जाता है।

जागे सुख अनेक छे, आंहीं अलेखे।
चार पदारथ पामिए, जीव द्रष्टें देखे।।१२१।।

जाग्रत हो जाने पर इस संसार में भी इतना सुख प्राप्त होता है कि उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जीव जब जाग्रत होकर अपनी अन्तर्दृष्टि से देखता है, तो उसे इन चार पदार्थों की प्राप्ति होती है– १. धर्म २. अर्थ (सांसारिक ऐश्वर्य) ३. लौकिक सुख ४. मोक्ष (अखण्ड

मुक्ति)।

विशेष– किन्तु जीव के जाग्रत होने के लिये ४ अन्य पदार्थों की आवश्यकता है, जिसके बिना जीव कदापि जाग्रत नहीं हो सकता– १. मानव तन २. भरत खण्ड ३. २८वाँ कलियुग ४. उसमें आने वाले अक्षरातीत और ब्रह्ममुनि।

पदारथ तारतम तणा, केम प्रगट कीजे।
आफणिए ए देखसे, जीव जगवी लीजे।।१२२।।

प्रश्न यह होता है कि तारतम ज्ञान से इन चारों पदार्थों को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि जब आप अपने जीव को जाग्रत कर लेंगे, तो वह स्वयं ही इसका प्रत्यक्ष अनुभव करेगा।

ए वचन प्रगट पाधरा, हूं ता बाहेर पाड्या।

दरवाजा बेहदतणा, अनेक उघाड्या।।१२३।।

सबके समक्ष यह बात मैंने स्पष्ट रूप से कह दी है और बेहद के अनेक दरवाजों (सुखों) की प्राप्ति के मार्ग को खोल दिया है अर्थात् उजागर कर दिया है।

एक अखरनो पा लवो, कहीं ए प्रगट न थाय।

श्री धाम धणी पधारिया, वाणी तो केहेवाय।।१२४।।

इस बेहद वाणी के एक अक्षर का चौथाई अंश भी आज दिन तक कहीं प्रकट नहीं हुआ है। धाम धनी अपनी आत्माओं के लिये आये हैं। यही कारण है कि उनके द्वारा इस वाणी का अवतरण हुआ है।

साथ जुए मायातणी, रामत जुजवा थई।

तेडी घरे सिधाविए, वाणी ते माटे कही।।१२५।।

सुन्दरसाथ अलग-अलग स्थानों में अवतरित होकर इस मायावी खेल को देख रहे हैं। यह तारतम वाणी इसलिये कही गयी है कि उनको बुलाकर (जाग्रत कर) परमधाम ले चलना है।

ए रामत मायातणी, मुकाय नहीं।

ब्रह्मांडनी कारीगरी, सारी कीधी सही।।१२६।।

इस मायावी खेल का आकर्षण ऐसा है कि वह सरलता से छूटता ही नहीं है। यही कारण है कि धाम धनी ने अपनी कृपा-दृष्टि से तारतम वाणी के प्रकाश में इस संसार की सम्पूर्ण स्थिति को ही संतुलित (उचित, ठीक) कर दिया है।

पारेवडा गुडिया तणां, जेम कंडियो भरियो।

फूंक मारी जुए फरी, तरत खाली करियो।।१२७।।

जिस प्रकार एक जादूगर अपनी चमत्कारिक विद्या से अपनी पिटारी को कबूतरों से भर देता है और जब फूँक मारकर पुनः देखता है तो सारी पिटारी पहले जैसी खाली ही दिखायी देती है।

एम बाजी मायातणी, ब्रह्मांडज रचियो।

देखी बाजी पारेवडा, साथ मांहें मचियो।।१२८।।

उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के मन रूप अव्याकृत (सुमंगला–पुरुष) ने बाजीगर रूप में इस मायावी ब्रह्माण्डों को रचा है। सुन्दरसाथ भी इन माया के जीवों (कबूतरों) के खेल को देखकर इसमें उलझ गया है।

आंबो वावी जल सीचियो, खिणमां फूले फलियो।
विध विधनी रंग वेलडी, वन ऊपर चढियो।।१२९।।

जादूगर आम की गुठली को जैसे ही जमीन में गाड़कर जल से सींचता है, वैसे ही उसी क्षण उसमें से पौधा निकल आता है और उसमें फल–फूल (बौर) दिखायी देने लगते हैं। अनेक रंगों की लतायें भी उस पर चढ़ी हुई दिखती हैं।

ते देखी चित भरमियो, सुध नहीं सरीर।
विकल थई रंग वेलडी, चित ना रहे धीर।।१३०।।

उसे देखकर चित्त इतना भ्रमित हो जाता है कि शरीर की भी सुधि नहीं रहती। अनेक रंगों की लताओं को देखकर व्याकुल हो जाने वाले चित्त में जरा भी धैर्य नहीं रहता।

ततखिण ते दीसे नहीं, बाजीगर हाथ।

आंबो न कांई वेलडी, एणे रंगे बांध्यो साथ।।१३१।।

उसी क्षण जादूगर के हाथ में न तो आम का वृक्ष दिखायी देता है और न कोई लता दिखती है। इसी प्रकार के सवप्नवत् मिथ्या अस्तित्व वाले मायावी संसार में सुन्दरसाथ फँस गये हैं।

सुध सरीर विसरी गई, विसरी गया घर।

कीडी कुंजर गली गई, अचरज या पर।।१३२।।

इस मायावी जगत में आकर ब्रह्मसृष्टियों ने अपने मूल तन एवं मूल घर की सुधि भी भुला दी है। यह स्थिति वैसे ही है, जैसे यह कहा जाये कि चींटी अर्थात् माया ने हाथी (ब्रह्मसृष्टि) को निगल लिया है। यह कितने आश्चर्य की बात है।

अदभुत एक जुओ सखी, ए अचरज मोटो।

वस्त खरी ने लई गयो, जेहेनो मूल छे खोटो।।१३३।।

हे साथ जी! यह कितनी अद्भुत बात है। बहुत बड़े आश्चर्य में डुबो देने वाली इस बात के विषय में सोचिये। जिस माया का मूल ही झूठ से है, उसने शाश्वत सत्य कही जाने वाली ब्रह्मात्माओं को अपने अधीन कर लिया है।

निद्रा साथने जोर थई, एम सुपन वाध्यो।

रामत मांहेंथी बल करी, नव जाए काढ्यो।।१३४।।

सुन्दरसाथ में माया की नींद का प्रभाव बढ़ जाने से उनमें संसार के प्रति मोह भी बढ़ गया है। ऐसी अवस्था में उन्हें केवल कथन मात्र से माया से नहीं निकाला जा सकता।

ते माटे वाणी बेहद तणी, केहे निद्रा टालूं।

सुपन न दऊं वाधवा, चढ्यूं जेहेर उतारूं।।१३५।।

इसलिये मुझे इस बेहद वाणी द्वारा उनकी मायामयी नींद को समाप्त कर देना है। अब मैं उनमें संसार के प्रति मोह नहीं बढ़ने दूँगी तथा उनके हृदय में जो माया का विष (माया के सुख की तृष्णा) विद्यमान हो गया है, उसे भी समाप्त कर दूँगी।

कुंजर काढूं कीडी मुख, सुध आणूं सरीर।

वचन कही ने जुजवा, करूं खीर ने नीर।।१३६।।

मैं चींटी के मुख से हाथी को निकालूँगी, अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों को माया के बन्धन से मुक्त कराऊँगी। उन्हें अपने मूल तन परात्म की सुधि दूँगी, तथा बेहद वाणी के वचन सुनाकर ब्रह्म और माया के स्वरूप की अलग–

अलग पहचान बताऊँगी।

खोटाने खोटू करूं, साचा सागर तारूं।
वाणिए रस पाई करी, साथ ना कारज सारूं।।१३७।।

सत्य में स्थित रहने वाली ब्रह्मात्माओं को मैं यह बोध कराऊँगी कि झूठी माया के प्रति उसकी आसक्ति मिथ्या (निरर्थक) है। इस प्रकार, मैं उन्हें इस भवसागर से पार कर दूँगी। तारतम वाणी का रस पिलाकर मैं सुन्दरसाथ के कार्य को सिद्ध कर दूँगी।

तारतम रस पाई करी, साथ घेर पोहोंचाडूं।
धंन धंन कहिए तारतम, जेणे थयूं अजवालूं।।१३८।।

मैं सुन्दरसाथ को तारतम वाणी का रस पिलाकर परमधाम पहुँचाऊँगी। वह तारतम ज्ञान धन्य-धन्य है,

जिसने अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण इस संसार में परमधाम के ज्ञान का उजाला कर दिया।

ए अजवालूं साथने, रामत जोवा लाव्या।

बीजा बंधाणा बंधसूं, विध विधनी माया।।१३९।।

सुन्दरसाथ को माया का खेल द्रष्टा–भाव से दिखाने के लिये ही धाम धनी तारतम ज्ञान का उजाला लेकर आये हैं। जीवसृष्टि के अन्य प्राणी तो तरह–तरह के मायावी बन्धनों में बन्धे हुए हैं।

बीजा त्रीजा हूं तो कहूं, जो साथने माया थइ भारी।

साथ सुपन जुए सत करी, तो हूं कह्यूं विचारी।।१४०।।

सुन्दरसाथ के ऊपर माया हावी होती जा रही है (प्रभुत्व स्थापित करती जा रही है)। इसलिये मुझे विवश

होकर दूसरी, तीसरी, अर्थात् ईश्वरीय एवं जीव सृष्टि की भी बात करनी पड़ रही है। सुन्दरसाथ इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड को ही सत्य मान रहा है, इसलिये मैंने इस सम्बन्ध में आपसे विचार करने के लिये अपनी बात कही है।

विचारी सुपन मुकाविए, तो थाय बंने पेर।
सुख ते सुपने जोइए, हरखे जागिए घेर।।१४१।।

यदि आप उपरोक्त कथन का विचार करके स्वप्नमयी जगत का मोह छोड़ देते हैं, तो दोनों काम सिद्ध हो जायेंगे। आप सुखपूर्वक माया का खेल भी देख सकते हैं और आनन्दपूर्वक परमधाम में जाग्रत भी हो सकते हैं।

तारतम पख बीजो कोई नथी, साथ विना सहु सुपन।
जगवुं माया खोटी करी, धाख रखे रहे मन।।१४२।।

तारतम ज्ञान का एकमात्र यही उद्घोष है कि सुन्दरसाथ के अतिरिक्त इस संसार में अन्य सब कुछ स्वप्नमयी है। सबके हृदय में माया को झूठा सिद्ध करके उन्हें जगाना है, जिससे उनके मन में यह धारणा (चाहना) न रहे कि माया तो बहुत अच्छी (सत्य) थी, हमने इसके सुखों का पूर्ण उपभोग क्यों नहीं किया।

ते माटे पेर बंने करूं, सुपन हरखे समावूं।
चरणे लागी कहे इंद्रावती, साथ जुगते जगावूं।।१४३।।

धाम धनी के चरणों में प्रणाम करती हुई श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! आपके आदेश से मैं ये दोनों कार्य करूँगी। तारतम वाणी का रस देकर

सुन्दरसाथ के हृदय से आनन्दपूर्वक इस स्वप्नमयी जगत का मोह हटा दूँगी तथा उन्हें युक्तिपूर्वक जाग्रत कर दूँगी।

प्रकरण ।।३१।। चौपाई ।।९३६।।

दूध पाणीनो विछोडो

दूध (जीव) तथा पानी (मन) का विवरण

वली वण पूछे कहूं विचार, कारण साथ तणे आधार।
रखे केहेने उत्कंठा रहे, श्री सुन्दरबाई ते माटे कहे।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं अपने जीवन के आधार सुन्दरसाथ के लिये उनके बिना पूछे ही अपना एक विचार रख रही हूँ। मेरे धाम-हृदय में विराजमान होकर श्री श्यामा जी ऐसा इसलिये कह रही हैं कि अब किसी के भी मन में किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाना चाहिये।

आगे एम वचन केहेवाय, जे कीडी पग कुंजर बंधाय।
डूंगरतां त्रणे ढांकियो, पाधरो प्रगट कोणे नव थयो।।२।।

पहले से पहेली के रूप में यह बात कही जाती रही है कि चींटी के पैर में हाथी बन्ध गया तथा तिनके ने पहाड़ को ढक लिया। किन्तु अब तक किसी ने भी इसका स्पष्ट भेद नहीं दर्शाया है।

कीडी कुंजरने बेठी गली, तेहेनी तां कोणे खबर न पडी।
केहेने तो कहूं छूं एम, जे माया भारे थइ छे तेम।।३।।

चींटी ने हाथी को निगल लिया, किन्तु इसका ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ। आपके लिये माया बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है, इसलिये मुझे इस तरह के शब्द कहने पड़ रहे हैं।

सनकादिक ब्रह्माने कहे, जे जीव मन बेहू भेला रहे।
ते जुजवा करीने देयो, सनकादिके एम प्रश्न कहयो।।४।।

सनकादिक ऋषियों ने ब्रह्मा जी से एक प्रश्न किया कि जीव और मन जो हमेशा साथ–साथ रहते हैं, आप उन्हें अलग–अलग करके बताइये।

त्यारे ब्रह्मा मन विमास्या रही, मन मांहें अति चिंता थई।
ए पडउत्तर हूं थी नव थयो, त्यारे बैकुंठनाथने सरणे गयो।।५।।

यह सुनकर ब्रह्मा जी ने अपने मन में सोच–विचार किया और चिंतित हो गये कि इस प्रश्न का उत्तर तो मुझसे नहीं हो पायेगा। अन्ततोगत्वा, वे वैकुण्ठ के स्वामी भगवान विष्णु के पास गये।

भगवानजी ज्यारे तेणे ताल, हंस रूप लाव्या तत्काल।
हँसजीने जीवे ओलख्यूं, त्यारे मन आडो फरीने वल्यूं।।६।।

तब भगवान उसी क्षण हँस रूप धारण कर उनके समक्ष

उपस्थित हुए। सनकादिक के जीव ने हँस रूप में अपने समक्ष उपस्थित भगवान विष्णु को पहचान तो लिया, किन्तु उसी क्षण मन ने उनके ऊपर पुनः संशय का आवरण डाल दिया।

सनकादिके एम पूछ्यूं वचन, जीवने चांपी बेठो मन।
त्यारे हँसजीए कीधो जवाब, समझया सनकादिक भाग्योवाद।।७।।

सनकादिक ऋषियों ने पूछा कि क्या मन जीव पर अधिकार करके रहता है? तब हँस रूप विष्णु भगवान ने उत्तर दिया, जिससे सनकादिक को सत्य की समझ हो गयी और उनके संशय नष्ट हो गये।

वाधे भारे समझाविया, पण दूध पाणी नव जुजवा थया।
तेहेनो तमसुं करूं जवाब, समझावाने काजे साथ।।८।।

इस प्रकार भगवान विष्णु ने संकेतों से इस गहन रहस्य को समझा दिया, किन्तु उनसे भी जीव और मन (दूध एवं पानी) का अलग–अलग स्पष्ट निरूपण नहीं हो सका। इसलिये आप सुन्दरसाथ को यह रहस्य समझाने के लिये मैं उत्तर देती हूँ।

समझीने ओलखो धणी, चालो आपणे घरज भणी।
ए चारेनो अर्थज एह, रखे कांई तमने रहे संदेह।।९।।

इसे समझकर आप अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत की पहचान कीजिए तथा परमधाम के स्वर्णिम मार्ग की ओर चलिये। आपके मन में किसी भी प्रकार संशय न रह जाये, इसलिये तारतम वाणी के प्रकाश में इन चारों का अर्थ इस प्रकार है।

एहेनो जे जोतां अर्थ, तेहेने जवाब एम देता ग्रन्थ।
अकल अगम बैकुंठनो धणी, ए थोडी हजी करे घणी।।१०।।

यदि इनके अर्थ पर विचार किया जाये, तो धर्मग्रन्थों से इनका उत्तर इस प्रकार प्राप्त होता है। वैकुण्ठ के स्वामी भगवान विष्णु अनन्त (महान) बुद्धि के स्वामी हैं। वे थोड़े ही शब्दों में बहुत अधिक समझा सकते हैं।

एह करता सर्वे थाय, पण ओल्यूं अर्थ ते तणाण्यूं जाय।
अर्थ उत्कंठा रहे मन मांहें, समझ कोणे नव पडे क्याहें।।११।।

यदि भगवान विष्णु चाहें तो सभी ग्रन्थों के अर्थ स्पष्ट कर सकते हैं, किन्तु वे हमेशा गोपनीय बनाये रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि संसार में ग्रन्थों का अभिप्राय जानने में खैंचा–खैंच (विवादास्पद स्थिति) बनी रहती है। यद्यपि सभी के मन में ग्रन्थों के वास्तविक

अर्थ को जानने की चाहना तो रहती है, किन्तु कोई भी जान नहीं पाता।

हवे समझावुं जो जो वाणी, दूध विछोडा करी दऊं पाणी।
जो जीव साख पूरे आपणो, अर्थ खरो तो तारतम तणो।।१२।।

हे साथ जी! अब मैं आपको समझाती हूँ। मेरे इस कथन पर विचार करना। मैं दूध और पानी (जीव तथा मन) को अलग-अलग करके बताती हूँ। तारतम ज्ञान के प्रकाश में किसी भी ग्रन्थ का वास्तविक आशय स्पष्ट हो जाता है और जीव भी अपने हृदय से इसकी पुष्टि से साक्षी देता है अर्थात् वह संशयरहित हो जाता है।

हवे संभारजो जीवसुं वात, जीव तणो मोटो प्रकास।
चौद भवन अजवालूं करे, जो जीव जीवनने रूदे धरे।।१३।।

अब आप जीव के विषय में सुनिए। शुद्ध अवस्था में जीव के अन्दर ज्ञान का बहुत अधिक प्रकाश होता है। यदि जीव अपने हृदय में प्रियतम परब्रह्म का प्रेम बसा लेता है, तो वह चौदह लोक वाले इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ज्ञान का प्रकाश कर सकता है।

एह छे एवो समरथ, एहेना बलनो कहीस अर्थ।
नहीं राखूं संदेह लगार, जाणी साथ घरनो आधार।।१४।।

यह जीव इतना सामर्थ्यवान् है कि मैं इसके बल का रहस्य बताती हूँ। सुन्दरसाथ को परमधाम का अपना प्राणजीवन समझकर मैं आपके मन में थोड़ा सा भी संशय नहीं रहने दूँगी।

मन तणूं नथी कांई मूल, तेथी भारे आंकडा नूं तूल।

एक अरधी पांखडी नथी जेटलो, पण पग थोभ माटे कह्यो एटलो।।१५।।

मन का कोई स्थूल रूप नहीं होता। इससे भारी तो आक की रुई का फूहा होता है। एक फूहे की आधी पँखुड़ी के बराबर भी मन नहीं होता, किन्तु सबके ऊपर पैर रखकर अर्थात् अपना अधिकार जमाकर बैठा रहता है। इसलिये मन के सम्बन्ध में यह कहा जाता है।

ते बेठो जीवने ऊपर चढी, कीडी कुंजर एम बेठी गली।

एम त्रणे डूंगर ढांकयो, एम गज कीडी पग बांधयो।।१६।।

वह जीव के ऊपर चढ़कर बैठा है (अधिकार करके बैठा है)। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि मन रूपी चींटी ने हाथी रूपी जीव को निगल लिया है। यह भी कह सकते हैं कि तिनके (मन) ने पर्वत (जीव) को ढक लिया है।

इसी प्रकार, हाथी (जीव) को चींटी (मन) के पैरों से बँधा हुआ भी कहा जाता है।

जो जीव पोते करे अजवास, तो मने नव खमाय प्रकास।
ते ऊपर कहूं दृष्टांत, जो जो पोतानू वृतांत।।१७।।

यदि जीव अपने स्वरूप में स्थित होकर अपने आत्म-बल का प्रयोग करे, तो मन का कुछ भी वश नहीं चलता है। इस सम्बन्ध में मैं एक दृष्टान्त देकर आपको समझाती हूँ, जो स्वयं आपके साथ घटित हो चुका है।

सुकजीना कहया प्रमाण, सात सागरनो काढ्यो निरमाण।
भव सागरनो न आवे छेह, सुकजी एम पाधरूं कहे।।१८।।

शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत् में यह द्रष्टान्त उद्धृत किया है जिसमें सात सागरों का परिमाण वर्णित है, किन्तु शुकदेव

जी स्पष्ट कहते हैं कि भवसागर की तो कोई सीमा ही नहीं है, वह अनन्त है।

हवे पगला जे भरिया प्रमाण, जो जो जीव तणूं बल जाण।
पेहेले फेरे आपण नीसरयां, भवसागर ते केम करी तरयां।।१९।।

अब मैं एक प्रमाण देती हूँ, जिससे जीव के बल को जाना जा सकता है। पहली बार व्रज से रास में जाते समय हमने प्रेम का जो मार्ग अपनाया था, उससे यह सीख मिलती है कि हमने किस प्रकार इस अथाह भवसागर को भी सरलता से पार कर लिया था।

जेनो नव काढ्यो निरमाण, सुकजीना वचन प्रमाण।
गोपद वछ वली सुकजीए कह्यो, भवसागर एम साथने थयो।।२०।।

शुकदेव जी के वचन इस बात की साक्षी देते हैं कि जिस

भवसागर की सीमा बताने में वे पूर्णतया असमर्थ हैं, उसे गोपियों (ब्रह्मसृष्टियों) ने गोपदवच्छ के समान बहुत ही सरलता से पार कर लिया।

एटलो पण नथी द्रष्टे पड्यो, पग थोभ माटे पुस्तक चढ्यो।
जीव तणो जो जो ए बल, खरी वस्त जे कही नेहेचल।।२१।।

इतना अनन्त भवसागर भी ब्रह्मसृष्टियों को दिखायी नहीं दिया, जबकि मन द्वारा सबके ऊपर शासन किये जाने की बात को लेकर पूरा ग्रन्थ ही लिख दिया जाता है। हे साथ जी! आप जीव की शक्ति तो देखिये। उसे धर्मग्रन्थों में सत्य और अखण्ड कहा गया है।

भवसागर केम एटलो थयो, जो जीव खरे जीवनजी ग्रहयो।
त्यारे मन एकलो बेसी रहयो, खोटो मन खोटामां भल्यो।।२२।।

यह विचारणीय तथ्य है कि जब गोपियों के जीव ने अपने प्रियतम को पहचान लिया, तो उनके लिये यह अथाह भवसागर भी किस प्रकार गोपदवच्छ (गाय के बछड़े के खुर से बने हुए गड्ढे में स्थित जल) के समान इतना छोटा सा हो गया था। उस समय मन निर्बल होकर चुपचाप बैठा रहा। अन्ततोगत्वा, झूठे मन को झूठ (महत्तत्व) में विलीन होना ही था।

दूध लीधूं एम जुओ करी, पाणीने मूक्यूं परहरी।
दूध पाणीनो जुओ विचार, जुआ करी ओलखो आधार।।२३।।

इस प्रकार, व्रज से रास में जाते समय गोपियों ने विवेकपूर्वक अपनी अन्तःचेतना (जीव) की पुकार को ग्रहण किया तथा मिथ्या मन को छोड़ दिया। हे साथ जी! मन और जीव के सम्बन्ध में मेरे इस विचार के सम्बन्ध

में सोचिए और चिन्तनपूर्वक अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की पहचान कीजिए।

आपण मांहें बेठा छे सही, चरण कमल रेहेजो चित ग्रही।
भरम भाजी ओलखजो धणी, दया आपण ऊपर अति घणी।।२४।।

धाम धनी हमारे मध्य (मेरे धाम-हृदय में) विराजमान होकर बैठे हैं। उनके प्रेम-भरे चरण-कमलों को अपने धाम-हृदय (चित्त) में बसाइये। अपने सभी संशयों को छोड़कर प्राणेश्वर अक्षरातीत की पहचान कीजिए। उनकी अपार दया की वर्षा पल-पल हम सुन्दरसाथ पर हो रही है।

इंद्रावती कहे ओलखो आधार, तारतम जीवसूं करो विचार।
सुफल फेरो थाय संसार, वली वली नहीं आवे आवार।।२५।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! तारतम वाणी के प्रकाश में अपनी अन्तरात्मा से विचार कीजिए तथा अपने प्राणजीवन अक्षरातीत की पहचान कीजिए, जिससे इस संसार में आपका आना सार्थक हो जाये। यह स्वर्णिम अवसर बार–बार प्राप्त होने वाला नहीं है।

प्रकरण ।।३२।। चौपाई ।।९६१।।

श्री भागवतनो सार

भागवत का सार

सांभलो साथ कहूं विचार, फल वस्त जे आपणो सार।
ते जोईने आवो घरे, रखे अमल तमने अति चढे।।१।।

हे साथ जी! मैं अपना एक विचार कहती हूँ, उसे सुनिये। मेरे कथन का जो निर्णय रूप सार तत्व है, उसका विचार कर अपने परमधाम आइए (चलिए)। यह बात मैं इसलिये कह रही हूँ कि आपको माया का विष (नशा) अधिक प्रभावित न कर सके।

ए अमलतणो मोटो विस्तार, ते नेठ नव जोवो निरधार।
आगे आपणने वारया सही, श्री मुख वाणी धणिए कही।।२।।

माया के इस नशे का इतना अधिक विस्तार है कि निश्चित रूप से यह देखने योग्य नहीं है। धाम धनी ने परमधाम में ही हमें इस मायावी जगत में आने से रोका था और हमें जाग्रत करने के लिये ही उन्होंने मेरे तन से यह "श्रीमुखवाणी" (तारतम वाणी) भी कही है।

ते माटे तमने देखाडूं सार, आपण घरने आपणा आधार।
विहिला थयानी नहीं आवार, आंहीं तमने नहीं मूकूं निरधार।।३।।

इसलिये अब मैं इस तारतम ज्ञान के सार रूप तत्व, तथा अपने धनी, और अपने परमधाम की पहचान कराती हूँ। यह प्रियतम से अलग होने का समय नहीं है। निश्चित रूप से मैं आपको इस मायावी संसार में नहीं छोड़ूँगी।

वेदतणो सार भागवत थयो, तेहेनो सार दसमस्कन्ध कहयो।
दसमतणा अध्याय नेऊ, तेहेनो सार काढीने देऊं।।४।।

वेद का सार तत्व श्रीमद्भागवत् है, जिसका सार तत्व दशवाँ स्कन्ध है। दसवें स्कन्ध में ९० अध्याय हैं, जिनके सार तत्व को ग्रहण करके मैं पुनः आपको देती हूँ।

नेऊ मांहें अध्याय पांत्रीस, जे वृज लीला कीधी जगदीस।
जगदीस वचन एणें न केहेवाय, एम न कहूं तो विगत केम थाय।।५।।

नब्बे में से ३५ अध्याय प्रमुख हैं, जिसमें श्री कृष्ण जी द्वारा की गयी व्रज लीला का वर्णन है। श्री कृष्ण जी को जगदीश नाम से कहा जाना उचित नहीं है, किन्तु यदि मैं ऐसा न कहूँ तो वास्तविकता का बोध कैसे होगा।

ते माटे हूं कहयूं एम, नहीं तो रामत जे कीधी श्री कृष्ण।

ए नामनुं तारतम में केम केहेवाय, साथ संभारी जुओ जीव मांहें।।६।।

इसलिये मैं यह बात कह रही हूँ, अन्यथा रामतें तो श्री कृष्ण जी ने की हैं। हे साथ जी! यदि आप अपने जीव के हृदय में विचार करके देखें, तो इस श्री कृष्ण नाम को तारतम में कैसे कहा जा सकता है?

भावार्थ– उपरोक्त पाँचवी चौपाई में कहा गया है कि "जे वृज लीला कीधी जगदीस", किन्तु प्रकास हिंदुस्तानी में कहा गया है कि "जगदीस नाम विष्णु को होए, यों न कहूं तो समझे क्यों कोए।" प्रश्न यह है क्या भगवान विष्णु ब्रह्मात्माओं के साथ लीला कर सकते हैं?

तो इसका तत्क्षण उत्तर होगा– नहीं। किन्तु प्रकास गुजराती में "जगदीस" शब्द आने का कारण यह है कि भगवान विष्णु ने जो तन धारण किया था, उसका नाम

श्री कृष्ण था, जिन्हें विष्णु भी कहा जाता है। इस तन में अक्षर की आत्मा के साथ धाम धनी का आवेश भी विराजमान था। यदि आवेश न होता, तो भगवान विष्णु रूप श्री कृष्ण एक पल भी आत्माओं के साथ लीला नहीं कर सकते थे। महारास के समय ऐसी ही लीला हुई, जब अन्तर्धान के प्रसंग में अक्षर ब्रह्म की आत्मा से आवेश के हटते ही सखियों को श्री कृष्ण जी का तन दिखायी नहीं दिया, जबकि वह वहीं पर था।

सामान्यतः व्यवहार में यही देखा जाता है कि कार्य तो आन्तरिक स्वरूप करता है, किन्तु जन-सामान्य बाह्य तन को ही लीला कर्ता मानकर उसका नाम जपने लगते हैं। यही कारण है कि लीला करने वाले तो अक्षरातीत हैं, किन्तु लोक में प्रसिद्धि तन के नाम श्री कृष्ण या जगदीश की हो रही है।

उपरोक्त छठी चौपाई में इसी सत्य को उद्घाटित किया जा रहा है कि शरीर के नाम श्री कृष्ण को तारतम में कैसे कहा जा सकता है? इसी प्रकार, श्री देवचन्द्र जी या श्री मिहिरराज जी भी अक्षरातीत के नाम के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते।

यदि "निजनाम श्री कृष्ण जी, अनादि अक्षरातीत" हो सकता है, तो "निजनाम श्री देवचन्द्र जी" या "निजनाम श्री मिहिरराज जी" क्यों नहीं हो सकता? यदि यह कहा जाये कि श्री राज जी ने श्री देवचन्द्र जी को अपनी पहचान देते समय "निजनाम श्री कृष्ण जी" कहा था, उसमें "निजनाम श्री देवचन्द्र जी" या "निजनाम श्री मिहिरराज जी" कैसे कहा जा सकता है, क्योंकिं उस समय तो इन तनों से लीला का प्रारम्भ ही नहीं हुआ था?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि तारतम वाणी या बीतक में ऐसा कहीं भी कोई कथन नहीं है कि श्री राज जी ने श्याम जी के मन्दिर में तारतम की एक चौपाई कही हो। उन्होंने देर तक वार्ता की और अपने स्वरूप की पहचान देने के साथ ही परमधाम के प्रेम-संवाद से लेकर व्रज, रास, एवं जागनी लीला की भी वास्तविकता बतायी। सम्भवतः उन्होंने यह भी कहा हो कि व्रज-रास में मेरे लीला रूप तन का नाम श्री कृष्ण था। तारतम की एक चौपाई का अवतरण तो "अन्दर तुम्हारे आकार के, आए के बैठे हम" के पश्चात् जब वे अपने घर चाकला मन्दिर आये, तो वहाँ हुआ।

जब प्रकाश ग्रन्थ के अधिकतर प्रकरणों में यह बात दर्शायी गयी है कि श्री इन्द्रावती जी के धाम-हृदय में लीला करने वाले वही अक्षरातीत हैं, जिन्होंने व्रज-रास

में लीला की थी तथा वे ही परमधाम में सिंहासन पर विराजमान हैं, तो किस आधार पर श्री देवचन्द्र जी एवं श्री प्राणनाथ जी को मात्र गुरु, कवि, सन्त, महापुरुष आदि लौकिक उपाधियों से सम्बोधित किया जाता है? जब श्री कृष्ण अक्षरातीत हो सकते हैं, तो श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज जी अक्षरातीत क्यों नहीं हो सकते? जब श्री कृष्ण जी का नाम तारतम में आ सकता है, तो श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज का नाम तारतम में क्यों नहीं हो सकता?

वास्तविक सत्य यह है कि ये तीनों नाम (श्री कृष्ण, श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री मिहिरराज) शरीरों के हैं, मूल स्वरूप अक्षरातीत के नहीं, इसलिये इन तीनों नामों को तारतम में अक्षरातीत के लिये प्रयुक्त करना उचित नहीं है।

यह सार्वभौम सत्य है कि अक्षरातीत ने इन तीनों तनों में लीला की है, किन्तु उनका नाम (सम्बोधनात्मक शब्द) विशेषणात्मक होगा, शरीरपरक नहीं, क्योंकि शरीर नश्वर होता है और नश्वरता का दोष ढोने वाले शारीरिक नाम को अक्षरातीत के नाम के रूप में नहीं जोड़ा जा सकता। जब श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान के पश्चात् उनके शरीर का दाह-संस्कार हो चुका है, तो आज हम कैसे कह सकते हैं कि श्री देवचन्द्र जी अक्षरातीत हैं, जबकि यह कटु सत्य है कि श्री देवचन्द्र जी के अन्दर स्वयं धाम धनी ने ही लीला की है।

इसके विपरीत गुणपरक विशेषणात्मक नाम अनादि और अखण्ड है। शरीर के नष्ट होने पर भी इनका अस्तित्व बना रहता है। श्री राज, श्री प्राणनाथ जी, या श्री जी गुणपरक नाम हैं, शरीरपरक नहीं। श्री केशवराज

जी ने अपने पुत्र का नाम "मिहिरराज" रखा, "प्राणनाथ" नहीं। यदि केवल श्री कृष्ण नाम ही अक्षरातीत का है, तो द्वारिकाधीश श्री कृष्ण, मथुराधीश श्री कृष्ण को अक्षरातीत मानने में आपत्ति क्यों?

ऐसी स्थिति में तो कोई भी स्वयं का, अपने पुत्र, या पौत्र का नाम श्री कृष्ण रखकर उसे अक्षरातीत बना सकता है। यह कथन नितान्त हास्यास्पद है कि अक्षरातीत का मूल नाम श्री कृष्ण ही है और श्री राज नाम तो एक पद है, विशेषण है, या सबके स्वामी या राजा होने के कारण एक उपाधि है। यह नाम कदापि नहीं हो सकता।

इस सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्य के नाम और परब्रह्म के नाम में महान अन्तर होता है। परब्रह्म के नाम सर्वदा ही उनके

गुणों के आधार पर रखे जाते हैं, और वे सभी अनादि एवं अखण्ड होते हैं। प्रत्येक नाम के साथ उसके अर्थ और गुण सदा ही संयुक्त रहते हैं। क्या कोई व्यक्ति अपना नाम रावण, कंस, कालनेमि, जरासन्ध आदि रख सकता है? निरर्थक शब्द कदापि नाम का रूप नहीं ले सकते।

यदि यह कहा जाये कि श्री कृष्ण नाम भी भावमूलक है, और इसका अर्थ भी आकर्षणशील या भवदुःख–विच्छेदक ब्रह्म होता है, तथा यह वेदों में सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही चला आ रहा है, तो प्रश्न यह है कि आप ऐसी स्थिति में श्री राज, श्री प्राणनाथ या श्री जी का खण्डन ही क्यों करते हैं? क्या ये परब्रह्म के शाश्वत नाम नहीं हैं।

आपणां घरणी वातज थई, अने तमने थाकी हूं कही कही।
ए घर केम हूं प्रगट करूं, तम थकी नथी कांईए परूं।।७।।

हे साथ जी! यह तो अपने घर की बात है और मैं आप से कह–कहकर थक चुकी हूँ। मैं अपने परमधाम के ज्ञान को कैसे प्रकट करूँ, किन्तु मैं आपसे अलग भी तो नहीं हूँ।

ते माटे हूं कह्यूं घणुए, नहीं तो एटलूं केहेवूं स्या ने पडे।
आ प्रगट कीधूं ते तम माट, नहीं तो आ वचन कांई नव केहेवात।।८।।

इसलिये मैंने इतना अधिक कहा है, अन्यथा इतना कहने की आवश्यकता ही क्या थी। उपरोक्त बातें मैंने आपके लिये ही कही हैं, नहीं तो कोई भी ऐसा नहीं कहता।

हवे घर ओलखी ग्रहजो मन, घणूं तमने कहयूं तारतम।
ए जाणजो मन जीवतणे, पेरे पेरे तमने कहयूं विध घणे।।९।।

आपको मैंने तारतम ज्ञान से बहुत अधिक समझा दिया है। इसलिये अब आप परमधाम की पहचान करके उसे अपने मन (हृदय) में बसा लीजिए। अपने जीव के मन में इस बात को अच्छी तरह से जान जाइए। आपसे मैंने यह बात कई प्रकार से बार–बार कही है।

ते माटे हूं फरी फरी कहूं, जे माया अमल सवल चढयूं।
अमल उतारो प्रकास जोई करी, अने भरम गेहेन मूको परहरी।।१०।।

हे साथ जी! इसलिये मैं बार–बार कह रही हूँ कि आपके ऊपर माया का बहुत गहरा नशा चढ़ चुका है। इस प्रकाश ग्रन्थ का चिन्तन करके अपने अन्दर के मायावी नशे तथा गहरे संशय को पूर्णतया दूर कर

दीजिए।

अनेक विधें कहयूं प्रबोध, हवे रखे रूदे राखो निरोध।
सुणजो ए अध्याय पांत्रीस, जुआ वली कीधां मांहेंथी त्रीस।।११।।

मैंने आपको जाग्रत करने के लिये अनेक बार प्रबोधित किया है, इसलिये अब आप अपने हृदय में किसी भी प्रकार का नकारात्मक भाव न रखिए। भागवत के दसवें स्कन्ध के ३५ अध्यायों को सुनिए। पुनः उसके तीस अध्यायों को अलग करके शेष अध्यायों को देखिये।

पंच अध्याई सुकजीए कही, पण परीछित नव सक्यो ते ग्रही।
प्रश्न चूक्यो थयो अजाण, रास लीला न वरणवी प्रमाण।।१२।।

शुकदेव जी ने पंचाध्यायी रास का वर्णन किया, किन्तु परीक्षित उसे यथार्थ रूप से ग्रहण नहीं कर सके।

परीक्षित के प्रश्न कर देने के कारण शुकदेव जी का ध्यान भंग हो गया और जोश न रहने से वे महारास के सम्बन्ध में अनजान से हो गये। इस प्रकार, रास का वर्णन नहीं हो सका।

त्यारे हाथ निलाटे नाख्यो सही, सुकजी कहे मुख मांहेंथी रही।
हूं जोगी तूं राजा थयो, रासतणो सुख नव जाए कह्यो।।१३।।

तब अपने मस्तक पर हाथ मारकर शुकदेव जी ने अपने मुख से कहा कि परीक्षित, मैं एक योगी हूँ और तू राजा है। रास का सुख अब मुझसे नहीं कहा जा सकता है।

ए वचन मारे मुखथी नव पडे, न कांई तारे श्रवणा संचरे।
आ जोग आपण नथी बेहू, तो ए लीला सुख केणी पेरे सहूं।।१४।।

रास की लीला का वर्णन न तो अब मेरे मुख से कहा जा

सकता है और न तुम्हारे कानों में प्रवेश कर सकता है। हम दोनों ही इसके योग्य नहीं हैं, तो इस लीला के सुख को भला हम दोनों कैसे सहन कर सकते हैं?

एहेना पात्र हसे ए जोग, आ लीलानो ते लेसे भोग।
केसरी दूध न रहे रज मात्र, उत्तम कनक विना जेम पात्र।।१५।।

इस लीला का रसास्वादन करने के पात्र जो ब्रह्ममुनि होंगे, एकमात्र वे ही इसकी अनुभूति करेंगे। शुद्ध स्वर्ण पात्र के बिना सिंहनी का अंश मात्र भी दूध किसी अन्य पात्र (बर्तन) में नहीं ठहर सकता।

एह वचन सुणीने राय, पडयो भोम खाय मुरछाय।
कम्पमान थई कलकल्यो, रूदन करे रूदे अंतर गल्यो।।१६।।

शुकदेव जी के मुख से इस प्रकार का कथन सुनते ही

राजा परीक्षित मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। वे रोते हुए काँपने लगे। रोते–रोते उनका हृदय दुःख के अथाह सागर में डूब गया।

आलोटे दुख पामे मन, अंग मांहें लागी अगिन।
त्यारे वली सुकजी ओचरया, आंसू लोवरावी बेठा करया।।१७।।

वे अपने मन में अत्यन्त दुःखी हो गये और धरती पर लोटने लगे। उनके अंग–अंग दुःख की अग्नि में जलने लगे। तब शुकदेव जी ने उन्हें पुनः समझाया तथा उनके आँसू पोंछकर बैठाया।

सांभल राजा द्रढ करी मन, अंतरगते केहेता वचन।
ते केहेवावालो उठी गयो, हूं एकलो बेसी रहयो।१८।।

शुकदेव जी कहते हैं– हे राजा! तुम अपने मन को

दृढ़कर मेरी बात सुनो। जो परब्रह्म का जोश मेरे हृदय में विराजमान होकर महारास का वर्णन कर रहा था, वह अब मेरे अन्दर से चला गया है। मैं अब अकेला रह गया हूँ।

हवे पूछीस मूने तूं सूं, तुझ सरीखो बेठो हूं।
त्यारे परीछित चरण झालीने कहे, स्वामी रखे उत्कंठा मारा मनमां रहे।।१९।।

अब तू मुझसे क्या पूछता है? अब तो मैं भी तुम्हारे ही समान हो गया हूँ। तब राजा परीक्षित शुकदेव जी के चरण पकड़कर कहने लगे– हे स्वामी जी! आप ऐसी कृपा कीजिए कि मेरे मन में कोई इच्छा शेष न रह जाये।

मुनीजी हूं घणों दोहेलो थाऊं, रखे अगिन हूं लीधे जाऊं।
त्यारे भागे आवेस कही पंच अध्याय, पण रास न वरणव्यो तेणे ताय।।२०।।

हे मुनि जी! मैं बहुत अधिक दुःखी हूँ। अपनी इच्छा रूपी अग्नि को शान्त किये बिना अर्थात् अधूरी रखकर मैं जाना (देह–त्याग करना) नहीं चाहता। तब अक्षर ब्रह्म के आवेश (परब्रह्म के जोश जिबरील) के चले जाने पर उन्होंने पाँच अध्यायों में रास का वर्णन किया, किन्तु योगमाया में होने वाली महारास का वर्णन नहीं कर सके।

हवे सुकजीना वचन हूं केटला कहूं, हूँ सार काढवा भागवत ग्रहूं।

सघलानो सार आ ते रास, जे इंद्रावती मुख थयो प्रकास।।२१।।

अब मैं शुकदेव जी के वचनों के विषय में कितना कहूँ। उसका सार तत्व निकालने के लिये मैं भागवत को ग्रहण करती हूँ। सम्पूर्ण भागवत के दशम स्कन्ध का सार महारास है, जो श्री इन्द्रावती जी के मुख से श्री रास ग्रन्थ के रूप में अवतरित हुआ है।

हवे रासतणो सार तमने कहूं, तेतां आपणूं तारतम थयूं।
तारतम सार आ छे निरधार, जिहां वसे छे आपणा आधार।।२२।।

हे साथ जी! अब मैं रास का सार आपको कहती हूँ। रास का सार ही अपना तारतम है। निश्चित रूप से तारतम का सार अपना परमधाम है, जहाँ अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत लीला करते हैं।

घर श्री धाम अने श्रीकृष्ण, ए फल सारतणो तारतम।
तारतमे अजवालूं अति थाय, आसंका नव रहे मन मांहें।।२३।।

तारतम के सार तत्व को ग्रहण करने का फल यह है कि अपने मूल घर परमधाम का बोध हो जाता है और यह भी विदित हो जाता है कि रास लीला करने वाले श्री कृष्ण जी का रूप योगमाया के ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। तारतम ने ज्ञान का इतना अधिक उजाला कर दिया है

कि इससे मन में किसी तरह का संशय रह ही नहीं सकता।

भावार्थ– तारतम ज्ञान के अवतरित होने से पहले भागवत ग्रन्थ का अनुसरण करने वाले विद्वानों में यही मान्यता रही है कि "वृन्दावनं परित्यज्य पदं एकं न गच्छति" अर्थात् श्री कृष्ण जी वृन्दावन को छोड़कर एक कदम भी कहीं नहीं जाते हैं। किन्तु तारतम ज्ञान से स्पष्ट हो जाता है कि महारास की लीला करने वाला श्री राज जी का आवेश अपनी आत्माओं को लेकर नित्य वृन्दावन से परे परमधाम चला गया।

वर्तमान समय में जो महारास की लीला हो रही है, उसमें लीला करने वाले सभी तन अखण्ड योगमाया के हैं और उनमें न तो श्री राज जी का आवेश है और न ब्रह्मात्माओं की सुरता है। यदि तारतम ज्ञान का अवतरण

नहीं होता, तो कोई भी इस भ्रान्ति का शिकार हो जाता कि वर्तमान समय में नित्य वृन्दावन में जो श्री कृष्ण जी लीला कर रहे हैं, वे ही अक्षरातीत हैं।

मन जीवने पूछे रही, त्यारे जीव फल देखाडे सही।
ए अजवालूं कीधूं प्रकास, तारतमना वचन मांहें रास।।२४।।

जब मन जीव से पूछता है, तब जीव सार तत्व रूप फल को दर्शाता है। प्रकाश ग्रन्थ में इस रहस्य को उजागर कर दिया है कि तारतम वाणी में ही रास का वास्तविक ज्ञान छिपा हुआ है।

ए अजवालूं जीवन करे, जे जीव घर भणी पगला भरे।
पोते पोतानी पूरे साख, ए तारतम तणो अजवास।।२५।।

जब जीव के हृदय में रास ग्रन्थ के ज्ञान का प्रकाश हो

जाता है, तो जीव परमधाम की ओर अपने प्रेम–भरे कदम बढ़ा देता है। तारतम ज्ञान के उजाले में उसे स्वयं अपनी अन्तरात्मा से पूर्ण साक्षी मिलने लगती है।

ते लई धणी आव्या आंहें, साथ संभारी जुओ जीव मांहें।
एणे घरे तेडे आ वल्लभ, बीजाने ए घणूं दुर्लभ।।२६।।

हे साथ जी! आप अपने जीव के हृदय में विचार करके देखिये कि तारतम ज्ञान का उजाला लेकर स्वयं धाम धनी इस संसार में आये हैं। धाम धनी आपको परमधाम चलने के लिए कह रहे हैं। ऐसा सुनहरा अवसर दूसरों के लिए बहुत अधिक दुर्लभ है।

बीजा कहूं छूं एटला माट, जे माया भारे करो छो साथ।
तारतम पख बीजो कोय नथी, एक आव्या छो तमे घेर थकी।।२७।।

हे साथ जी! उपरोक्त चौपाई में "बीजा" (दूसरा) शब्द का प्रयोग इसलिए करना पड़ा है क्योंकि आप माया को अधिक महत्व देते जा रहे हैं (फँसते जा रहे हैं)। तारतम ज्ञान के अनुसार (पक्ष), परमधाम में आपके अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं। परमधाम से एकमात्र आप ही आये हैं।

आ माया कीधी ते तम माट, तारतम मांहें पाडी वाट।
एणी वाटे चालिए सही, श्री वालाजीने चरणज ग्रही।।२८।।

यह मायावी जगत आपके लिए ही बनाया गया है। तारतम ज्ञान में ही परमधाम जाने का मार्ग निहित है। प्रियतम अक्षरातीत के चरणों को पकड़कर इसी मार्ग पर चलिये।

एह चरन छे प्रमाण, इंद्रावती कहे थाओ जाण।

तमे वचनतणा लेजो अर्थ, आपण जीवनो ए छे ग्रथ।।२९।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! आप यह बात अच्छी तरह से जानते हैं कि प्राणेश्वर अक्षरातीत के चरणकमल ही हमारे सर्वस्व हैं। आप तारतम वाणी में कहे गए उनके वचनों का अभिप्राय ग्रहण कीजिए। यही हमारे जीव का सबसे बड़ा धन है।

प्रकरण ।।३३।। चौपाई ।।९९०।।

एक सौ आठ पक्ष का सार

हवे वली कहूं ते सुणो, अठोतर सो पखज तणो।
ए विचार जो जो प्रमाण, एहेनो सार कादूं निरवाण।।१।।

हे साथ जी! अब मैं पुनः आपसे एक सौ आठ पक्षों के विषय में बताती हूँ, उसे सुनिये। मेरे इस विचार को यथार्थता के साथ देखना। अब मैं आपको इन पक्षों का सार तत्व निकालकर बताती हूँ।

माया जीव कोई कोई छे समरथ, ते दोड करे छे कारण अरथ।
निसंक आपोपा नाख्या जेणे, निहकर्म मारग लीधां तेणे।।२।।

मायावी जीवों में कोई–कोई ही सामर्थ्यवान (शारीरिक, मानसिक, एवं बौद्धिक दृष्टि से) होते हैं, किन्तु वे भी लौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

जिन्होंने ज्ञान द्वारा अहंकार के बन्धनों को तोड़ दिया होता है, वे निष्काम कर्मयोग का मार्ग अपनाते हैं।

पुष्ट मरजाद ने परवाह पख, एह तणी कीधी छे लख।
ते वेहेची कीधा नव भाग, चढे पगथी लई वेराग।।३।।

संसार के भक्तजन पुष्टि, मर्यादी, एवं प्रवाह मार्ग पर चलकर परमात्मा को जानने का प्रयास करते हैं। नवधा भक्ति के आधार पर उन्होंने इनमें से प्रत्येक के तीन भाग किए हैं और वैराग्य लेकर भक्ति मार्ग पर चले हैं।

वली कीधा वीस ने सात, चढतो जाय लिए एणी भांत।
एक्यासी पख केहेवाय, ते वैकुंठमां पोहोंतो थाय।।४।।

पुनः सत्व, रज, तम के भेद से जब वे भक्ति मार्ग पर चलते हैं, तो वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। यह इक्यासी पक्ष

कहे जाते हैं।

हवे पख व्यासिमो जे कहयो, वल्लभाचारजे ते ग्रहयो।
स्यामा वल्लभी एथी जोर, पण बंने रहयो इंडानी कोर।।५।।

अब जो ब्यासिवाँ पक्ष कहा जाता है, उसे वल्लभाचार्य जी ने ग्रहण किया है। श्यामा–वल्लभी मार्ग वालों ने भी बहुत प्रयास किया, किन्तु दोनों (वल्लभाचार्य एवं श्यामा–वल्लभी) ही ब्रह्माण्ड के अन्तिम छोर तक पहुँचे।

छेक इंड मांहें कीधूं सही, पण अखंडते लई सक्यो नहीं।
पाछा वली पडया प्रतिबिंब, एहोनी तां एह सनंध।।६।।

उन्होंने इस ब्रह्माण्ड में छेद (ज्ञान दृष्टि से) तो अवश्य किया, किन्तु वे बेहद की अखण्ड लीला तक नहीं पहुँच सके। तत्पश्चात् इन्होंने थक–हारकर इस ब्रह्माण्ड में होने

वाली प्रतिबिम्ब लीला को ही सर्वोपरि मान लिया है। इनके ज्ञान की यही वास्तविकता है।

ए ऊपर वली पख छे एक, सांभलो तेहेनुं कहूं विवेक।
त्रासिमो पख प्रमांण, जे वासना पांचो ग्रहयो निरवाण।।७।।

इनके ऊपर पुनः एक पक्ष है, जिसके विषय में मैं बताती हूँ। आप विवेकपूर्वक उसके विषय में सुनिये। यह तिरासिवाँ सत्य मार्ग का पक्ष है, जिसे अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं ने ग्रहण किया है।

पांचे नाम कहूं प्रगट, दऊं सिखामण जाणी घरवट।
नहीं तो प्रबोध स्या ने कहूं, श्री वालाजीना चरणज ग्रहूं।।८।।

हे साथ जी! मैं इन पाँचों का नाम उजागर करती हूँ और आपको परमधाम का जानकर ही यह सिखापन दे रही

हूँ, अन्यथा इस तरह की सीख देने की आवश्यकता ही क्या थी। मैं अपने प्राणेश्वर के चरणों के प्रेम में डूबी रहती।

पण साथ माटे कहूं फरी फरी, हवे पांचे नाम जो जो चित धरी।
एक भगवानजी वैकुंठनो नाथ, महादेवजी पण एणे साथ।।९।।

किन्तु, आपके लिए बार-बार मैं यह कह रही हूँ। अब इन पाँचों के नाम सुनकर अपने चित्त में धारण कर लीजिए। इनमें एक वैकुण्ठ के स्वामी भगवान विष्णु हैं। इन्हीं के साथ भगवान शिव भी हैं।

सुकजी ने सनकादिक बे, वली कबीर भेलो मांहें ते।
लखमी नारायण भेला अंग मांहें, एहनो विचार कांई जुओ न थाय।।१०।।

शुकदेव जी, सनकादिक, और कबीर जी भी इन्हीं के

साथ हैं। लक्ष्मी जी और नारायण (विष्णु जी) एक ही अंग हैं। इनके पारस्परिक विचार अलग नहीं होते हैं।

ते माटे ए वासना पांच, इंडू फोडी निकली जुओ द्रष्टांत।
ए पुरूख प्रकृति ओलंघी ने गया, अछर माहें जई ने भेला थया।।११।।

इसलिए अक्षर ब्रह्म की इन पाँच सुरताओं ने इस ब्रह्माण्ड को छोड़ दिया और आगे (योगमाया के ब्रह्माण्ड में) निकल गयीं। इन पाँचों सुरताओं ने पुरुष-प्रकृति (आदिनारायण और महामाया) को पार किया और अक्षर की लीला के ब्रह्माण्ड बेहद में जाकर वहाँ के अपार सुख का अनुभव किया।

ए वचन पाधरा प्रगट कहे, जाण होय ते जोईने लहे।
पख पचवीस ए ऊपर जेह, तारतमना वचन छे तेह।।१२।।

यह बात मैंने स्पष्ट रूप से कही है। जिन्हें जानने की इच्छा हो, वे इस पर विचार करके ग्रहण कर सकते हैं। इनके ऊपर परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं, जिनका वर्णन तारतम वाणी के अन्दर किया गया है।

एह वचनो मांहें श्री धाम, धणी आपणा ने साथ सर्वेस्थान।
ए तारतम तणो अजवास, धणी बेठा मांहें लई साथ।।१३।।

तारतम वाणी के वचनों में परमधाम, अपने प्राणेश्वर, तथा सुन्दरसाथ की शोभा एवं लीला का वर्णन है। तारतम ज्ञान के उजाले में यह विदित होता है कि धाम धनी सब सुन्दरसाथ के साथ मूल मिलावा में विराजमान हैं।

हवे कां नव ओलखो रे साथ सुजाण, घणूं तेहेने कहिए जे होय अजाण।

वचिखिण छो तमे प्रवीण, गलजो जेम अगिन सूं मीण।।१४।।

हे साथ जी! आप तो बहुत अधिक ज्ञान रखने वाले हैं। अब भी अपने धाम धनी को क्यों नहीं पहचान रहे हैं? बहुत अधिक तो उसको कहा जाता है, जो अनजान हो। आप तो विलक्षण ज्ञानी हैं। जिस प्रकार अग्नि के तेज से मोम पिघल जाती है, उसी प्रकार आप श्री राज जी के प्रेम में गलितगात हो जाइये।

सनेह सों सेवा करजो धणी, गलित चित थई अति घणी।

तमे सेवाए पामसो पार, धणीतणा वचन निरधार।।१५।।

अपने प्राणेश्वर के प्रेम में अपने हृदय को बहुत अधिक कोमल बना लीजिए और अत्यधिक प्रेमपूर्वक उनकी सेवा कीजिए। इस प्रकार की प्रेममयी सेवा से ही आप

माया से पार हो जायेंगे। ऐसा धाम धनी के वचन स्पष्ट रूप से कहते हैं।

पाछला साथ छे ते आवसे केम, ते जोसे प्रकास तणा वचन।
चरणे छे ते तो आव्या सही, पण हवे आवसे वचन प्रकास ना ग्रही।।१६।।

मुझसे बाह्य रूप से दूर रहने वाले या छठे दिन के सुन्दरसाथ (पिछले) किस प्रकार धाम धनी के चरणों में आयेंगे? निश्चित रूप से वे प्रकाश ग्रन्थ के वचनों को आत्मसात् करके आयेंगे। जो चरणों में हैं, वे तो आ ही गए हैं, किन्तु अब इस प्रकाश ग्रन्थ के वचनों को ग्रहण करके धाम धनी के चरणों में आयेंगे।

द्रष्टव्य– इस चौपाई के तीसरे चरण से यह संकेत मिलता है कि मूल स्वरूप श्री राज जी ही श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहे हैं, अर्थात् श्री इन्द्रावती

जी के धाम–हृदय में विराजमान श्री राज जी एवं मूल मिलावा में विराजमान श्री राज जी में कोई भी अन्तर नहीं है।

धणीतणा वचन ग्रहया मांहें रास, पाछला पार उतारवा साथ।
आवसे साथ एणे प्रकास, अंधकारनो कीधो नास।।१७।।

पीछे के सुन्दरसाथ को इस संसार–सागर से पार उतारने के लिए मैंने धाम धनी के वचनों को रास ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया है। इस रास ग्रन्थ के अलौकिक प्रकाश में सब सुन्दसाथ प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में आयेंगे। इसने माया के अन्धकार का भी नाश कर दिया है।

आवसे साथ सकल परवरी, रासतणा वचन चित धरी।

एह वचन हवे केटला कहूं, आ लीलानों पार नव लहूं।।१८।।

सब सुन्दरसाथ रास के वचनों को अपने हृदय में बसाकर माया से मुक्त हो जायेंगे और धनी के चरणों में आयेंगे। अब इस बात को मैं कितना कहूँ? अपने प्राणवल्लभ की इस प्रेममयी लीला का पार मैं नहीं जान पाती हूँ।

ए वचन आंहीं छे अपार, पण साथ केटलो करसे विचार।

ते माटे कांई घणूं नव केहेवाय, आ तां पूरतणों दरियाय।।१९।।

इस संसार में प्रकट होने वाली तारतम वाणी के वचनों की अपार महिमा है, किन्तु सुन्दरसाथ इस सम्बन्ध में कितना विचार करेगा? इसलिए इस सम्बन्ध में अधिक न कहकर इतना ही कह सकती हूँ कि मेरे धाम-हृदय से

प्रियतम की यह वाणी सागर की लहरों के समान प्रस्फुटित हो रही है।

एनूं एक वचन विचारसे रही, ते ततखिण घर ओलखसे सही।
घरनी जे होसे वासना, नहीं मूके ते वचन रासना।।२०।।

जो सुन्दरसाथ इस तारतम वाणी के एक वचन का भी विचार करेगा, वह उसी क्षण अपने मूल घर की पहचान कर लेगा। जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वह रास के वचनों (धनी के लिए संसार छोड़ने) का कभी भी परित्याग नहीं करेगी।

खरी वस्त जे थासे सही, ते रेहेसे वचन रासना ग्रही।
जेम कह्यूं छे करसे तेम, ते लेसे फलतणो तारतम।।२१।।

जो निश्चित रूप से परमधाम की ब्रह्मात्मा होगी, वह रास

के वचनों को अवश्य आत्मसात् करेगी। उसमें धनी के प्रेम के मार्ग पर चलने के लिए जैसा कहा गया है, वैसा ही चलेगी, और वही तारतम के फल को भी प्राप्त करेगी।

इंद्रावती कहे सुणजो साथ, वचन विचारे थासे प्रकास।
प्रकास करीने लेजो धन, जे हूं तमने कह्या वचन।।२२।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! मेरी बात सुनिये। तारतम वाणी के वचनों का विचार करने पर हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा। तत्पश्चात् प्रियतम और परमधाम की शोभा रूपी धन को अपने हृदय में बसा लीजिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैंने आपसे यह बात कही है।

प्रकरण ।।३४।। चौपाई ।।१०१२।।

गुणनी आसंका

हवे कांईक हूं मारी करूं, नहीं तो तमने घणुए ओचरूं।
वली एक कहूं वचन, रखे आसंका आवे मन।।१।।

हे साथ जी! आपसे तो मैंने बहुत कुछ कह दिया है। अब मैं अपने सम्बन्ध में कुछ कहती हूँ। पुनः एक बात कहती हूँ, जिससे आपके मन में संशय न रह जाए।

में धणीतणा गुण लखया सही, एक आसंका मारा मनमां थई।
जे ऊंडा वचन कहया निरधार, साथ केम करसे विचार।।२।।

मैंने धाम धनी के गुणों को लिखा तो है, किन्तु मेरे मन में एक संशय पैदा हो गया है। जो मैंने इतने गहरे वचन कहे हैं, उसका सुन्दरसाथ किस प्रकार से विचार करेगा?

जिहां लगे जीव न पूरे साख, तो भले प्रबोध दीजे दस लाख।

एक वचन नव लागे केमे, जिहां लगे जीव न समझे मने।।३।।

जब तक जीव का हृदय आन्तरिक रूप से साक्षी न दे, तब तक दस लाख बार समझाने से भी कोई लाभ नहीं है। जब तक जीव अपने मन में वास्तविक सत्य को समझ नहीं लेगा, तब तक उस पर कहे हुए एक भी वचन का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ते माटे एम थाय अमने, रखे आसंका रहे तमने।

एक परवाही वचन एम कहे, मुखथी कहे पण अर्थ नव लहे।।४।।

इसलिए मुझे ऐसा अनुभव होता है कि आपके मन में किसी तरह का संशय नहीं रहना चाहिए। प्रवाह में बहने वाले जीव भी अपने मुख से यह बात कहा करते हैं, किन्तु वे उसका अभिप्राय नहीं जानते।

सोयतणां नाका मंझार, कुंजर कई निकले हजार।

एनो अर्थ पण आवसे सही, तारतम आसंका राखे नहीं।।५।।

सुई के नाके में हजारों हाथी एक साथ निकला करते हैं। इस कथन का शाब्दिक अर्थ तो सबको आता है, किन्तु रहस्य विदित नहीं होता। इस सम्बन्ध में तारतम ज्ञान किसी भी तरह का संशय नहीं रहने देता।

में गुण लखतां कही लेखण अणी, रखे आसंका उपजे घणी।

कथुआना पगना प्रमाण, लेखणो गढियो हाथ सुजाण।।६।।

प्रियतम के गुणों को लिखते समय मैंने लेखनी की नोंक का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में आपके अन्दर बहुत अधिक संशय पैदा न हो, इसलिए मैंने कथुए के पैर की सूक्ष्मता का प्रमाण दिया है कि मैंने उससे भी पतली अपनी लेखनी की नोंक अपने हाथों से बनायी है।

तेह तणी वली कीधियो चीर, गुण जेटली उतारी लीर।

हवे रखे केहेने आसंका रहे, तारतम आसंका नव सहे।।७।।

उस नोंक को भी मैंने उतनी बार चीरा जितने धनी के गुण होते हैं। अब तो किसी को संशय रहना ही नहीं चाहिए। किसी के अन्दर संशय का रह जाना तारतम ज्ञान को सहन नहीं है।

ते ऊपर एक कहूं विचार, सांभलो साथ मारा सिरदार।

आ चौद भवन देखो आकार, एहेना मूलनो करो विचार।।८।।

इसके अतिरिक्त भी मैं एक विचार और कहती हूँ। मेरे अग्रगण्य सुन्दरसाथ जी, उसे आप सुनें। आप इस चौदह लोक के ब्रह्माण्ड के आकार को देखें और इसके मूल के सम्बन्ध में विचार कीजिए।

एणे सुकजी पण सुपनांतर कहे, कोई एहनो जीव एणे नव लहे।
ए सुपन मूलतां छे समरथ, एहेना मूलनो जुओ अर्थ।।९।।

शुकदेव जी इस ब्रह्माण्ड को स्वप्नमयी कहते हैं, किन्तु कोई भी जीव इसका पार नहीं पाता है। इस स्वप्न का मूल अति शक्तिशाली है। अब इस स्वप्न के मूल के रहस्य के सम्बन्ध में विचार कीजिए।

ए सुपन मूलतां निद्रा थई, जुए जागीतां कांइए नहीं।
एनूं मूलतां न रहयो लगार, अने कथुवाना पगनो तो कहयो आकार।।१०।।

स्वप्न का मूल ही निद्रा है, जिसका जाग्रत होने पर कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता है। नारायण की नींद के समाप्त होने पर इस ब्रह्माण्ड के मूल निराकार का तो कोई अस्तित्व ही नहीं रहता, जबकि कथुए के पैर का तो कुछ आकार रहता है।

मूल विना तमे जुओ विस्तार, केवडो कीधो छे आकार।
तो आनो तो हूं कह्यो आकार, तेहेनो कां नव थाय विस्तार।।११।।

हे साथ जी! बिना मूल वाले इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड का विस्तार देखिए कि यह कितना विस्तृत है। कथुए के पैर का तो मैंने कुछ आकार भी कहा है, तो ऐसी अवस्था में उसका विस्तार क्यों नहीं हो सकता?

एम सोयतणां नाका मंझार, ब्रह्मांड कई निकले हजार।
हवे एह तणो जो जो अर्थ, गुण लखवा वालो समरथ।।१२।।

इसी प्रकार, सुई के छिद्र रूपी नींद से हजारों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। अब इसके अभिप्राय के विषय में विचार कीजिए। मेरे द्वारा अपने गुणों को लिखवाने वाले स्वयं धाम धनी सर्वसामर्थ्यवान हैं।

हवे केटलो तमने कहूं विस्तार, एक एह वचन ग्रहजो निरधार।

हेत करीने कहूं छूं साथ, ओलखजो प्राणनो नाथ।।१३।।

हे साथ जी! अब मैं आपसे इसका विस्तार कितना करूँ। आप मेरी इस एक बात को निश्चित रूप से ग्रहण कर लीजिए, जिसे मैं बहुत प्रेम से कह रही हूँ कि अपने प्राणवल्लभ, प्राणप्रियतम, प्राणनाथ की पहचान कर लीजिए।

गुण लखवा वालो ते एह, आपणमां बेठा छे जेह।

इंद्रावती कहे आ ते रे ते, जेणे गुण कीधां ते ए रे ए।।१४।।

हमारे (मेरे) धाम-हृदय में विराजमान होकर अपने गुणों का वर्णन कराने वाले धाम धनी भी यही हैं। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! जिसने आपके ऊपर इतनी कृपा की है, वही आपके प्राणनाथ हैं।

तारे केहेवुं होय ते केहे रे केहे, लाभ लेवो होय ते ले रे ले।
तारतम कहे छे आ रे आ, हजार वार कहूं हां रे हां।।१५।।

यदि आपको कुछ कहने की इच्छा हो, तो आप कह सकते हैं। इस जागनी ब्रह्माण्ड में आए हुए श्री प्राणनाथ जी से आत्मिक लाभ लेना है, तो ले लीजिए। तारतम वाणी कहती है कि सबको इन्हीं अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के चरणों में आना है। मैं भी हजार बार कहती हूँ कि हाँ, इन अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त हमारा कोई भी आश्रय (ठिकाना) नहीं है।

मायासूं करजे नां रे नां, फोकट फेरा मा खा रे खा।
धणीने चरणे जा रे जा, एवो नहीं लाधे दा रे दा।।१६।।

आप माया को न कह दीजिए अर्थात् माया में लिप्त न होइए। व्यर्थ के सांसारिक आकर्षणों में अपने अनमोल

समय को नष्ट न कीजिए। धाम धनी के चरणों में चले जाइए। पुनः यह सुनहरा अवसर दोबारा मिलने वाला नहीं है।

जो चूक्यो आंणें ता रे ता, तो कपालमां लागसे घा रे घा।
संसारमां नथी कांई सा रे सा, श्री धाम धणी गुण गा रे गा।।१७।।

यदि आप इस स्वर्णिम अवसर को चूक गए, तो आपके सिर पर भयानक चोट लगेगी अर्थात् आपको बहुत अधिक प्रायश्चित का कष्ट झेलना पड़ेगा। इस संसार में कोई सार तत्व नहीं है, इसलिए आप केवल धाम धनी के ही गुण गाते रहिए।

पोताना पगले था रे था, मा मूके तारो चाह रे चाह।
तारा जीवने प्रेम तूं पा रे पा, जेम सहू कोई कहे तूंने वाह रे वाह।।१८।।

स्वयं को धनी के प्रेम मार्ग पर ले चलिये। अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के प्रेम की चाहत को न छोड़िये। अपने जीव को प्रियतम के प्रेम में लगा दीजिए, जिससे हर कोई आपको वाह–वाह कहे (शाबाशी दे)।

प्रकरण ।।३५।। चौपाई ।।१०३०।।

गुण केटला कहूं मारा वाला, अमसूं कीधां अति घणा जी।

आणी जोगवाई ने आणी जिभ्याए, केम केहेवाय वचन तेह तणा जी।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरे प्राणवल्लभ! आपने जो मुझसे इतना अधिक प्रेम किया है, उस गुण का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। मेरे इस नश्वर शरीर और जिह्वा से आपके अनन्त गुणों के सम्बन्ध में कोई भी शब्द कैसे कहा जा सकता है।

वृज तणा सुख आंहीं आवीने, अमने अति घणा दीधां जी।

रास तणी रामतडी रमाडी, आप सरीखडा कीधां जी।।२।।

आपने इस जागनी ब्रह्माण्ड में आकर श्री देवचन्द्र जी के रूप में व्रज के सुखों का बहुत अधिक अनुभव कराया है। इसी प्रकार, रास की भी रामतों का अनुभव कराकर आपने मुझे अपने समान बना लिया है।

भगवानजी केरी रामतडी, जोयानी हुती मूंने खांत जी।
नौतनपुरी मांहें आवी करीने, मूने चींधी देखाड्यो दृष्टांत जी।।३।।

मेरे मन में अक्षर ब्रह्म की माया का खेल देखने की बहुत अधिक चाहना थी। आपने नवतनपुरी में श्री देवचन्द्र जी के धाम-हृदय में विराजमान होकर आड़िका लीला के दृष्टान्त द्वारा सांकेतिक रूप से मुझे व्रज-रास की सारी लीला का आनन्द दिया।

श्री धामतणा सुख केणी पेरे कहूं, जे तारतमे करी तमे दीधां जी।
नौतनपुरीमां मनोरथ कीधां, ते विध विधना मारा सीधां जी।।४।।

परमधाम के सुखों का मैं किस प्रकार वर्णन करूँ, जिसे आपने तारतम वाणी के रूप में मुझे दिया है। नवतनपुरी में मेरी जो भी इच्छा थी, उसे आपने तरह-तरह से पूर्ण किया।

सेहेजल सुखमां झीलतां, दुख न जाणिए कांई जी।

दुस्तर जल सुपनमां देखी, हूं जांणी ते घरनी बडाई जी।।५।।

परमधाम में हमने केवल सुख ही सुख देखा था, दुःख के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था। जब मैंने स्वप्न में इस दुःखमयी भवसागर को देखा, तो परमधाम की महिमा का पता चला।

इंद्रावती कहे अति उछरंगे, तमे लाड अमारा घणा पाल्या जी।

निरमल नेत्र करी जीवना, तमे पडदा पाछा टाल्या जी।।६।।

अत्यधिक उमंग में भरकर श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि आपने हमसे अपार प्रेम किया है। आपने अपनी कृपा दृष्टि से मेरे जीव के हृदय (नेत्र) को निर्मल कर दिया है और माया (अज्ञान) के आवरण को हटा दिया है।

आपोपूं ओलखावी करीने, पोताने पासे तेडी लीधी जी।
इंद्रावती ने एकांत सुख दीधां, आप सरीखडी कीधी जी।।७।।

आपने अपने स्वरूप की पहचान कराकर मुझे अपने पास बुला लिया, अर्थात् मेरे धाम-हृदय में आकर विराजमान हो गये। मेरे हृदय के एकान्त में प्रगट होकर अपने प्रेम का अपार स्नेह दिया और मुझे भी अपने समान ही बना लिया।

प्रकरण ।।३६।। चौपाई ।।१०३७।।

प्रगट वाणी

हवे सैयरने हूं प्रगट कहूं, आपणों वास श्री धाममां रहूं।
अछरातीत ते आपणा घर, मूल वैकुंठ मांहें अछर।।१।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! अब मैं आपसे प्रत्यक्ष रूप में यह बात कहती हूँ कि हमारा घर परमधाम है, जहाँ हम रहते हैं। अक्षरातीत का निवास परमधाम में है तथा अक्षर ब्रह्म का निवास अक्षरधाम में है।

ए वाणी चित धरजो साथ, दया करी कहे प्राणनाथ।
ए किव करी रखे जाणो मन, श्री धणी लाव्या धामथी वचन।।२।।

हे साथ जी! इस तारतम वाणी को अपने हृदय में रखिये। इसे हमारे ऊपर दया करके प्रियतम प्राणनाथ ने

कहा है। अपने मन में ऐसा न समझिये कि यह कोई काव्य ग्रन्थ है। इसके शब्दों को कहने वाले स्वयं अक्षरातीत हैं, जो परमधाम से आये हैं।

द्रष्टव्य– शब्दों में निहित ज्ञान तो परमधाम का है, किन्तु शब्द यहाँ के हैं। "आगे तो नूर तजल्ला, तहाँ जुबां बोल है और" का कथन यही सिद्ध करता है।

ते तमने कहूं प्रगट करी, मूल वचन लेजो चित धरी।
हवे तारतम जो जो प्रकास, तिमर मूलथी करूं नास।।३।।

परमधाम के उन वचनों को मैं आपसे प्रत्यक्ष कह रही हूँ। आप उन्हें अपने चित्त में बसाइये। अब आप तारतम ज्ञान के प्रकाश की महत्ता देखिये। इसके द्वारा मैं अज्ञानता के अन्धकार को जड़ से नष्ट कर देती हूँ।

हवे तमने कहूं मूलज थकी, अने मोह अहंकार कांई उपनूं नथी।
न कांई ईस्वर न मूल प्रकृती, तेणें समे आपणमां वीती।।४।।

अब मैं मूल परमधाम से अपना वक्तव्य प्रारम्भ करती हूँ। यह उस समय का प्रसंग है, जब मोह और अहंकार कुछ भी पैदा नहीं हुआ था। उस समय न तो आदिनारयण थे और न मूल प्रकृति थी। उस समय हमारे साथ जो कुछ घटनाक्रम घटित हुआ, उसे मैं बताती हूँ।

एणे समे मूल वैकुंठ नाथ, इछा दरसन करवा साथ।
साथ तणें मन मनोरथ एह, माया रामत जोइए तेह।।५।।

इस समय, अक्षर ब्रह्म के अन्दर सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) के दर्शन की इच्छा हुई। इसी प्रकार, सुन्दरसाथ के मन में भी यह इच्छा हुई कि हम अक्षर ब्रह्म की माया का खेल देखें।

ए वात अमे श्री राजने कही, त्यारे अम बेहू पर इछा थई।
उपनूं मोह सुरत संचरी, तेणे माया रचना करी।।६।।

यह बात हमने श्री राज जी से कही। तब हम दोनों की इच्छा पूर्ण करने का आदेश हुआ। मोह त्तत्व की उत्पत्ति हुयी, जिसमें अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के महाकारण पुरुष (सबलिक सूरत) ने प्रवेश किया। उसने इस मायावी जगत की रचना की।

आहीं अछरनूं विलस्यो मन, पांच तत्व चौद भवन।
एमां विष्णु मन बीजो मननो विलास, रच्यो एह स्वांस नो स्वांस।।७।।

इस मोह सागर में अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत ने विलास किया, जिसमें पाँच तत्व वाले चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई। इसमें महाविष्णु (आदिनारायण) अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के

स्वाप्निक स्वरूप हैं और यह द्वैत का सम्पूर्ण जगत उनके मन का क्रीड़ा रूप है। इस अनन्त ब्रह्माण्ड को उन्होंने उतनी ही सरलता से बनाया है, जैसे कोई स्वाँस लेता है।

एमां वासना आवी अम तणी, मन इछे पोतानू धणी।
अछर वासना लई आवेस, नंद घेर कीधो प्रवेस।।८।।

इस ब्रह्माण्ड में हमारी सुरता आयी। आते ही हमारे मन में धनी से मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई। अक्षर ब्रह्म की आत्मा श्री राज जी का आवेश लेकर नन्द के घर श्री कृष्ण जी के तन में प्रवेश हुई।

साथ सुपन एम दीठूं सही, जे गोकुल रमयां भेला थई।
बेहू सुरत रमियां कई भांत, मन वांछित करी खरी खांत।।९।।

सुन्दरसाथ ने स्वप्नावस्था में यह सारा दृश्य देखा कि हम और अक्षर ब्रह्म गोकुल में मिलकर लीला कर रहे हैं। हम दोनों ने अनेक प्रकार से क्रीड़ाएँ की, और हम दोनों के मन में जो इच्छाएँ थीं, उन्हें धाम धनी ने पूरा किया।

अग्यार वरस लगे लीला करी, कालमाया इहांज परहरी।
जोगमाया करी रमिया रास, आनंद मन आंणी उलास।।१०।।

व्रज में ग्यारह वर्ष लीला करने के पश्चात्, हमने कालमाया के ब्रह्माण्ड को छोड़ दिया और योगमाया के ब्रह्माण्ड में जाकर अत्यधिक उल्लास में रास की आनन्दमयी रामतें की।

रास रमी घेर आव्या एह, साथ सकलमां अधिक सनेह।
तामसी उत्कंठा रही मन सार, तो आपण आव्या बीजी वार।।११।।

रास खेलने के पश्चात् हम परमधाम आये। उस समय सब सुन्दरसाथ में बहुत अधिक प्रेम था। तामसी सखियों के मन में अभी खेल देखने की इच्छा शेष रह गयी थी, इसलिये हमें दूसरी बार पुनः इस ब्रह्माण्ड में आना पड़ा।

मारकंडे माया दीठी जेम, घेर बेठा आपण जोइए तेम।
ते माया सुकजीए वरणव करी, त्रण अध्याय कहया चित धरी।।१२।।

जिस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि ने नारायण के चरणों में बैठकर माया देखी, उसी प्रकार मूल मिलावा में धाम धनी के चरणों में बैठकर हम माया का खेल देख रहे हैं। उस माया का वर्णन शुकदेव जी ने तीन अध्यायों में किया है, जिसे राजा परीक्षित ने अपने चित्त में धारण कर लिया।

द्रष्टव्य– भागवत स्कंध १२ अध्याय ८,९,१० में

नारायण द्वारा मार्कण्डेय ऋषि को माया दिखाने का वर्णन किया गया है।

हवे प्रीछजो ए द्रष्टांत, एणे पण मांगी करी खांत।
जुओ मायानो वृतांत, रिखि केमे न पाम्यो स्वांत।।१३।।

अब मार्कण्डेय के इस दृष्टान्त से आप समझिये। जिस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि ने नारायण से माया का खेल देखने की इच्छा की थी, उसी प्रकार हमने भी धाम धनी से माया का खेल देखने की इच्छा की थी। आप माया की वास्तविकता को देखिये कि इसमें फँसने पर ऋषि को किसी भी प्रकार से शान्ति नहीं मिली।

ततखिण कम्पमानज थयो, माया मांहें भलीने गयो।
कल्पांत सात ने छियासी जुग, माया आडी आवी बुध।।१४।।

माया की इच्छा करते ही मार्कण्डेय ऋषि तत्क्षण काँपने लगे और माया में मिल गये। सात कल्पान्त छियासी युग तक उनकी बुद्धि के ऊपर माया का आवरण बना रहा।

नहीं तो नथी थई अधखिण वार, मारकंड दुख पाम्यो अपार।
त्यारे मांहें नारायणजी कीधो प्रवेस, देखाडी माया लवलेस।।१५।।

यद्यपि नारायण के समक्ष बैठे हुए मार्कण्डेय ऋषि को माया में गये हुए आधा क्षण भी नहीं हुआ था, फिर भी उन्होंने अपार दुःख देख लिया। तब नारायण जी ने माया में प्रवेश किया और उन्हें थोड़ी सी माया की झलक दिखाकर सावचेत कर दिया।

जुए जागी तां तेहज ताल, दया करी काढ्यो तत्काल।
मायानी तां एह सनंध, निरमल नेत्रे थइए अंध।।१६।।

नारायण ने मार्कण्डेय ऋषि पर दया करके उनको उसी क्षण माया से निकाल लिया। जब मार्कण्डेय ऋषि जाग्रत हुए, तो उन्होंने देखा कि मैं उसी ताल के किनारे बैठा हुआ हूँ। माया की तो वास्तविकता ही यही है कि बौद्धिक ज्ञान दृष्टि से निर्मल नेत्र वाला होने पर भी माया का आवरण मनुष्य के ऊपर इस प्रकार पड़ जाता है कि वह अन्धे के समान विवेकहीन हो जाता है।

एणी पेरे अमने रहयो अंदेस, ते राखे नहीं धणी लवलेस।
ते माटे वली आ सुपन, इछाए कीधूं उतपन।।१७।।

इसी प्रकार हमारे अन्दर भी कुछ संशय था, जिसे नाम मात्र के लिये रहने देना भी धाम धनी सहन नहीं कर सकते थे। इसलिये हमारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये श्री राज जी ने पुनः यह नया ब्रह्माण्ड बनाया।

भावार्थ– व्रज–रास में ब्रह्मात्माओं को निम्न संशयों से गुजरना पड़ा–

१. व्रज में न तो उनको मूल सम्बन्ध का पता था और न मूल घर का पता था। हम कौन हैं, यह भी ज्ञात नहीं था।

२. रास में सम्बन्ध का तो पता था, पर घर का पता तब भी नहीं था।

३. रास में परमधाम के स्वलीला अद्वैत प्रेम की वास्तविक पहचान भी नहीं थी।

४. सखियाँ इस रहस्य को नहीं समझ पायी थीं कि धाम धनी जब यह कहते हैं कि तुम मेरे जीवन की आधार स्वरूपा हो, तो हमसे बार–बार अलग क्यों हो जाते हैं।

अखंड थयो कालमाया तणों, अंदेस भाजवाने आपणो।

केटलीकने उत्कंठा रही, ते माटे सर्वने आगना थई।।१८।।

हमारे संशय को मिटाने के लिए धाम धनी ने कालमाया के व्रज लीला वाले ब्रह्माण्ड को अखण्ड कर दिया। कुछ सखियों के अन्दर कुछ इच्छा शेष रह गयी थी, इसलिए सबको इस खेल में पुनः आना पड़ा।

ब्रह्मांड मांहें आवियो एह, मन तणां भाजवा संदेह।

साथ मांहें एक सुंदरबाई, तेणे श्री राजें दीधी बड़ाई।।१९।।

अपने मन का संशय मिटाने के लिये हम सभी ब्रह्मात्मायें इस संसार में आयी हुई हैं। हम सब सुन्दरसाथ में एक सुन्दरबाई (श्री श्यामा जी) हैं, जिन्हें धाम धनी श्री राज जी ने बहुत बड़ी शोभा दी है।

आवेस अंग आपी आधार, दई तारतम उघाड्या बार।
घर थकी वचन लई आव्या, ते तां सुंदरबाईने कहया।।२०।।

श्री राज जी ने श्री श्यामा जी के हृदय में अपना आवेश विराजमान किया और उन्हें तारतम ज्ञान का प्रकाश देकर सबके लिये परमधाम का द्वार खोल दिया। उन्होंने सुन्दरबाई (श्यामा जी) से कहा कि मैं परमधाम से ही तारतम वाणी के वचन लेकर आया हूँ।

भावार्थ– परमधाम में श्री राज जी द्वारा श्री श्यामा जी को अपना आवेश देकर भेजने का तात्पर्य है, उनके धाम–हृदय में अपनी सार्वकालिक विद्यमानता को सिद्ध करना। परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, तो श्री राज जी श्री श्यामा जी को अपने स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ क्या दे सकते थे। जिस प्रकार बर्फ के रूप में घनीभूत जल द्रवित होकर बहने

लगता है, उसी प्रकार अक्षरातीत का परमसत्य स्वरूप (मारिफत) है। लीला रूप में श्यामा जी, सखियों, और पच्चीस पक्षों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ऐसी स्थिति में किसी भी ब्रह्मात्मा या श्री श्यामा जी से श्री राज जी के पल-भर के भी अलगाव को नहीं माना जा सकता। व्रज, रास, और जागनी में धाम धनी से अलगाव बाह्य रूप से रहा है, आन्तरिक रूप से नहीं। धाम धनी की कृपा-दृष्टि से प्रियतम के साथ अखण्ड सम्बन्ध का बोध हो जाना ही जाग्रति है। सागर और उसकी लहरों से अभिन्नता की तरह, स्वयं को प्रियतम से एकाकार कर लेना ही आवेश स्वरूप को अपने धाम-हृदय में बसा लेना है। इसे किसी लौकिक द्रव्य की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये, जिसका बँटवारा हो।

हिस्सा देउं आवेस का, भेली करूं सब सैंयन।

कलश हिन्दुस्तानी के इस कथन में आवेश का तात्पर्य ज्ञान आवेश और प्रियतम की शोभा को आत्मसात् करने से है। आवेश को खण्डित करके बाँटने की कल्पना निराधार और हास्यास्पद है।

"सखी तमें ले चालो आवेस, मा मूकूं एकला" के कथन को भी इसी सन्दर्भ में देखना चाहिये।

साथ वचन सांभलिया एह, वासनाए कीधां मूल सनेह।
ते मांहें एक इंद्रावती, केहेवाणी सहुमां महामती।।२१।।

सब सुन्दरसाथ ने इन वचनों को सुना और सबने आपस में परमधाम की तरह धनी से प्रेम किया। इनमें एक इन्द्रावती आत्मा भी है, जो सबमें महामति कहलायी।

भावार्थ– हब्शा में वि.सं. १७१५ में रास, प्रकास

गुजराती, षटऋतु, एवं कलस गुजराती की दो चौपाइयों का अवतरण हुआ।

उपरोक्त चौपाई के कथन से हब्शा में ही श्री इन्द्रावती जी को श्री महामति जी शोभा मिलती है। यद्यपि वि.सं. १७३५ के पश्चात् अवतरित वाणी में ही "महामति" की छाप आती है, किन्तु इसका आशय यह नहीं समझना चाहिये कि इसके पहले हम "इन्द्रावती जी" को "महामति" नहीं कह सकते।

पौढे भेले जागसी भेले, खेल देख्या सबों एक।

अक्षर की आत्मा व्रज–रास की तरह ही जागनी में भी प्रारम्भ से ही रही है। इतना अवश्य कह सकते हैं कि मेड़ता से उनकी लीला प्रारम्भ होती है।

तारतम अंग थयो विस्तार, उदर आव्या बुध अवतार।

इछा दया ने आवेस, एणे अंग कीधो प्रवेस।।२२।।

श्री इन्द्रावती जी के धाम–हृदय में तारतम वाणी के अवतरण का विस्तार हुआ। इसके अतिरिक्त जाग्रत बुद्धि भी उनके हृदय में विराजमान हुई। आवेश के रूप में मूल स्वरूप की इच्छा अर्थात् हुक्म और दया ने श्री इन्द्रावती जी के धाम–हृदय में प्रवेश किया।

भावार्थ– उपरोक्त चौपाई की दूसरी पंक्ति को कलस हिन्दुस्तानी के इस कथन के समकक्ष ठहराया जा सकता है–

अग्या दया सब पूरण, अंग इन्द्रावती प्रवेस।

इस प्रकार परमधाम में मूल स्वरूप के दिल में होने वाली इच्छा ही कालमाया के ब्रह्माण्ड में आज्ञा या आदेश कहलाती है, जिसको अरबी में "हुक्म" कहा

जाता है। स्वयं अक्षरातीत इस नश्वर ब्रह्माण्ड में आवेश स्वरूप से लीला कर रहे हैं, इसलिये इच्छा, आज्ञा, या हुक्म के स्वरूप को ही आवेश स्वरूप कहते हैं।

एणी पेरे भाज्यो संदेह, समझ्या सहुए वातज एह।
वचन विस्तरिया विवेक, तेणे मली रस थयो एक।।२३।।

इस प्रकार, धाम धनी ने सबके संशय को दूर किया। सब सुन्दरसाथ ने भी इस तथ्य को समझा। सुन्दरसाथ ने अपने विवेक से तारतम वाणी का प्रकाश फैलाया, जिससे सब सुन्दरसाथ का हृदय एकरस हो गया।

साथ मल्योने थई जागणी, हरख्यो साथने रमियां धणी।
ए चारे लीला कीधी सही, पण जागनी तो अति मोटी थई।।२४।।

तारतम वाणी के प्रकाश में सब सुन्दरसाथ के एकत्रित

होने से जागनी हुई। आनन्द में मग्न होकर सुन्दरसाथ ने धाम धनी के साथ जागनी की लीला में भाग लिया। यद्यपि व्रज, रास, श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री प्राणनाथ जी के रूप में ये चारों लीलाएँ अवश्य हुई हैं, परन्तु जागनी की लीला तो बहुत ही विशद् (गरिमामयी, महिमावान, बहुत बड़ी) है।

इहां साथने थयो उलास, कह्यो न जाय तेह विलास।
ए जागनीना सुख केणी पेरे कहिए, जाणे श्री धाममां बेठा छैए।।२५।।

इस जागनी लीला में सुन्दरसाथ इतना उल्लसित हो गया कि उनके आनन्द का वर्णन करना सम्भव नहीं है। इस जागनी लीला के सुख को शब्दों में किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, जिसमें ऐसा अनुभव होता है कि हम संसार में नहीं बल्कि परमधाम में हैं।

मली साथ वातो हरखे करी, जेवी रामत जेणे चित धरी।

एम करता द्रष्टे आव्यूं धाम, केहेना मनमां रही न हाम।।२६।।

इस लीला में सब सुन्दरसाथ एकत्रित होकर प्रसन्नतापूर्वक जिसकी जैसी लीला होगी, उसको चित्त में याद कर बातें करेंगे। ऐसा करते–करते सबकी दृष्टि में परमधाम आ जाएगा और किसी के भी मन में कोई चाहना शेष नहीं रहेगी।

भावार्थ– उपरोक्त प्रसंग श्री पद्मावती पुरी धाम में होने वाली दस वर्षों की जागनी लीला, छठे दिन में जागनी के अन्तिम चरण की लीला, तथा परमधाम में परात्म के तनों में जाग्रत होने की प्रारम्भिक लीला का है।

पछे साथ उठीने बेठा थया, एह वचन आगलथी कहया।

इंद्रावती कहे उठसे अछर, लई आनंद पोताने घर।।२७।।

इसके पश्चात् सुन्दरसाथ परात्म में पूर्ण रूप से जाग्रत हो जायेंगे। यह सारी बात मैंने पहले ही कह दी है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि अक्षर ब्रह्म भी अपने अक्षरधाम में जाग्रत होंगे और इस जागनी लीला के रस से अति आनन्दित होंगे।

प्रकरण ।।३७।। चौपाई ।।१०६४।।

।। प्रकास गुजराती - जंबूर ।।

।। संपूर्ण ।।